66/5

स्वरोदय विज्ञान

ले० पंडित हीरालाल दूगड़

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ग/507

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

JF
236

Shri Ranbir Kendriya Sanskrit Vidiya peeth, Jammu.
LIBRARY
Book No. 1900
Dated ....
Price ....

MOTILAL BANARSIDAS
BUNGALOW ROAD

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

श्री शांतिनाथाय नमः

अष्टांग निमित्त

(चौथा विभाग स्वरांग)

Kendriya Sanskrit Vidya Peeth, Shri Ranbir Jammu.
LIBRARY
Book No 1900
Dated
Price

योगीराज

श्री चिदानन्द [कपूरचन्द] जी महाराज कृत

स्वरोदय-सार तथा अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश

[सार्थ-सविवेचन]

JF
236

स्वरोदय विज्ञान

विवेचनादि कर्त्ता

व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण

जैन श्रावक पंडित हीरालाल दुग्गड़ जैन

न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक

जैन साहित्य प्रकाशन मन्दिर-दिल्ली

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पुस्तक © सर्वाधिकार सुरक्षित

स्वरोदय सार तथा अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश

[महायोगी चिदानन्द जी कृत]

संकलन विवेचन अर्थ आदि कर्त्ता

व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण

पंडित हीरालाल दुग्गड़ जैन

न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक

विषय

स्वर-विज्ञान

[श्वासोश्वास द्वारा भविष्य ज्ञान]

पुस्तक पृष्ठ

३२ + ३२० = ३५२

प्रथम प्रकाशन

सन् १९७३ ई०

प्रकाशक

एम. के. जैन

अध्यक्ष: जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मन्दिर

५७ अहाता बलबीर, मोतीराम मार्ग, लोनी रोड,

शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मूल्य—८·००

मुद्रक—वार्ष्णेय प्रिंटिंग प्रेस, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

JF
236

महायोगीराज जैन संत चिदानन्द जी (कपूरचन्द) जी महाराज

स्वर्गवास—वि॰सं॰ १९५९ पोषवदि ९ चन्द्रवार

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

समर्पण

पूज्य पिता श्री सर्वश्री लाला दीनानाथ जी साहब दुग्गड़

जन्म—गुजरांवाला [पंजाब] स्वर्गवास—आगरा [उ०प्र०]

चैत्र कृष्ण १४ वि०सं० १६४३ चैत्र कृष्ण ५ वि०सं० २०१०

परम गुरुभक्त ज्योतिर्विद श्री श्रेष्ठिवर्य चौधरी साहब सर्वश्री लाला दीनानाथ जी दुग्गड़ जिन्हें जिनशासन की आनरेरी मन्त्री पद सेवाओं के उपलक्ष में श्रीसंघ गुजरांवाला ने स्वर्ण पदक से सम्मानित किया एवं स्मृति में श्री संघ ने अपने कार्यालय में आपका तैल चित्र लगाया। आप श्री जी की ही अमर कृपा के परिणाम स्वरूप मैं श्री जिन शासन की सेवा के योग्य बन पाया। अतः कृतज्ञभावसे श्रद्धांजली रूप यह स्वरोदय विज्ञान आप की पुण्य स्मृति में विद्वदजन के करकमलों में समर्पित करता हूं।

हीरालाल दुग्गड़

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लेखक

पंडित श्री हीरालाल दूगड़ जैन

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१. स्वरोदय सार

१. मंगलाचरण	१
२. स्वर ज्ञान	३
३. स्वरों का कार्य	५
४. स्वरों के गुण	८
५. स्वरों में लग्न, राशि, मास	६
६. प्रश्न दिशा निर्णय	१०
७. कार्य के अक्षरों का निर्णय	१२
८. स्वरोदय सिद्धि	१२
६. निश्चय प्राणायाम	१३
१०. व्यवहार प्राणायाम	१४
११. अष्टांग योग प्राणायाम	१५
१२. प्राणायाम के भेद	१५
१३. वायु के भेद और बीज	१८
१४. अनहद ध्वनि	१६
१५. अजपा जाप योग	२१
१६. समाधि	२३
१७. कुंडलिनी-बंकनाल	२४
१८. मुद्राबन्ध-आसन	२५
१६. पद्म तथा मूलासन [चित्र]	२६
२०. षट कर्म	२८
२१. जैन अष्ट योग दृष्टि	२६
२२. साधक की योग्यता	३१
२३. ध्यान के भेद	३४
२४. स्वरोदय सिद्धि	३७
२५. सिद्धचक्र चित्र	३६
२६. तत्त्वोंकी पहचान और लाभ	४०
२७. तत्त्वों से वर्ष फल	४३
२८. कुटुम्ब शरीर धन विचार	५०
२६. तत्त्व और कार्य प्रश्न	५१
३०. रोगी प्रश्न	५३
३१. खाली और भरा स्वर में प्रश्न	५७
३२. वार और स्वर तत्त्व	५७
३३. तत्त्व ज्ञान रीति	७३
३४. चार्ट (१)	७६
३५. हानि लाभ विचार	७८
३६: चार्ट (२)	७८
३७. तत्त्वों की आवश्यक बातें	७६
३८. स्वर और प्रश्न कर्ता	८१
३६. तत्त्व और पदार्थ चिंता	८३
४०. तत्त्वों के स्वामी, ग्रह, वार	८३
४१. चन्द्र स्वर की अवस्थाएं	८४
४२. रसों से तत्त्व की पहचान	८४
४३. तत्त्वों में नक्षत्र	८५
४४. तत्त्व क्रम	८५
४५. तत्त्वों के गुण	८६
४६. तत्त्वों के द्वार	८६
४७. युद्ध के प्रश्न	८६
४८. गर्भ प्रश्न	६२
४६. परदेश गमन प्रश्न	६६
५०. तत्त्व और आरोग्य	१०७
५१. स्वरों का समय	१०८
५२. लाभालाभ प्रश्न	११०
५३. कालज्ञान	११३
५४. चार पुरुषार्थ	१४१
५५. धर्माधर्म विवेक	१४२
५६. समाधि का स्वरूप	१४५
५७. श्वासोश्वास गति	१४७
५८. ध्यान की विधि	१५२
५६. शरीर में नाड़ियां	१५४

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

६०. नाड़ियों के स्थान १५६
६१. वायु का वासस्थान १५७

२. परिशिष्ट १

६२. योग शब्द का अर्थ १६१
६३. योग के भेद १६२
६४. हठ योग का अधिकारी १६६
६५. साधक की आहार विधि १६७
६६. हेयोपादेय वस्तु १६८
६७. काम में आने वाली वस्तुएं १६९
६८. योगी के लिये स्थान १७०
६९. आसन १७०
७०. आसन [चित्र] १७२
७१. स्वरोदय स्वरूप १७६
७२. स्वरोत्थान १७९
७३. तत्त्वों का स्वरूप १८०
७४. जैन रीति से तत्त्व १८१
७५. तत्त्व साधन रीति १८७
७६. तत्त्वों की पहचान १८८
७७. क्रियाएं १९१
७८. बन्ध के प्रकार १९७
७९. कुम्भकों के नाम १९९
८०. मुद्राओं का वर्णन २०४
८१. प्राणायाम के तीन भेद २१९
८२. प्राणायामका काल नियम २२०
८३. बन्ध लगाने की रीति २२२
८४. चक्रों के नाम २२४
८५. मूलाधार चक्र का वर्णन २२५
८६. कुंडलिनी नाड़ी २२५
८७. चक्रों का वर्णन २२६
८८. नाड़ियां २२८
८९. कुंडली चलाने का उपाय २३०
९०. मन ठहराने का दृष्टांत २३३
९१. मानसी पूजा की रीति २४१
९२. समाधि के भेद २४७
९३. अजपा जाप के शब्दों के अर्थ २५६
९४ योगी का स्वरूप २६०
९५. ध्यान और समाधि २६४
९६. पदार्थ निरूपण २७८
९७. जीवसिद्ध ५७ प्रकार से २७९
९८. आर्त ध्येय चार भेद २८३
९९. रौद्र ध्येय चार भेद २८४
१००. धर्म ध्येय चार भेद २८६
१०१. शुक्लध्येय चार भेद २८८
१०२. सविकल्प निर्विकल्प का दृष्टांत २८९
१०३. ध्येय आदि आठ भेद २९३

३-परिशिष्ट-२ २९४

१०४. ध्यान क्रम
१०५. ध्यानी का लक्षण २९४
१०६. मन के भेद, लक्षण २९५
१०७. बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का स्वरूप २९६
१०८. स्थिरता का क्रम २९७
१०९. एकाग्रता लयावस्था २९९
११०. अपने पर विश्वास ३००
१११. मानसी पूजा ३०४
११२. रूपस्थ ध्यान फल ३०९
११३. वृत्ति अवलोकन ३०९
११४. विकास, जागृति ३१४
११५. भूगर्भ ३१४
११६. ध्यान का स्थान ३१५
११७. वृत्ति निरीक्षण ३१६
११८. रूपातीत ध्यान ३१९
११९. निरालम्बन ध्यान ३१९
१२०. ग्रन्थ कर्त्ता का परिचय ३२०

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

टिप्पणी

५. निर्गुण-सगुण स्वर ८
६. सूर्य सक्रान्ति महीने १०
७. १४ गुणस्थान १४
१२. दस नाद १८
१३-१४. सिद्धियां और लब्धियां २०
१६. अजपाजाप २१
१८. समाधि भेद २३
२०. से २२. मुद्राबंध, आसन २५
२५. षट्कर्म २८
२६. जैन अष्टांग से योग दृष्टि २९
२९. ध्यान स्वरूप और स्थान ३३
४२. रोग विशेष निर्णय ५७
४६. कार्य की सफलता ६५
४६. (ङ) स्वरोदय से अग्नि शांत ६६
४६. (झ) रोग प्रतिकार ६८
४६. (ट) स्वरों से शक्ति प्राप्ति ७२
४६. (ड) स्वर और देवता राधना ७३
४७. तत्त्वों की पहचान का उपाय ७४
६२. गर्भ पहचान ९२
६३. पुत्र प्राप्ति उपाय ९६
६४. वर्षा प्रश्न ९९
६४. (२) फसल उपज का प्रश्न ९९
६४. (७) वशीकरण १०१
६४. (१०) छिपी वस्तु का प्रश्न १०१
६७. स्वरोदय का वचन अटल १०५
६८. (६) वैरी मिलाप उपाय १०९
६९. वशीकरण ११०
७०. स्वर द्वारा आयु ज्ञान ११३
७०. (२) पौष्णकाल से मृत्यु निर्णय ११५
७०. (३) नेत्र लक्षण से कालज्ञान ११६
७०. (४) कान से आयु ज्ञान ११७
७०. [५] मस्तक से आयुज्ञान ११८
७०. [६] हाथों से मृत्यु ज्ञान ११८
७०. [१०] स्वप्न से मृत्यु ज्ञान १२०
७०. [११-१९] अन्य उपायों से मृत्यु ज्ञान १२० से १२३
७०. [२०] छाया पुरुष से मृत्यु ज्ञान १२३
७० [२३ से २४] शकुन से काल ज्ञान १२५
७०. [२८] यंत्र से कालज्ञान १२८
७०. [ख] अन्य आचार्यों का मत १२९
७०. [ट] मंत्र से कालज्ञान १३१
७०. [ढ] मंत्र द्वारा कालज्ञान १३२
७०. [थ] प्रश्न द्वारा कालज्ञान १३४
७०. [प] आयुर्वेद के कालज्ञान १३५
७०. [फ] शरीर लक्षणों से काल ज्ञान १३८
७१. केवली अठारह दोष रहित १४६
७२. आयु के प्रकार १४८
७३. कुंडलिनी शक्ति १४९
७४. समाधि में प्रलोभन १५१
७५. योगी की योगातीत अवस्था १५१
७६. अजपाजाप १५३
७७. कुंडलिनी १५४
७९. स्वर बल के कार्य १५८
८०. विपरीत स्वरों का फल १५९
८२. तीन बातें १६१
८३. स्त्री स्वरोदय शास्त्र १६६
८५. समय और तत्त्व २२०
८६. समय तालिका २२२
८७. परकास प्रवेश विधि २३८
८९. ॐ की उत्पत्ति २५६
९०. ॐ का रहस्य २६३

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकाशकीय

हर्षका विषय है कि ग्राज हम ग्रष्टांग निमित्तका चौथा विभाग स्वर विज्ञान पुस्तक पाठकों के कर कमलों में समर्पित कर रहे हैं। इसके पहले तीन विभाग—१—शकुन विज्ञान, २—स्वप्न विज्ञान तथा ३—प्रश्न पृच्छा विज्ञान प्रकाशित हो चुके हैं। ४—स्वर विज्ञान भी पाठकों के हाथ में है।

अष्टांग निमित्त के ये सभी विभागों के प्रस्तुत कर्ता व्याख्यान दिवाकर, विद्याभूषण, न्यायतीर्थ, न्यायमनीषी, स्नातक, चतुर्थ व्रतधारी जैन श्रावक श्रद्धेय पंडित श्री हीरालाल जी साहब दूगड़ एक प्रतिभाशाली विद्वान हैं। आपने तीस वर्षों के सतत-ग्रनथक तथा कठोर परिश्रम से अनेक प्राचीन ग्रंथ भंडारों में जाकर वहां सुरक्षित हस्तलिखित पांडूलिपियों से दोहकर इस ग्रंथरत्न का संकलन किया है ग्रौर इसको अर्थ-विवेचन-टिप्पणियों से सरल एवं सुरुचिकर बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी। सच पूछो तो ग्रष्टांग निमित्त के ये चारों विभाग अपने विषय के ग्रनूठे एवं अनूपम संग्रह हैं। इन विभागों में कितना वृहत संग्रह हैं पाठक इन ग्रंथों की विषयानुक्रमाणिका से ही जान लेंगे और इनके पठन पाठन से इस विषय की महानता तथा गंभीरता उपयोगिता का परिचय पा लेंगे। सच बात तो यह है कि अनेक पूर्वचार्यों द्वारा रचित ग्रनेक प्राचीन ग्रन्थों के दोहन रूप नवनीत को विद्वान लेखक ने सागर को गागर में बन्द कर हिन्दी जगत की महान सेबा की है। हम सब ग्रापका जितना भी आभार मानें उतना ही थोड़ा है।

मात्र इतना ही नहीं ग्रपितु विद्वान् लेखक ने सत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में लगातार सात-आठ महीने दक्षिण भारत में कठिन परिश्रम पूर्वक भ्रमण करके इन ग्रन्थों के ग्रग्रिम ग्राहक बनाने के लिए भगीरथ प्रयत्न भी किया है। मान-ग्रपमान की परवाह किये बिना घर-घर, दुकान-दुकान (door to door) नगर-नगर में जा-जाकर जैन साहित्य के प्रचार में वीर सेनानी की तरह कटिबद्ध हो रात-दिन एक करके जैन शासन की पूरी लगन से सेवा की है। यदि सच पूछा जाय तो कृषगात्र में एक कर्मठ युवक की ग्रात्मा काम

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कर रही है। आपके उत्साह और परिश्रम को देख कर हम गद्गद् हो जाते हैं। इतने उच्चकोटि के विद्वान होते हुए भी आपको अभिमान छू नहीं पाया। जैन साहित्य के प्रचार की लगन आप के रोम-रोम में समाई हुई है।

अष्टांग निमित्त में १—अंग विद्या, २—स्वर विद्या, ३—लक्षण विद्या, ४—व्यंजन विद्या, ५—स्वप्न विद्या, ६—उत्पात विद्या, ७—भौम-विद्या ८—अन्तरीक्षत विद्या। (ज्योतिष विद्या) इन आठ विद्याओं का समावेश है। इनकी विषय सारिणी को संक्षिप्त परिचय में दुग्गड़ जी ने स्वयं स्वप्न विज्ञान में अपने विशेष वक्तव्य में दे दिया है उससे पाठक महोदय इसकी उपयोगिता का महत्त्व समझ जावेंगे।

अष्टांग निमित्त के आठ अंगों में से इन प्रकाशित चार विभागों में पांच अंगों का समावेश हो जाता है। बाकी के तीन अंगों में से सामुद्रिक-हस्तरेखा, स्त्री-पुरुषों के शारीरिक लक्षणों द्वारा तत्सम्बन्धी परिचय का वृहत्संग्रह भी तैयार हो चुका है। तथा अन्तरिक्ष, व्यंजन, उत्पात विद्याओं पर अभी लिखना बाकी है। दुग्गड़ जी से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इन बाकी विद्याओं को भी शीघ्र लिखने की कृपा करें जिससे अष्टांग निमित्त के आठों अंग प्रकाशित होकर जन समाज को लाभ प्राप्त हो सके।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

हम चाहते थे कि ये तीनों विभाग शीघ्राति-शीघ्र प्रकाशित हो जाते, परन्तु जिस प्रेस में पुस्तकें छपने के लिये दी थीं उसमें अचानक आग लग जाने से छपने के लिये दिया हुआ सब कागज स्वप्न विज्ञान की प्रेस कापी तथा छपे हुए फर्मे जलकर राख हो गए।

१—श्री दूगड़ जी की आंखों का आपरेशन ठीक हो गया, चश्मा लग जाने के बाद श्री दूगड़ जी ने स्वप्न विज्ञान पर लिखे हुए रफ नोट्स से बड़े परिश्रम तथा सावधानी पूर्वक प्रेस कापी फिर तैयार की और इसे छपने के लिए दूसरे प्रेस में दे दिया गया।

नया कागज खरीदने के लिये भी बहुत परेशानी हुई। १—अतिवृष्टि, २—रेलों की हड़तालें, साथ ही सरकार की कागज (Export) नीति के

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कारण मार्कीट में कागज का एक दम अभाव हो गया और दाम भी एक दम दुगने ड्योढ़े हो गये, फिर भी रुपया लेकर कई दिनों तक मार्कीट में चक्र लगाने पर भी शीघ्र कागज उपलब्ध न हो सका। बहुत कठिनाई से बड़े मंहगे भाव में कागज मिला और प्रेस में देकर पुस्तकों के छपने की व्यवस्था की जा सकी।

स्वर विज्ञान के विषय में--

तीन-चार वर्ष पहले स्वरविज्ञान तथा स्वप्नविज्ञान की प्रेस कापियां भाई पुखराज जी, व भाई सरदारमल जी को श्री दुग्गड़ जी ने मद्रास उनके मंगवाने पर भेजी थी। उन्होंने स्वामी ऋषभदास जी को अवलोकनार्थ दीं। स्वामी जी ने उन्हें आद्योपांत पढ़ा और इसे प्रकाशित कराने की अनुमति दे दी। तत्पश्चात उसी वर्ष आचार्य विजयविक्रम सूरि आदि जैन मुनिराजों का मद्रास में चतुर्वास होने से स्वरोदय तथा स्वप्न विज्ञान की प्रेस कापियां देखने के लिए उन्हें दे दी गई। उन्होंने भी इन्हें पढ़ा और छपाने के लिए अनुमति दे दी।

इसी बीच में स्वरोदय विज्ञान के "कालज्ञान" भाग वाली कॉपी खो गई, दोनों भाइयों के बहुत तलाश करने पर भी न मिल सकी। "कालज्ञान" वाली कापी के सिवाय—बाकी की प्रेस कॉपियां भाई श्री पुखराज जी ने वापिस लौटा भेजीं।

अब स्वरोदय विज्ञान के खोये हुए भाग "कालज्ञान" का अभाव कैसे पूरा किया जावे। यह भी एक प्रश्न चिह्न बन गया।

श्री दूगड़ जी ने इसे फिर नये सिरे से लिखकर प्रेस कापी तैयार की। इसी चक्कर में छः महीने व्यतीत हो गए। सितम्बर १९७३ को कागज मिलने पर तथा दोबारा प्रेस कापियां तैयार होने पर फिर इन्हें दूसरे प्रेस में छपने के लिये दिया गया।

इन पुस्तकों के प्रकाशन में श्री दूगड़ जी ने इतनी लगन तथा झड़प से काम को निपटाया है कि तीन मास के अल्प समय में १—स्वप्न विज्ञान, २—प्रश्न पृच्छा विज्ञान तथा ३—स्वरोदय विज्ञान छपकर तैयार हो गए हैं

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

और ग्राहक महानुभावों को भेजने में कृतकार्य हुए हैं।

इनके लेखन-संपादन-संशोधन-प्रूफ-संशोधन आदि का सारा कार्य श्री दूगड़ जी ने स्वयं किया है। इस कार्य को झड़प से पूरा करने के लिए कई कई रातों सोये तक नहीं। न खाने की चिन्ता न सोने की परवाह। विश्राम की तो बात ही क्या !

हम इन्हें कई बार कहते कि पूज्यवर्य—यह आप क्या कर कहे हैं ? आप के स्वास्थ्य, अवस्था और आयु को देखकर हम शिशघर रह जाते हैं कि आप इतनी कठोर साधना के पीछे अपने स्वास्थ्य से हाथ न धो बैठें।

आपके पास एक ही उत्तर पाते कि भाई मेरे सिर पर बड़ी भारी जिम्मेवारी है। जिन-जिन महानुभावों ने ग्राहक बनाने बनने में इस कार्य में मुझे सहयोग दिया है। देरी होने से पता नहीं वे अपने मन में क्या-क्या सोचते होंगे ? इसलिए मैं कृतसंकल्प हूं कि शीघ्रातिशीघ्र पुस्तकें प्रकाशित होकर ग्राहक महानुभावों को पहुंचा दी जावें। मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता न करें शासनदेव मेरे इस शासन सेवा के कार्य में उत्साह बढ़ाने में अवश्य सहायक हैं। मेरे स्वास्थ्य की उन्हें चिन्ता है इस लिए मुझे तो मेरी लगन से काम करने दो।

विलम्ब के लिए क्षमा याचना

हम आशा करते हैं कि ग्राहक महानुभाव पुस्तकों के प्रकाशन होने में आशातीत विलम्ब होने के कारण को समझ गए होंगे। हमने भी इनके प्रकाशन में कम से कम समय में तैयार कराने में पूरी सावधानी बरती है। कुदरत के सामने किसी का ज़ोर नहीं। इसके लिये हम भी विवश हैं। फिर भी विलम्ब के लिये हम ग्राहक महानुभावों से क्षमा प्रार्थी हैं।

सहयोगियों की उदारता के लिए आभार प्रदर्शन

इन तीनों विभागों तथा शकुन विज्ञान के ग्राहक बनाने तथा जैन साहित्य के प्रचार के लिए जिन-ज़िन महानुभावों ने श्री दूगड़ जी का उदार वृत्ति से सहयोग दिया है उन्होंने उदारता, स्नेह तथा ज्ञान के प्रति सच्ची भक्ति का परिचय दिया है। आशा करते हैं कि इसी प्रकार आगे के लिए भी आपका

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सदा सहयोग मिलता रहेगा। आपकी शासन सेवा के कार्यों के करने में शासन देव आपको प्रेरणा देते रहे।

अन्त में पूज्य दूगड़ जी साहब के लिये हम जितना भी आभार प्रदर्शन करें उतना ही थोड़ा है, उनके कठोर परीश्रम तथा लगन के लिये हम नत मस्तक हैं। उनके सौजन्य तथा तत्परता के लिये हम गद्‌गद् हैं। उनके कार्य की, जैन साहित्य के प्रसार की भावनाओं की हम कद्र करते हैं। शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आप शत आयु हों। जिससे जैन शासन की सेवा में आपका सहयोग सदा मिलता रहे। आपका कोटिशः अभिनन्दन करते हुए हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं अधिक क्या कहें।

जैन बन्धुओं से हमारा नम्र निवेदन है कि आप श्री दूगड़ जी के द्वारा जैन साहित्य के तैयार ग्रंथों के सर्वत्र प्रचार तथा प्रसार के लिए हमारा पूरा-पूरा सहयोग दें। ताकि हम अगले ग्रंथों का भी शीघ्र प्रकाशन कराने के लिये उद्यमशील हो सकें।

दिल्ली—३०-११-७३ अध्यक्ष—मनोजकुमार जैन

पुस्तकों की छपाई का उत्तम प्रबन्ध

संस्कृत प्राकृत, हिन्दी भाषा में धार्मिक, सामाजिक एवं अन्य सब प्रकार की पुस्तकों को, भाषा की दृष्टि से शुद्ध धार्मिक परिभाषाओं से परिमार्जित, उत्तम तथा सुन्दर गेटअप, सुन्दर टाइप में प्रकाशित करने का उत्तम प्रबन्ध है। गुज-राती भाषा से हिन्दी भाषा में अनुवाद करने की संतोषजनक व्यवस्था है। अशुद्ध भाषा को शुद्ध भी किया जाता है प्रूफ संशोधन की भी सुविधा है। अतः शुद्ध और उत्तम प्रकाशन के लिए नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

पंडित हीरालाल दूगड़ जैन

व्यवस्थापक—ओसवाल जैन प्रिंटिंग सेंटर

५७ अहाता बलवीर मोतीराम रोड

शाहदरा-दिल्ली-११००३२

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रस्तावना

ॐ ह्रीं श्रीं ऐं अर्हं सर्वदोष प्रणाशन्यै: नमः।

इस क्लेशपूर्ण कषाय वृत्तियों से भरपूर दुःखागार अपार संसार में चाहे कोई भी आस्तिक अथवा नास्तिक विचारधारा का व्यक्ति क्यों न हो, वह नाना प्रकार के रोग-शोक चिन्ताओं आदि से ग्रसित देखने में आता है। उनकी आत्म-घातिनी व्याधियों के प्रतिकार के लिए अनेक प्रकार के उपायों की खोज में मानव लगा हुआ है, पर फिर भी विश्व में दिन प्रतिदिन मानव आधि, व्याधि तथा उपाधियों से वृद्धि पाता जा रहा है। बाह्य और अभ्यन्तर व्याधियों और उपाधियों से सारा विश्व आक्रांत है। आत्मघातिनी बाह्य शारीरिक व्याधियों के प्रतिकार के लिये आयुर्वेदिक कला-कौशल वैद्य, युनानी हिकमत में निपुण हकीम, विश्वविद्यालयों से डिग्री प्राप्त एलोपैथिक डाक्टर, होम्योपेथी, वायोके-मिकपेथी, नेचरोपेथी (प्राकृतिक चिकित्सा) क्रेमोपेथी इत्यादि अनेक पद्धतियों के चिकित्सक एवं तांत्रिक, मांत्रिक, यांत्रिक आदि लोग अपनी चिकित्सा से संसार के सब प्राणियों के रोग शोकादि का निवारण करने के लिये कटिबद्ध हैं। परन्तु फिर भी मानव को रोग, क्लेशादि मुक्ति प्राप्त नहीं होती। दिन प्रतिदिन मानव जीवन परेशानियों में उलझा जा रहा है। जरा विचार कर देखा जाये तो व्याधि क्या है पहले इसे समझना आवश्यक है, इसके अनन्तर उसके प्रति-कार के उपाय कौन से हैं ऐसा निर्णय करना भी अनिवार्य है इसके लिये जैन धर्मानुयायी वाग्भट्ट ने अपने अष्टांगहृदय नामक चिकित्सा ग्रन्थमें कहा है कि—

"रोगादौ परिक्षेत तदन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ १॥"

अर्थात्—वैद्य पहले रोग की परीक्षा करे, तदनन्तर औषधि का निर्णय करे, फिर चिकित्सा कर्म ज्ञानपूर्वक काम में लावे।

जिस प्रकार बाह्य शारीरिक व्याधि के लिये निदान खोजने पर प्रतिकार संभव है वैसे ही अध्यात्म-पक्ष में बाह्य तथा अभ्यंतर व्याधियों का निदान भी सोचा जाना परमावश्यक है। क्योंकि मात्र शारीरिक चिकित्सा से आत्म

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

शांति संभव नहीं है। आत्मिक आधि-व्याधियों रोगों का मुख्य निदान जन्म-मरणादि का कारण कर्मबन्ध के अतिरिक्त और कोई दृष्टि गोचर नहीं होता। वास्तव में इस कर्मबन्ध के कारण से ही जगत में सब प्राणी मानसिक, कायिक, वाचिक, आध्यात्मिक, दैविक, आधिभौतिक इत्यादि दुःखों को न चाहते हुए भी विवश होकर सहन कर रहे हैं। इस कर्मबन्ध रूपी राजरोगों के निदान (कारणों) को नाश करने के लिये तथा अपूर्व शांति प्राप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदायों के धर्म गुरुओं, आचार्यों, तीर्थंकरों आदि ने अपनी योग्यता और बुद्धि पूर्वक उपाय बतलाये हैं।

कहने का सारांश यह है कि यह आर्यावर्त-भारत प्राचीन समय से ही इस आध्यात्मिक विद्या की पराकाष्टा तक पहुंचा हुआ है। इसकी पावन भूधरा पर अनेकानेक महापुरुष इस विद्या के पारगमी हो चुके हैं। अनेक लब्धियों, सिद्धियों, निधियों के चमत्कारों के योग से नास्तिक लोगों पर भी आत्मा की अस्तित्वता की गहरी छाप डालने वाले महात्माओं की भी कमी नहीं थी। प्रत्यक्ष रूप से पुनर्जन्म का अनुभव कराने वाले जातिस्मरण ज्ञान धारक होकर अन्य मानवों को पुनर्जन्म के विषय में निश्चय श्रद्धा उत्पन्न कराते थे। योगबल से भूत-भविष्यत और वर्तमान काल सम्बन्धित विप्रकृष्ट दूर वस्तु का संशय दूर कर आत्मा की ज्ञान आदि अनन्त शक्तियों का बोध कराते थे।

ऐसे अनेक रत्न पुरुषों की धारक भारत-मातृभूमि आज जड़ विद्या के उपासकों के प्रभाव से शोचनीय स्थिति में आ चुकी है। अध्यात्म विद्या का प्रचार शून्यवत होता जा रहा है। वह भारत जड़विद्या (विज्ञान) की शोध खोज की दौड़ में अध्यात्म विद्या को भूलता जा रहा है। यदि ऐसा ही रहा तो आत्मभान को भुलाकर और सच्चरित्रता को खोकर मानव समाज अनाचार के गर्त में पड़ता जा रहा है और पड़ता जायेगा।

ऐसा अनुभव होता है कि वर्तमान काल के दूषित वातावरण में भी यदि कृपालु योगी महात्मा लोग न बचावेंगे तो जड़वाद का साम्राज्य छा जाना संभव है। सुख प्राप्ति के लिये मानव योग विद्या और आत्मविद्या के अभ्यास को भुला कर अवनति की ओर जा रहा है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जैन समाज में योगाभ्यासी गुरुओं का आजकल प्रायः अभाव सा हीं है। इस अभाव को दूर करने के लिए अध्यात्मानुभवी योगीश्वर महात्माओं, जैनाचार्यों का साहित्य आज भी विद्यमान है। इनसे योगाभ्यास चालू कर लाभ उठावें।

श्री वीतराग सर्वज्ञ देवाधिदेव तीर्थंकरदेवों का धर्म तो वही हो सकता है जिससे राग-द्वेषादि मिटाकर आत्मा प्रशमरस निमग्न बन जावे। जिन उपायों से राग-द्वेष आदि पर विजय एवं शांति, आत्मज्ञान, पूर्णानन्दतथा समाधि की प्राप्ति होकर बाह्य और अभ्यंतर व्याधियों का नाश होना संभव है। जब तक आत्मा में निर्मलता और स्थिरता नहीं आती तब तक प्रशमरस की प्राप्ति भी असम्भव है। यह अवस्था योगाभ्यास से प्राप्त हो सकती है। कहा भी है-

"अनेक शत-संख्याभिस्तर्क व्याकरणादिभिः।
पतिता शास्त्रजालेषु प्रज्ञया: ते विमोहिता: ॥ १ ॥ (योग बीज ८)

अर्थ—सैकड़ों तर्क शास्त्र तथा व्याकरणादि पढ़कर मनुष्य शास्त्र जाल में फंस कर केवल विमोहित हो जाते हैं। वास्तव में प्रकृति ज्ञान योगाभ्यास के बिना उत्पन्न नही होता।

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्व शास्त्रानि चैवहि।
सारस्तु योगीभिः पीतस्तक्रं पीवन्ति पंडिता: ॥

(ज्ञान संकल्नि‍नी तंत्र ५)

अर्थ—चारों वेदों तथा सब शास्त्रों को मथ कर उनका मक्खन स्वरूप सारभाग तो योगी चाट गये और उसका असार भाग तक्र (छाछ) पंडित लोग पी रहे हैं।

योगाभ्यास को जैनों ने आत्म साधना के लिये सदा सर्वदा मुख्य साधन माना है। तीर्थंकरदेवों से लेकर चौदह पूर्वधारी श्री भाद्रबाहु स्वामी, श्री सिद्धसेन दिवाकर, श्री हरिभद्र सूरि, श्री हेमचन्द्राचार्य, श्री आनन्दघन जी, श्री यशोविजय जी, श्री चिन्दानन्द जी आदि सब महान योगाभ्यासी हुए हैं। तीर्थंकर देवों की ध्यानावस्था में विराजित प्रतिमाएं तो साक्षात् योगाभ्यास की मुख बोलती आकृतियां हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उपाध्याय यशोविजय जी महाराज ने तो स्पष्ट कहा है कि—

"मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र ।" (द्वात्रिंशिका १०, १)

आचार्य हरिभद्र सूरि ने भी फरमाया है कि—

"मुक्खेण जोयणाओ जोगों" (योगविंशिका १)

अर्थात्—जिन-जिन साधनों से आत्मा की शुद्धि और मोक्ष का योग होता है उन सब साधनों को योग कह सकते हैं ।

पातंजल योगदर्शन में भी योग का लक्षण—"योगश्चित्त वृत्ति निरोधः ।"

अर्थात्—चित्त की वृत्तियों को रोकना योग कहलाता है ।

इस प्रकार योग की और भी अनेक परिभाषाएं हैं ।

योग का महत्व

"योगाः कल्पतरुः श्रेष्ठो, योगश्चिंतामणिः परः ।
योगः प्रधानं धर्माणां, योगः सिद्धे स्वयं ग्रहः ।। ३७ ।।

(योगबिन्दु हरिभद्र सूरि)

अर्थात्—योग कल्पवृक्ष है, योग उत्तम चिन्तामणि रत्न है । योग सब धर्मों में प्रधान है । योग स्वयं मोक्ष प्रदाता है ।

भारत के जैन, वैदिक और बौद्ध इन तीनों प्राचीन धर्मों का समान रूप से यह सुनिश्चित सिद्धान्त है कि मानव जीवन का अन्तिम साध्य उसके आध्यात्मिक विकास की पूर्णता और उससे प्राप्त होने वाला परम कैवल्य एवं निर्वाण पद है । उसकी प्राप्ति के लिये जितने भी उपाय उक्त तीनों धर्मों में बतलाये गये हैं उनमें अन्यतम विशिष्ट 'योग' है । योग यह प्राचीन आर्य जाति की अनुपम आध्यात्मिक विभूति है । इसके द्वारा अतीत काल में आर्य जाति ने आध्यात्मिक क्षेत्र में जो उत्कर्ष प्राप्त किया था, उसका अन्यत्र दृष्टांत मिलना दुर्लभ है । योग का ही दूसरा नाम आध्यात्म-विद्या है ।

योग मोक्ष प्राप्ति का निकटतम उपाय होने से मुमुक्षु आत्माओं के लिये नितान्त उपादेय है । इसी दृष्टि को सन्मुख रखकर भारतीय महापुरुषों ने इसकी उपोगिता को स्वीकार करते हुए अपने-अपने दृष्टिकोण से इसका पर्याप्त वर्णन किया है । प्रमाण के लिए जैनों के आगमादि, बौद्धों के

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

त्रिपिटिक आदि और वैदिक धर्म के उपनिषदादि ग्रन्थों के पर्याप्त उद्धरण लिखे जा सकते हैं।

योग का शब्दार्थ

शब्द शास्त्र के अनुसार "युज" धातु से घञ् प्रत्यय के द्वारा योग शब्द निषपन्न होता है। युज नाम के दो धातु हैं। एक समाध्यर्थक, दूसरा संयोगार्थक है। जैन संकेतानुसार तो शुक्लध्यान के पाद चतुष्टय में ही समाधि का तिरोधान होता है, अतः समाधि यह ध्यान की अवस्था विशेष ही है। सारांश यह है कि समाध्यर्थक युज धातु से निष्पन्न योगार्थ में समाधि और ध्यान ये दोनों ही गर्भित हो जाते हैं। अब रहा संयोगार्थ योग शब्द, सो उसमें योग के वे समस्त साधन निर्दिष्ट हैं, जिनकी साधक को अपने अन्दर ध्यान अथवा समाधि की योग्यता प्राप्त करने के लिये आवश्यकता होती है।

प्रस्तुत अष्टांग निमित्त के आठ अंगों का संकलन करना ही हमारा ध्येय है अतः उसमें एक अंग 'स्वर' विद्या भी है। स्वरके दो भेद हैं १—प्राणियों की ध्वनियों आदि से निकलने वाले शब्दादि तथा २—नासिका द्वारा निकलने वाला श्वासोश्वास, पहले भेद का विवेचन हम अपनी "शकुन-विज्ञान" नामक पुस्तक में दे चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दूसरे प्रकार के स्वर सम्बन्धी विवेचन है, जो कि नासिका से श्वासोश्वास द्वारा निकलता है। यह स्वर प्राणायाम द्वारा साधा जाता है और इसकी साधना का विधान पातंजल योग शास्त्र में विस्तार पूर्वक किया है। इस योग को हठयोग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस हठयोग की साधना करने वाले वर्तमानकाल में जैन अध्यात्म योगी श्री चिदानन्द जी महाराज हो गये हैं।

अतः अष्टांग निमित्तके एक अंग "स्वर-विद्य" की पूर्ति-केलिये इन्हीं जैन महानयोगी चिदानन्द जी महाराज कृत "स्वरोदय सार" (पद्य-बद्ध) का विस्तृत विवेचन तैयार कर पाठकों के करकमलों में दे रहे हैं तथा इस हठयोग के आठ अंगों में से जैन धर्मकी अध्यात्म साधन पद्धतिमें कैसे कहां तक उपयोगी है इसके लिये इन्हीं के द्वारा रचित पुस्तक "अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश" का उपयोगी भाग परिशिष्ट रूप में दे दिया है। इसमें श्री चिदा-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

न्द जी महाराज ने हठयोग का प्रतिपादन कर जैन दृष्टि से आत्म कल्याण में उसका क्या और कैसे उपयोग है, इसका विस्तार से विवेचन किया है और इसमें जैन दर्शन की शैली से कितना अंश उपयोगी है इस बात का बड़ी उत्तम रीति से विश्लेषण भी किया है। यहां तक कि यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का विवेचन ऐसी हृदयंगम पद्धति से किया है कि साधारण बुद्धि वाला मनुष्य भी इससे लाभ उठा सकता है। योग के कई ऐसे खास रहस्यों को जिसका स्पष्टीकरण पात्र की योग्यता-अयोग्यता पर निर्भर है उन्हें छोड़कर बाकी सब बातें जिनमें कई महत्वपूर्ण विषय भी शामिल हैं और जिनका सम्बन्ध योग से है इस ग्रंथ में खोलकर रख दिये हैं। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध में सविकल्प ध्येय का प्रतिपादन करने केलिए तीर्थंकर मूर्ति की आवश्यकता बतलाई है और उत्तरार्ध में हठ-योग तथा राजयोग का सांगोपांग वर्णन किया है। साथ ही इसमें बतलाई गई क्रियाएं आदि जैन दृष्टि से किस प्रकार करनी चाहिये इसका भी सुन्दर खुलासा किया है। ये दोनों कृतियां योगीराज चिदानन्द जी महाराज की सम्यग्दृष्टि महायोगी किसी जैन गुरु के सानिध्य में रह कर योगाभ्यास द्वारा प्राप्त स्वानुभव की मुंह बोलती कृतियां हैं। (इसका पूर्वार्ध भाग यहां नहीं दिया)

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से योग की अनेक तरह की शैलियों तथा भेदों-प्रभेदों से प्रतिपादन किया है। परन्तु हम यहां हठयोग पद्धति का विवेचन कररहे हैं। इसका हेतु हम लिख चुके हैं। इस विषय को विशेष उपयोगी बनाने के लिये अनेक प्रकार की टिप्पणियां (Footnotes) भी इस ग्रन्थ में लिख दिये हैं।

हठयोग का सिद्धान्त—हठ योग का सिद्धान्त यह है कि स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर एक ही भाव में गुंफित हैं, और एक का प्रभाव दूसरे पर पूरा बना रहता है। स्थूल शरीर को अपने अधीन कर सूक्ष्म शरीर को अधीन करते हुए योग की प्राप्ति करने को हठयोग कहते हैं। योग निष्णात आचार्यों ने हठयोग को सात अंगों में विभक्त किया है—

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१—षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। हठयोग के ध्यान को ज्योतिर्ध्यान भी कहते हैं।

योग के सम्बन्ध में आज के लोगों में कुछ ऐसी मान्यता हो गई है कि योग सामान्य व्यक्ति से एकदम अगम्य है। योगी, जोगी, सन्यासी, वैरागी आदि नामों से प्रसिद्ध होने वालों में मानो कोई जड़ी-बूटी का चमत्कार हो, वे भभूति डालने वाले हैं, प्रकृतिगत अज्ञेय सत्ता को वश में करने वाले हैं ऐसी धारणा लोगों के दिलों में बैठ गई है। स्वार्थ साधने की इच्छा वाले, सांसारिक वस्तुओं अथवा ख्याति को चाहने वाले, और लोगों के व्हम और व्युदग्राह पर आजीवका पर निर्भर रहने वाले लोगों ने ऐसे खोटे विचारों का खूब प्रचार किया है। इस प्रकार वे लोग जनता को धोखे में लाकर खूब ठगते है। अतः उन से सावधान रहना चाहिये।

महर्षि पतंजली अपने योगदर्शन २।२९ में लिखते हैं कि—

"यम-नियम—ऽऽसन—प्राणायाम — प्रत्याहार — धारणा —ध्यान — समाधयोऽष्टांगानि।" अर्थात्—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं।

जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र ने योग शास्त्र में, शुभचन्द्र जैनाचार्य ने ज्ञानार्णव में भी इन आठ अंगों का प्रतिपादन किया है।

प्राणायाम

हठयोग के उपर्युक्त आठ अंगों में प्राणायाम चौथे नम्बर पर तथा दूसरी प्रकार से इसे सात अंगों में विभक्त किया गया है, उसमें प्राणायाम का पांचवां अंग माना है। वे सात अंग इस प्रकार है—

१—षट्कर्म, २—आसन, ३—मुद्रा, ४—प्रत्याहार, ५—प्राणायाम, ६—ध्यान, ७—समाधि। पतंजली आदि प्रमुख योगाचार्यों ने मोक्ष साधन के लिये प्राणायाम को उपयोगी मान कर स्वीकार किया है। पर वास्तव में प्राणायाम मोक्ष के साधनरूप ध्यान और समाधि के लिये अन्तःकरण की स्थिरता और निर्मलता के लिये अंशतः उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसलिये प्राणायाम को चित्त—अन्तःकरण को स्थिर और निर्मल करने में हेतुभूत होने

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

से मुमुक्षु आत्मा को मोक्ष प्राप्ति के लिये अग्रसर होने में प्रथम सोपान कह सकते हैं । पतंजली ने योग की व्याख्या करते हुए—**"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है ऐसा कहा है । मात्र इतना ही नहीं प्राणायाम की साधना से अनेक प्रकार की सिद्धियों, निधियों और लब्धियों की प्राप्ति भी होती है । तथा चमत्कारों आदि की योग्यता भी प्राप्त होती है । इसको जैनाचार्यों ने भी स्वीकार कर साधक को इनके प्रलोभन में न आने के लिये सावधान भी किया है और कहा है कि यदि साधक इनके प्रलोभन में आ जावेगा तो उसका पतन हो जावेगा ।

स्वर साधना की उपयोगिता

प्राणायाम द्वारा स्वरोदय की साधना से मानव अपने तथा दूसरों के भूत, भविष्यत और वर्तमान में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं का सहज में ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।

श्री कल्पसूत्रादि जैनागमों में अष्टांग निमित्त में 'स्वर' को एक प्रधान अंग माना हैं । हठयोग प्राणायाम से सिद्ध होता है । प्राणायाम स्वरोदय साधना के बिना अधूरा ही रह जाता है । मात्र इतना ही नहीं गणितज्ञ (ज्योतिषी) का ज्योतिष भी स्वरोदय ज्ञान के बिना लंगड़ा है। स्वरोदय ज्ञानी नाक पर हाथ रख कर नाक की नासिकाओं (नथनों) में से निकलते हुए श्वास को परख कर समस्त प्रश्नों का सच्चा उत्तर देकर सब समाधान करने में समर्थ हो जाता है। लाभालाभ, तेज़ी मंदी, वृष्टि-अनावृष्टि, सहयोग-वियोग, मित्रता-शत्रुता, युद्ध-मुकदमे आदि में जय-पराजय, वर्षफल, गर्भ में पुत्र-पुत्री, परदेश गमन से सफलता-असफलता, कार्य की सिद्धि-असिद्धि आदि नाना प्रकार की गुत्थियों को सुलझाने में स्वरोदय ज्ञान एक चमत्कारी विद्या है। मेरे विचार से जैन योगियों ने हठयोग का निषेध मोक्ष प्राप्ति का हेतुभूत न होने के कारण ही किया होगा जो कि वास्तविक है । क्योंकि हठयोग में आत्मा को भवभ्रमण से मुक्त होने का कोई विधान नहीं है । पर आत्मा को मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर करने के लिये हेतभूत चित्तवृत्ति निरोध के लिये तो इसका उपयोग परम योगीराज आनन्दघन जी, उपाध्याय यशोविजय जी, चिदानन्द जी,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

दादा जिनदत्त सूरि आदि अनेक जैन मुनि पुंगवों ने किया है। श्री आनन्दघन जी, चिदानन्द जी की कृतियां इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं।

यदि सच पूछा जाय तो हठयोग का सर्वथा निषेध करके जैनों के यहां से योगाभ्यास का प्रचार सर्वथा समाप्त हो गया है। आज जैनों में एक भी ऐसा योगी पुरुष देखने और सुनने में नहीं आता। जो हो।

स्वरोदय ज्ञान समझने की आवश्यकता

इस विश्व में प्रकृति ने मानव को विशेष ज्ञान दिया है; इसके परिणाम स्वरूप उत्तम पुरुष भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल की बातें हस्तामलकवत् जान सकते हैं। यह बात सर्वविद्वद् जन विदित है। ज्योतिष, रमल आदि से काल ज्ञान मालूम हो सकता है परन्तु इससे भी सरल एक रीति काल-ज्ञान जानने की है; और वह है स्वरोदय ज्ञान। इससे बिना किन्हीं अन्य साधनों के मात्र नासिका पर अंगुली रख कर स्वर की गति से कालज्ञान, शुभाशुभ आदि का ज्ञान की प्राप्ति होती है। शरीर की आरोग्यता में भी यह बहुत उपयोगी है। यह ज्ञान पूर्व काल के योगीश्वरों ने प्राप्त कर अनेक चमत्कारों से मानव समाज को चमत्कृत किया है। धर्म से विमुख प्राणियों को इसके द्वारा धर्म में दृढ़ किया है आज मानव अपने प्रमादवश इस ज्ञान से वंचित रह कर अंधे के समान विचरण कर रहा है। स्वरोदय का स्पष्ट अर्थ नासिका द्वारा निकलने वाले पवन की गति-विधियों का बोध है। इस शरीर में पांच प्रकार का पवन है। इसके निकलने के मुख्य दो रास्ते हैं। वे कैसे, किस-किस समय, किस-किस स्थान से निकलें तो क्या हो? उसका जो ज्ञान, वह स्वरोदय ज्ञान है।

स्थिर चित्त से एकांत में बैठ कर शुभ भावपूर्वक सद्गुरुदेव का स्मरण करके नाक में से निकलता हुआ स्वर देखे। पश्चात् इस स्वरोदय ज्ञान में बतलाई हुई विधि से बोध पाकर न्यायमार्ग से कार्य करें। ऐसा करने से यह स्वर ज्ञान सिद्ध होगा। इस ज्ञान का उपयोग निंदित कार्यों में करने से उल्टा अनिष्ट परिणाम आता है। इस बात को विशेष रूप से लक्ष्य में रखें। विचार करने से ज्ञात होता है कि स्वरोदय की विद्या पवित्र और आत्मा का कल्याण

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

करने वाली है। इसका अभ्यास कर पूर्वकालीन महानुभाव अपनी आत्मा का कल्याण कर अविनाशी पद प्राप्त करते थे। श्री जिनेन्द्र प्रभु तथा गणधर देव भी इस विद्या के पूर्ण ज्ञाता थे। अर्थात् वे इस विद्या के प्राणायामादि सर्व अंगों-उपांगों को भली भांति जानते थे। श्री भद्रबाहु स्वामी चौदह विद्या को अन्तर्मुहूर्त में पर्यालोचन करने के लिये यहां प्राणायाम की साधना करते थे। इस बात का उल्लेख अनेक स्थलों में पाया जाता है।

इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि पूर्व काल में जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर, जैनाचार्य हरिभद्र सूरि, जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि, जैनाचार्य दादा जिनदत्त सूरि, आदि अनेक महापुरुषों ने इस विद्या की पूर्ण साधना की थी। यह बात उनके द्वारा रचित योग के अनेक ग्रंथों से स्पष्ट ज्ञात होती है।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले श्री आनन्दघन जी, उपाध्याय यशोविजय-जी, चिदानंद जी (इस स्वरोदय आदि के कर्ता), ज्ञानसार जी आदि भी महायोगी हो गये हैं, इनके द्वारा रचित पद्यों, स्तुतियों, ग्रन्थों आदि से भी ज्ञात होता है कि पूर्वकाल में जैनमुनि— यति योगाभ्यास की साधना क्रिया बहुत अच्छी तरह से करते थे। परन्तु खेद का विषय है कि आजकल जैन शासन में ऐसा एक भी योगीपुरुष दृष्टिगत नहीं होता।

यति लोग जिन्हें पंजाब में पूज तथा राजस्थान में गुर्रा सा एवं गुजरात सौराष्ट्र में गोर जी कहते हैं वे तो आज प्रायः समाप्त हो चुके हैं। यदि कोई बचे-खुचे रह भी गये हैं तो वे गृहस्थी बन चुके हैं। कोई भूला बिसरा विद्यमान भी है तो वह भी इस विद्या से सर्वथा शून्य है।

मुनि लोग भी प्रायः अपने मान महत्व बढ़ाने में तथा आडम्बरों के माया जाल में उलझे हुए हैं। इसलिये स्वरोदय ज्ञान का अभ्यास शश शृंगवत हो गया है। यदि अन्य लिंगियों में कोई योगाभ्यासी होगा तो शायद खोजने से कहीं मिल भी जावे तो वह अध्यात्मावस्था प्राप्त न होने से नौली, धोती आदि क्रियों द्वारा लोग रंजन के अतिरिक्त आत्म कल्याणकारी मार्ग का दर्शन नहीं करा सकता।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कई आत्म कल्याण का मार्ग छोड़कर अज्ञानी संसारी मनुष्यों पर अपने ढोंग और दम्भ द्वारा साधुपन की छाप मोहर लगाने का यत्न करते हैं।

ऐसा होने से योगाभ्यास करने की रुचि कैसे हो सकती है? उस पर श्रद्धा कैसे हो? क्योंकि यह कार्य तो निर्लोभी और आत्मज्ञानी का है। मुनि का यही धर्म है यही कर्तव्य है। योग की साधना और ध्यान के अभ्यास द्वारा ही सच्चा आत्म कल्याण हो सकता है। ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है।

प्राणायाम योग की दस भूमिकाएं हैं। इनमें प्रथम भूमिका स्वरोदय ज्ञान की है। इस ज्ञान के अभ्यास द्वारा बड़े-बड़े गुप्त भेद भी मानव सुगमता-पूर्वक जान सकता है। तथा बहुत प्रकार की व्याधियों का निवारण भी कर सकता है। स्वरोदय शब्द का अर्थ नाक से श्वास का निकलना ऐसा होता है। इसमें सर्व प्रथम श्वास की पहचान की जाती है। नाक पर हाथ के रखते ही नाड़ी का ज्ञान होने से इसका अभ्यासी गुप्त बातों का रहस्य चित्रवत जान सकता है। इसके ज्ञान से अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं, परन्तु यह बात निश्चित है कि इस विद्या का अभ्यास योगा-भ्यासी गुरु के सहयोग बिना उत्तम प्रकार से नहीं किया जा सकता। क्योंकि पहले तो यह विषय कठिन है दूसरी बात यह है कि इसमें अनेक साधनों की आवश्यकता है। इस विषय पर जो ग्रंथ विद्यमान हैं उनमें इस कठिन विषय को अति संक्षेप से वर्णन किया है। इसलिये साधारण मनुष्य इस विषय को समझ नहीं सकते। आजकल इस विद्या को अच्छी तरह से जानने वाले और दूसरों को अच्छी तरह से सिखा सकें ऐसे योगी पुरुष देखने में नहीं आते।

वर्तमान काल में कई व्यक्तियों ने बिना योगी गुरु के सानिध्य के इस विद्या का अभ्यास करके लाभ के बदले हानि उठाई है। इसीलिये चिदानन्द जी ने अपनी इस कृति में स्थान-स्थान पर इस बात पर जोर दिया है कि प्राणायाम-स्वरोदय का अभ्यास सम्यग्दृष्टि ज्ञानी योगी गुरु के पास ही करना चाहिए।

आत्म कल्याणार्थी तथा योग साधना वालों के लिये यह सारा ग्रन्थ ही

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

बहुत उपयोगी है। हठयोग के अभ्यासियों के लिये तो यह विशेषोपयोगी है और साधारण व्यक्तियों के लिए भी इसका बहुत सा विभाग अत्यंत उपयोगी है।

हम लिख चुके हैं कि स्वरोदय ज्ञान चार बातों के लिये विशेष रूप से साधारण व्यक्तियों के लिये उपयोगी है:—१—आरोग्यता प्राप्ति के लिये, २—कालादि ज्ञान के लिये, ३—भविष्य में होने वाली शुभाशुभ घटनाओं को प्रश्न द्वारा अथवा श्वास द्वारा सुख-स्मृद्धि—शांति पाने के लिये एवं चमत्कारादि प्राप्त करने के लिये।

मैंने इस विषय को अपनी तरफ से सरल तथा सुरुचिकर बनाने में सब प्रकार का ध्यान रखा है। फिर भी कई स्थल ऐसे हैं जिनको समझने के लिये सम्यग्दृष्टि योगी गुरु की आवश्यकता है। पुस्तक में चाहे कितना भी खुलासा क्यों न किया जावे, चाहे कितनी सरल भाषा में लिखा जावे, चाहे कितना ही विवेचन किया जावे फिर भी उस विषय की गहराइयों तक पहुंचने के लिये योग्य गुरु की आवश्यकता तो रहती ही है। साधारण से साधारण विषय को समझने के लिये विद्यार्थी को गुरु की आवश्यकता रहती है, यह तो योग का विषय है इसे तो क्रियात्मक-प्रायोगिक (Practical) सीखने की आवश्यकता होने से गुरु की परमावश्यकता है। जैसे विज्ञान के विद्यार्थी के लिये क्रियात्मक प्रयोगों को प्रयोगशाला में जाकर प्रध्यापक (Professor) से सीखना पड़ता है।

स्वरोदय (नाक द्वारा निकलने वाले श्वास-प्रश्वास) में तत्त्वों के ज्ञान के लिये ग्रंथ कर्त्ता ने स्वयं कई रीतियां बतलाई हैं। इसके अतिरिक्त हमने भी अधिक सरल रीतियों को इस ग्रंथ में संग्रहित करदिया है, विचक्षण साधक यदि उपयोग देकर ध्यान से स्वरों की पहचान तथा इन स्वरों में तत्त्वों को जानने का अभ्यास कर लेगा तो उसे तत्त्वों को समझने में सरलता हो सकती है। और स्वरों में तत्त्वों का बोध पा लेने के बाद स्वयं ही अपने तथा दूसरों के प्रश्नों का समाधान कर सकता है। फिर भी यदि कोई अपने आप न समझ पावे तो उसे स्वरों में तत्त्वों के जानकार के पास से समझ लेना चाहिए।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

भाई पुखराज जी (जेठमल सुकनराज वालों) की भावना के अनुसार इस स्वरोदय विज्ञान के ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ के शीर्षक में "प्रभु महावीर की अमृतवाणी (Sayings of Lord Mahavira) के एक-एक करके सुबोध वाक्यों को भी दे दिया है। इनका प्रत्येक पाठक को मनन पूर्वक पढ़कर जीवन में आत्मसात करने का प्रयत्न करना चाहिए तथा पहले के दो फर्मों (३२ पृष्ठों) के प्रत्येक पृष्ठ के शीर्षक में एक-एक नीति वाक्य भी दिये हैं जो प्रत्येक मानव के लिये उत्तम शिक्षाप्रद हैं।

अन्तिम निवेदन

अष्टांग निमित्त का विषय अत्यंत उपयोगी होने से मैंने इस पर अपनी कलम से काम लिया है। तीस वर्षों के सतत परिश्रम से इसके चार विभाग प्रकाशित किये जा सकें :—इसमें पांच अंगों का समावेश है, बाकी के तीन अंगों में से लक्षण (सामुद्रिक—शरीर लक्षण) विज्ञान भी तैयार हो चुका है। और बाकी के दो अंग भी तैयार किये जा रहे हैं।

उपर्युक्त चारों विभागों के प्रकाशन में भाई पुखराज जी तथा सरदारमल जी प्रेरणा तथा सहयोग ही मुख्य कारण हैं। यदि सच पूछा जाये तो इनके सक्रिय सहयोग तथा प्रेरणा के बिना न तो यह साहित्य प्रकाशन ही हो पाता और न ही इसका प्रचार और प्रसार। इनके सिवाय और भी जिन-जिन महानुभावों ने इस कार्य में मेरा हाथ बटाया है उनकी नामावली भी प्रश्नपृच्छा विज्ञान में दे दी है। उनके सहयोग के लिये उन्हें अभिनंदन देता हूं आशा करता हूं कि आगे के लिये भी सब जैन बंधु इस कार्य में मेरा सहयोग देकर हाथ बटाते रहेंगे जिससे मैं इस वृद्धावस्था में जैन शासन की साहित्य सर्जन द्वारा अन्तिम श्वासों तक सेवा कर सकूं।

वर्तमान समय में अष्टांग निमित का सांगोपांग हिंदी, गुजराती आदि लोक भाषाओं में प्रकाशन का अभाव ही है। इसलिये मैंने इसी विषय को लिखकर इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया है। इसमें मैं कहां तक सफल हुआ हूं इसका विद्वर्य ही निर्णय दे सकते हैं। अधिक क्या लिखू।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अपरंच—इस अष्टांग निमित्त में अपने जीवन सम्बन्धि अनेक प्रश्नों का निर्णय पाने के लिये बड़ी सरल रीतियों का वर्णन होने से समझदार व्यक्ति स्वत: अपने जीवन में उपस्थित होने वाली उलझनों से छुटकारा पा सकता हैं और अर्द्धविद्गध ज्योतिषियों के चंगुल में फंसने से छुटकारा पा सकता है। यह अष्टांग निमित्त पूर्वधर मुनियों—आचार्यों द्वारा प्रतिपादित है इसलिये यह सर्वज्ञ के कथन तुल्य सर्वथा सत्य है। पर खेद का विषय है कि आज विज्ञान द्वारा जड़वाद के प्रसार और प्रचार के कारण अर्द्धविद्गध धन्धाधारी ज्योषियों द्वारा इस ज्ञान से लोग वंचित होते जा रहे हैं। एवं पूर्वाचार्यों द्वारा गुंथित इस विषय पर लिखे हुए ग्रन्थ रत्न प्रकाश में आये बिना अंधेरी अलमारियों तथा कोठरियों में पड़े-पड़े जीर्ण-शीर्ण होते जा रहे हैं अथवा दीमक (उधई) की खुराक बन रहे हैं।

अत: जैन शासन की वफादारी इसी में हैं कि लक्ष्मीपति सुश्रावक इस उपयोगी साहित्य के सर्जन और प्रकाशन के लिये उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग देकर अपनी लक्ष्मी से पुण्योपार्जन करें। सुज्ञेषु किं बहुन:।

विशेष सूचना

इस जगत में सब प्राणी सुख चाहते हैं। विपत्ति तथा दु:ख से छुटकारा पाने के लिये पीर-पेगंम्बरों, मन्त्रवादियों, साधु-सन्यासियों के चंगुल में फंसकर तथा देवी-देवताओं की मान्यताओं के चक्र में उलझ कर समय तथा धन का अपव्यय करके भी सुख शांति पाने के बदले परेशानियों से अधिक घिर जाते हैं और अन्त में श्रद्धा भ्रष्ट होकर मार्ग च्युत हो परेशानियों से ग्रसित जीवन व्यतीत करते रहते हैं।

इसके लिये सम्यग्दृष्टि महायोगियों और चौदह पूर्वधारियों ने तथा आत्म साक्षात्कारी ऋषि मुनियों ने समस्त मानव जगत के उपकार के लिये अनेक मंत्रगर्भित स्तुति-स्तोत्रों की रचना करने की कृपा की है। उन पर कल्पादि लिखकर उनमें गर्भित मंत्रों-यंत्रों-तंत्रों आदि की रचना, उनकी साधना और

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रयोगादि की सब विधियों का भी सुन्दर वर्णन किया है।

नवकार मंत्र, उवसग्गहरं, नमुत्थुणं, लोगस्स, भक्तामर, कल्याणमंदिर, वसुधारा, घंटाकरण महावीर, माणिभद्र, क्षेत्रपाल, भोमिया जी, धरणेन्द्र-पद्मावती, सरस्वती (विद्यादेवी) लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, इत्यादि अनेकानेक के मंत्रों-यंत्रों-तंत्रों का आराधन विधि सहित बहुत बड़ा संग्रह भी हिन्दी भाषा में लिखकर तैयार कर लिया गया है।

इन दोनों ग्रन्थों १—शारीरिक लक्षण तथा २—मंत्रादिसंग्रह के लिये यंत्रों के चित्र, ब्लाक्स तथा छपाई के लिये हजारों रुपयों का खर्चा है, तत्पश्चात् पुस्तकों के प्रकाशन आदि में भी अधिक महंगाई के कारण काफी खर्चा आ जावेगा।

इसलिये इनके प्रकाशन के लिये यदि जिनशासन—रसिक धर्मनिष्ठ सुश्रावक वर्ग आर्थिक सहयोग देने की उदारता दिखलावेंगे तो ही इसके प्रकाशन का कार्य हाथ लेना सम्भव है। जितना जल्दी सहयोग मिलेगा उतनी झड़प से कार्य सम्पन्न हो सकेगा।

इन दोनों ग्रन्थों के कई विभाग बन जावेंगे। जो महानुभाव एक-एक विभाग का पूरा खर्चा देकर छपवाना चाहेंगे यदि वे चाहेंगे तो उनका परिचय तथा फोटो उस विभाग में प्रकाशित कर दिया जावेगा और उन्हे कुछ पुस्तकें भी भेंट रूप दे सकेंगे।

इनके प्रकाशन से लाभ

इनके सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशन हो जाने पर अनेक भव्य जीव इनकी आराधना द्वारा संकटों से छुटकारा पाकर सुखी होंगे सम्यक्तत्व को पाएंगे तथा सम्यक्तव पाये हुए व्यक्ति जिनशासन में सुदृढ़ होकर जैन धर्म के सच्चे अनु-रागी बनेंगे। अधिक क्या लिखें।

दिल्ली

हीरालाल दूगड़

३०-११-७३

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र से संकलित
पदस्थ स्थान

प्रणव (ॐकार) का ध्यान

हृदयकमल में रहे हुए समग्र शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति का एक कारण, स्वर तथा व्यंजन सहित पंचपरमेष्ठि पदवाचक तथा मस्तक में रही हुई चन्द्र कला में से झरते हुए अमृत के रस से सराबोर महामंत्र प्रणव का कुम्भक करके चिंतन करें।

ॐकार ध्यानके जुदा-जुदा भेद

स्तंभन करने के लिए पीले ओंकार का ध्यान, वशीकरण के लिए अथवा क्षुभित करने के लिये मूंगे की कांति जैसा वर्ण, विद्वेषण कर्म के लिए काला तथा कर्मों को नाश करने के लिए चन्द्र की कांति के समान उज्ज्वल ॐकार का ध्यान करें।

पंच-परमेष्ठि (नवकार) मंत्र का ध्यान तथा फल

तीन जगत को पवित्र करने वाला और महापवित्र पंचपरमेष्ठि नम—स्कार मंत्र का योगियों को विशेष प्रकार से चिंतन करना चाहिये।

१—हृदय में आठ पंखड़ियों वाले सफेद कमल की कल्पना करें। उस कमल की कर्णिका में "नमो अरिहंताणं" की कल्पना करें, फिर "नमो सिद्धाणं" पूर्व दिशा में, "नमो आयरियाणं" दक्षिण दिशा में, "नमो उवज्झायाणं" पश्चिम दिशा में, "नमो लोए सव्वसाहूणं" उत्तर दिशा में, "ऐसो पंच नमुक्कारो" अग्नि कोण में, "सव्व पावप्पणासणो" नैऋ त्य-कोण में, "मंगलाणं च सव्वेसिं" वायव्य कोण में, "पढमं हवइ मंगलं ईशान कोण में स्थापन करें। इस प्रकार महामंत्र का ध्यान करें।

मन, वचन, काया की एकाग्रतापूर्वक जो १०८ बार इन नमस्कार महा-मंत्र का जाप करता है उसे आहार करते हुए भी एक उपवास का फल होता है तथा इसी महामंत्र की उत्तम प्रकार से आराधना कर के आत्म लक्ष्मी को प्राप्त कर इस भव में तीनों लोकों के प्राणियों द्वारा पूजित होता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हज़ारों पापों को करने वाले सैकड़ों प्राणियों की हत्या करने वाले जानवर भी इस महामंत्र की आराधना से देवलोक में गये हैं।

प्रकारांतर से पंचपरमेष्ठि विद्या

१—पंच परमेष्ठि से उत्पन्न सोलह अक्षरों की विद्या को दो सौ बार जपने से एक उपवास का फल होता है।

विद्या—-अरिहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-साहू।

३—छः अक्षरों वाली विद्या तीन सौ बार; ४—चार अक्षरों वाली विद्या चार सौ बार; ५—पांच अक्षरों वाली विद्या पांच सौ बार जपने से एक उपवास का फल होता है।

छः अक्षरी विद्या—अरिहंत सिद्ध। चार अक्षरी विद्या—अरिहंत। पांच अक्षर विद्या—अ-सि-आ-उ-सा।

इन विद्याओं के जाप का फल जो एक उपवास का बतलाया है; यह तो बाल जीवों को जाप में प्रवृत्ति के लिये है। पर परमार्थ से वास्तविक फल तो स्वर्ग और मोक्ष है। ऐसा ज्ञानी पुरुषों ने कहा है।

६—सिद्धान्त से उद्धार की हुई पांच वर्ण वाली, पांच तत्त्व विद्या का यदि प्रतिदिन जाप किया जावे तो सब क्लेशों को दूर करती है—

विद्या—ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ-सि-आ-उ-सा नमः।

७—नीचे लिखी विद्या का यदि एकाग्र चित्त से स्मरण किया जावे तो मोक्ष की प्राप्ति हो।

विद्या—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पन्नत्तो धम्मो मंगलं। अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमा। अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवलि पन्नतं धम्मं सरणं पवज्जामि।

८—पन्द्रह अक्षरों की विद्या का ध्यान—यह मोक्ष सुख को देने वाली विद्या है। तथा सर्व ज्ञान प्रकाशक सर्वज्ञ सदृश मंत्र का भी स्मरण करें।

विद्या—ॐ अरिहंत सिद्ध सयोगि केवलि स्वाहा।

मंत्र—ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यह विद्या और मंत्र महान् चमत्कारी है। यह विद्या और मंत्र सर्वज्ञ भगवान की सदृशता को धारण करते है।

९—सात वर्ण वाले मंत्र का ध्यान—संसार रूप दावानल को एक क्षण बार में उच्छेद करने की तुम्हारी इच्छा हो तो इस मंत्र का जाप करें—

मंत्र—नमो अरिहंताणं।

१०—आठ कर्मों को नाश करने के लिए इस पांच वर्ण वाले मंत्र का जाप करें—**मंत्र-नमो सिद्धाणं।**

११—सब प्रकार के अभय के लिये इस मंत्र का जाप करें—

ॐ नमो अर्हते केवलिने परमयोगिने, विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिदग्ध कर्मबीजाय, प्राप्तानंत चतुष्टयाय, सौम्याय, शांताय मंगलवरदाय स्वाहा।

यह मन्त्र अभय देने वाला है।

१२—सामान्य विद्या—ह्रीं ओं ओं सो ह्म्ली हं ओं ओं ह्रीं। इसका जाप करें।

१३—अचिंत्य फलदा गणधरकृत विद्या ध्यान—

ॐ जोग्गे, मग्गे, तत्थ, भूए, भव्वे, भविस्से, अंते परक्खे जिणपार्श्व स्वाहा।

१४—आठ पंखड़ी वाले कमल में झलझलाट करते हुए तेज वाली आतमा का चिंतन करना और नीचे लिखे आठ अक्षरी विद्या के आठ अक्षरों को उस कल्पित कमल की पूर्व दिशा की तरफ से प्रारम्भ करके एक-एक अक्षर को स्थापित करें फिर इस कमल के अक्षरों पर ध्यान करते हुए ग्यारह सौ (११००) बार जाप करें। सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो।

विद्या—ॐ नमो अरिहताणं।

विघ्न शांति के लिये उपर्युक्त विद्या का आठ दिन तक प्रतिदिन ११०० जाप करने से सब प्रकार के विघ्न शांत हो जावें।

आठ रात्रि बीतने पर जाप करने वाले को ऐसा सामर्थ्य आ जाता है कि आत्मा में कल्पित कमल के अन्दर रहे हुए स्थापित आठों वर्ण अनुक्रम से दिखलाई देंगे।

इस आठ अक्षरी विद्या के हृदय में अक्षर देखने वाले को ऐसा सामर्थ्य हो

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जाता हैं कि ध्यान में विघ्न करने वाले, भयंकर सिंह, हाथी, राक्षस और दूसरे भी भूत-प्रेत सर्पादि तत्काल शांत हो जाते हैं।

१५—ॐ नमो अरिहंताणं—इस मंत्र का जाप इस लोक सम्बन्धि फल चाहने वाले को ॐ सहित करना और मोक्षाभिलाषी को ॐकार के बिना जाप करना चाहिये।

१६—कर्म ओघ की शांति के लिए जाप—

मंत्र—श्रीभद् ऋषभादि वर्धमानांतेभ्यो नमः। कर्म के नाश के लिए सदा इसका जाप करें।

१७—सर्व जीवों के उपकार के लिए पाप भक्षिणी विद्या—

विद्या—ॐ अर्हन् मुख-कमल-वासिनि पापात्मक्षयंकरि, श्रुतज्ञानज्वाला सहस्र ज्वलिते, सरस्वति मत्पापं हन्-हन् दह-दह क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षीरधवले अमृत संभवे वं-वं हूं हूँ स्वाहा। (यह पाप भक्षिणी विद्या है, इस का नित्य स्मरण करें)।

इस विद्या के प्रभाविक अतिशय से मन तत्काल प्रसन्न होता है, पाप की कलूषता दूर होती है तथा ज्ञान-दीपक प्रकाशित होता है (ज्ञान प्रकट होता है)।

१९—सिद्धचक्र के स्मरण करने की विधि—

विद्या प्रवाद से उद्धार करके वज्रस्वामि आदि ज्ञानी पुरुषों ने प्रकट रूप से मोक्ष लक्ष्मी के बीज समान माना हुआ तथा जन्म मरणादि दावानल को प्रशांत करने में नवीन मेघ के समान सिद्धचक्र को गुरु के उपदेश से जानकर कर्म क्षय के लिये चिंतन करें।

विधि—नाभि कमल में स्थित सर्व व्यापि "अ" कार का चिंतन करें। मस्तक पर "सि" वर्ण का, मुख कमल में "आ" कार का, हृदय कमल में में "उ" कार का, तथा कंठ में "सा" कार का चिंतन करें।

१—सिद्धचक्र के चिंतन में यहां पर पंच परमेष्ठियों के आदि के अक्षरों की कल्पना करके चिंतन करने के लिए लिखा है; जैसे कि—१—अरिहंत पद का—अ; २—सिद्ध पद का—सि; आचार्य पद का—आ; उपाध्याय पद का—उ; साधु पद का—सा।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

श्री वीतरागाय नमः

श्री स्वरोदय-सार (सविवेचन)

(चिदानन्द जी कृत)

अर्थ—विवेचन आदि कर्ता—पं० हीरालाल दूगड़

मंगलाचरण (तीर्थंकर वन्दना)

(छप्पय) नमो आदि अरिहंत देव, देवनपति राया।
जास चरण अवलम्ब, गणाधिप गुण निज पाया॥
धनुष पांचशत मान, सप्त कर परिमित काया।
ऋषभादि अरु अन्त, मृगाधिप चरण सुहाया॥
आदि अन्त युत मध्य, जिन चौबीस इम ध्याइये।
चिदानन्द तस ध्यान थी, अविचल लीला पाइये॥१॥

अर्थ—जो देवों के स्वामी—इन्द्रों के भी पूज्य हैं तथा जिनके चरण-कमलों के अवलम्बन मात्र से गणधर देवों ने भी अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर अनन्त गुणों को प्राप्त किया है ऐसे अरिहंत देवों को मैं सर्वप्रथम नमस्कार करता हूं।

पांच सौ धनुष शरीर वाले प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव तथा जिनके चरणों में सिंह का चिन्ह सुशोभित है और सात हाथ लम्बा जिनका शरीर है ऐसे अन्तिम (चौबीसवें) तीर्थंकर श्री वर्धमान (महावीर) स्वामी—एवं इन आदि और अन्तिम तीर्थंकरों के मध्यवर्ती श्री अजितनाथ से श्री पार्श्वनाथ तक बाईस तीर्थंकरों को मिलाकर कुल चौबीस तीर्थंकरों का ध्यान करता हूं। हे चिदानंद! इनके ध्यान से शाश्वत सुख अर्थात् मोक्ष रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।-१

सरस्वती वन्दना

(छप्पय) इक कर वीणा धरत, इक कर पुस्तक छाजे।
चन्द वदन सुकमाल, भाल जस तिलक विराजे॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हार मुकुट केयूर, चरण नूपर धुनि बाजे।
अद्‌भुत रूप स्वरूप, निरख मन रम्भा लाजे।।
लीलायमान गज गामिनी, नित ब्रह्मसुता चित्त ध्याइये।
चिदानन्द तस ध्यान थी, अविचल लीला पाइये।।२।।

(दोहा) उदधि सुता सुत तास रिपु, वाहन संस्थित बाल।
बाल जाणी निज दीजिये, वचन विलास रिसाल।।३।।

अर्थ—एक हाथ में वीणा तथा एक हाथ में पुस्तक धारण किए हुए ऐसी चन्द्रमुखी, कोमलांगी, मस्तक पर तिलक किए हुए, हार, मुकुट, बाजूबन्ध से सुशोभित शरीर वाली, नूपुरों की ध्वनि सहित चरणों वाली, हाथी के समान चाल वाली, जिसके रूप को देखकर रम्भा भी लज्जित होती है ऐसे अद्‌भुत स्वरूप वाली सरस्वती का मैं चिदानन्द ध्यान करता हूं क्योंकि तुम्हारे ध्यान से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है—२

हे गरुड़ वाहिनी सरस्वती मुझे (चिदानन्द को) आप अपना बालक जानकर सरस रसाल वचन दो अर्थात् मुझे इस स्वरोदय सार की रचना करने की शक्ति प्रदान करो—३

सिद्ध वन्दना

(दोहा) अज अविनाशी अकल जे, निरंकार निरधार।
निर्मल निर्भय जे सदा, तास भक्ति चित्त धार।।४।।

जन्म जरा जाकुं नहीं, नहीं सोग सन्ताप।
सादि अनन्त स्थिति करी, स्थिति बन्धन रुचि काप।।५।।

लीजे अंश रहित शुचि, चरम पिण्ड अवगाह।
एक समय सम श्रेणि ए, अचल थया शिवनाह।।६।।

सम अरु विषम पणे करि, गुण पर्याय अनन्त।
एक-एक प्रदेश में शक्ति सुजस महन्त।।७।।

रूपातीत व्यतीत मल, पूर्णानन्दी ईस।
चिदानन्द ताकुं नमंन, विनय सहित निज शीश।।८।।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—जो सदा जन्म-मरण रहित, अकल, निराकार, निराधार, निर्मल, निर्भय हैं उनकी भक्ति चित्त में धारण करके—४

जिन्हें न जन्म है, न वृद्धावस्था है, न शोक है, न संताप है, सादि अनन्त स्थिति वाले, कर्म बन्धन के जंजाल को जिन्होंने काट दिया है—५

सर्व कर्म मल से रहित, सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्व प्रकार के कर्म बन्धन से मुक्त होकर शैलेशीकरण द्वारा निज आत्म प्रदेशों को घनीभूत करके चरम शरीर से दो तृतीयांश (२/३) अवगाहना से, समश्रेणी से एक समय में लोक के अन्त में सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने वाले—६

सम-विषमता से अनन्त गुण-पर्यायों सहित एक-एक प्रदेश में महान् शक्ति सम्पन्न—७

रूपातीत (अरूपी), व्यतीत मल (कर्म-मल से रहित), अनन्त आनन्द आदि गुणों के धारक ऐसे ईश्वर (सिद्ध भगवंतों) को मैं चिदानन्द विनय सहित अपने मस्तक को झुकाकर नमस्कार करता हूं—८

सारांश यह है कि लेखक ने पद्य १ से ८ तक श्री अरिहंत भगवान्तों, सरस्वती तथा सिद्ध भगवान् को वन्दन, नमस्कार करके मंगलाचरण किया है।

स्वर-ज्ञान

(दोहा) काल ज्ञानादिक थकी, लही आगम अनुमान।
गुरु किरपा करि कहत हूं, शुचि स्वरोदय ज्ञान ॥९॥
सुर का उदय पिछानिए, अति थिरता चित्त धार।
ता थी शुभाशुभ कीजिये, भावि वस्तु विचार ॥१०॥
नाड़ी तो तन में घनी, पिण चौबीस प्रधान।
ता में दस पुणि ताहु में, तीन अधिक करि जान ॥११॥
इंगला पिंगला सुखमना, ये तीनों के नाम।
भिन्न-भिन्न अब कहत हूं, ता के गुण अरु धाम ॥१२॥

अर्थ—मैं (चिदानन्द) पृथ्वी आदि मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरण काल के ज्ञानादि से आगम का अनुमान लेकर गुरु कृपा से प्राप्त किए हुए पवित्र

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

स्वरोदय ज्ञान को कहता हूं—९

नासिका के भीतर से जो श्वास निकलता है उसका नाम स्वर है। चित्त को अति स्थिर करके स्वर को पहचानना चाहिए और स्वर को पहचान कर भविष्य में होनहार के शुभाशुभ का विचार करना चाहिए—१०

स्वर का सम्बन्ध नाड़ियों से है। यद्यपि शरीर में नाड़ियां बहुत हैं तथापि इनमें से चौबीस नाड़ियां प्रधान हैं और इन चौबीस नाड़ियों में से दस[1] नाड़ियां अति प्रधान हैं एवं उन दस नाड़ियों में से भी तीन नाड़ियां अतिशय प्रधान मानी हैं। जिनके नाम इंगला, पिंगला और सुखमना हैं। इनके गुणों और स्थानों का वर्णन आगे करेंगे ॥११-१२॥

(दोहा) भृकुटी चक्र सु होत है, स्वासा को परकास।
बंकनाल के ढिग थई, नाभि करत निवास ॥१३॥
नाभी थी फुनि संचरत, इंगला पिंगला धाम।
दक्षिण दिश है पिंगला, इंगला नाड़ी वाम ॥१४॥
इन दोऊ के मध्य में, सुखमन नाड़ी होय।
सुखमन के परकास में, सुर पुनि चालत दोय ॥१५॥

अर्थ—दोनों भौओं के बीच में जो आज्ञाख्य नाम का चक्र है वहां से श्वास का प्रकाश होता है तथा पिछली बंकनाल में से होकर नाभी में जा कर ठहरता है, वहां से फिर श्वास इंगला और पिंगला द्वारा निकलता है।[2]

१—ग्रन्थकर्त्ता ने स्वयं ही इन दस नाड़ियों के नाम स्थानादि का इसी ग्रन्थ के पद्य नं० ४३१ से ४४१ में वर्णन किया है।

२—अथ मंडलेषु वायोः प्रवेशानःसरणकालमवगम्य।
उपदिशति भुवनवस्तुषु विचेष्टितं सर्वथा सर्वम् ॥३६॥
(शुभचन्द्राचार्य कृते ज्ञानार्णवे)

अर्थ—(पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आदि) मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरण काल को निश्चय करके ध्यानी पुरुष, जगत भर में जो पदार्थ हैं उन सबकी सर्व प्रकार की चेष्टाओं का वर्णन करते हैं।

(नोट) काल ज्ञानादि का विस्तृत विवरण ग्रन्थकार क्रमशः स्वयं करेंगे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

शरीर में मेरुदंड के दक्षिण (दाहिनी) दिशा की तरफ पिंगला (सूर्य) नाड़ी है तथा वाम (बायीं) तरफ इंगला (चन्द्र) नाड़ी है। इन दोनों नाड़ियों के मध्य में सुषुम्ना नाड़ी रहती है। सुखमन नाड़ी के प्रकाश से नाक के दोनों नथनों से स्वर (श्वास) चलता है ॥१३-१४-१५॥

(दोहा) डाबा सुर जब चलत है, चन्द्र उदय तब जान।
जब सुर चालत जीमणो, उदय होत तब भान ॥१६॥

अर्थ—इनमें से जब (इंगला नाड़ी द्वारा) बांया (डाबा) स्वर चलता है तब चन्द्र का उदय जानना चाहिए तथा जब (पिंगला नाड़ी द्वारा) दाहिना (जीमना) स्वर चलता है तब सूर्य का उदय जानना चाहिए—१६

स्वरों के कार्य

(दोहा) सौम्य काज कुं शुभ शशि, क्रूर काज कुं सूर।
इम विधि लख कारज करत, पामे सुख भरपूर ॥१७॥
दोऊ स्वर सम संचरे, तब सुखमन पहिछान।
तामे कोऊ कारज करत, अवस होय कछु हान[3] ॥१८॥

३—प्रत्येक मनुष्य जब नाक द्वारा श्वास लेता है तब उसकी नासिका के दोनों छेदों में से कभी तो नासिका के एक छेद में से श्वास निकलता है और दूसरा छेद बन्द रहता है जब जिस छेद से श्वास निकलता हो उसी स्वर को चलता समझना चाहिए तथा कभी-कभी एक छेद से तेज़ी के साथ श्वास निकलता है और एक छेद से धीमा स्वर निकलता है अर्थात् दोनों छेदों में से स्वर तो निकलता है परन्तु समान स्वर नहीं निकलता। जिस तरफ का श्वास तेज़ी के साथ निकलता है उसी स्वर को चलता हुआ समझना चाहिए। दाहिने छेद से यदि वेग से स्वर निकले तो उसे सूर्य स्वर कहते हैं। बाएं छेद से यदि वेग से स्वर निकले तो चन्द्र स्वर समझना चाहिए। दोनों छेदों में से श्वास निकलता हो तो उसे सुखमना स्वर कहते हैं। सुखमना स्वर प्रायः उस समय चलता है जब एक स्वर से दूसरा स्वर बदलना चाहता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—सौम्य[४] (शीतल और स्थिर) कार्यों को चन्द्र स्वर में करना शुभ है, क्रूर और चर कार्यों को सूर्य स्वर शुभ है। जब दोनों स्वर समान चलते हों उसे सुखमना स्वर कहते हैं। इस स्वर में प्रभु भजन और ध्यान के सिवाय अन्य कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस स्वर में किसी कार्य को करने से वह निष्फल होता है तथा उससे क्लेश भी उत्पन्न होता है—१७-१८

(दोहा) चन्द्र चलत कीजे सदा, थिर कारज सुरभाल।
चर कारज सूरज चलत, सिद्धि होय तत्काल ॥१९॥
कृष्ण पक्ष स्वामी रवि, शुक्ल पक्ष पति चन्द।
तिथि भाग इन कालहि, कारज करत आनन्द ॥२०॥
कृष्ण पक्ष की तीन तिथि, प्रथम रवि की जान।
तीन शशि पुनि तीन रवि, इन अनुक्रम पहिचान ॥२१॥
शुक्ल पक्ष की तीन तिथि, चन्द्र तणी कह मीत।
फुनि रवि फुनि शशि फुनि रवि यह गणना की रीति ॥२२॥

अर्थ—इसलिए चंद्र स्वर के चलते समय शीतल और स्थिर कार्यों को तथा सूर्य स्वर के चलते समय क्रूर और चर कार्यों को करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से कार्य की सिद्धि तत्काल होती है—१९

कृष्ण (वदि) पक्ष का स्वामी सूर्य है और शुक्ल (सुदि) पक्ष का स्वामी चंद्र है। इसलिए तिथियों के विभाग (हिसाब) से उस-उस काल में कार्य करने से आनन्द की प्राप्ति होती है—२०

चन्द्रो समस्तु विज्ञेयो रविस्तु विषमं सदा।
चन्द्रः स्त्रीः पुरुष सूर्यः चन्द्रो गोरोऽसितो रविः ॥१९॥

अर्थ—चन्द्र सम है, रवि विषम है, चन्द्र स्त्री है, सूर्य पुरुष है, चन्द्र गौर वर्ण है, सूर्य असित (काला) है।

सुखमना नाड़ी में अग्नि का वास है, काल रूपिणी है, विष रूप है और सर्व कार्यों को नाश करने वाली है इसलिए इस स्वर में कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

४—शीतल और स्थिर कार्य—देखें पद्य नं० १९३ से २०४
क्रूर और चर कार्य—देखें पद्य नं० २०५ से २१३

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कृष्ण पक्ष की १५ तिथियों में से क्रम-क्रम से तीन-तीन तिथियां सूर्य और चंद्र की हैं। जैसे प्रतिपदा, दूज, तीज ये तीन तिथियां सूर्य की हैं। चौथ, पंचमी, छठ ये तीन तिथियां चंद्र की हैं। इसी प्रकार अमावस्या तक शेष तिथियों में भी क्रमशः समझना चाहिए। इनमें जब अपनी-अपनी तिथियों में दोनों (सूर्य और चंद्र) स्वर चलते हों तब वे कल्याणकारी होते हैं—२१

शुक्ल पक्ष की १५ तिथियों में से क्रम-क्रम से तीन-तीन तिथियां चंद्र और सूर्य की होती है, अर्थात् प्रतिपदा, दूज, तीज ये तीन तिथियां चंद्र की हैं तथा चौथ, पंचमी, छठ ये तीन तिथियां सूर्य की हैं। इसी प्रकार पूर्णमाशी तक शेष तिथियों में भी क्रमशः समझना चाहिए। इनमें भी इन दोनों (चंद्र और सूर्य स्वरों) का अपनी-अपनी तिथियों में प्रातःकाल चलना शुभकारी है—२२

(छप्पय) मंगल शनि आदित्य-वार, स्वामी रवि जानो।
सुरगुरु बुध अरु सोम, शुक्र-पति चंद्र बखानो॥
इन विधि स्वर तिथि वार, भिन्न नक्षत्र पिछानो।
शुभ कारज के योग्य, सकल इन विधि मन आनो॥
निरगुण[५] सुरगुण विध, भाव इन विध के लेखो।
तत्त्व तणों परकास, सुधा रस इम तुम पेखो॥२३॥

अर्थ—मंगल, शनि और रवि इन वारों का स्वामी सूर्य है और सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों का स्वामी चन्द्र है।

इस प्रकार स्वर, तिथि, वार तथा नक्षत्र को जानकर कार्य की सफलता के लिए इन सबका सूक्ष्म रीति से विचार करो।

५—जब स्वर बाहर निकल रहा हो उस स्वर को निर्गुण कहते हैं जो स्वर नासिका के भीतर जाता हो उसे सगुण स्वर कहते हैं। जो स्वर बदलकर नया चलना शुरू होता है उसे उदय स्वर कहते हैं तथा जब स्वर बदलने को होता है उसे अस्त कहते है। यदि स्वर सगुण और उदय हो तो कार्य सिद्ध हो। इससे विपरीत हो तो कार्य की हानि हो।

सर्वे प्रवेश-काले कथयन्ति मनोगतं फलं पुंसाम्।
अहितमति दुःखनिचितं त एव निःसरणवेलायाम्॥३३॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

एवं स्वर विचार में निर्गुण, सगुण, उदय, अस्त आदि को भी देखना चाहिए, जिससे आप सर्व प्रकार की सफलता प्राप्त कर सकते हैं—२३

शुभाशुभ फल

पक्ष तथा तिथि में स्वर विचार

(दोहा)—कृष्ण पक्ष एकम दिने, प्रातः सूरज होय।
ताते पक्ष प्रवीण नर, आनन्दकारी जोय ॥ २४ ॥
शुक्ल पक्ष के आदि दिन, जो शशि स्वर उद्योत।
तो ते पक्ष विचारिये, सुखदायक अति होत ॥ २५ ॥

अर्थ—सब पवन प्रवेश काल में अर्थात् नासिका में प्रवेश करते समय कार्य करने से पुरुषों के मनोगत विचारे हुए फल की प्राप्ति होती है। ये पवन नासिका से बाहर निकलते समय कार्य करने से अतिशय दुःख से भरे अहित को करते हैं ॥ ३३ ॥

सर्वेऽपि प्रविशन्तौ रवि-शशि-मार्गेण वायवः सततम्।
विदधति परां सुखास्थां निर्गच्छन्तो विपर्यस्ताम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सब पवन सूर्य, चन्द्र के मार्ग से अर्थात् दाहिने, बायें निरन्तर प्रवेश करते हुए उत्कृष्ट सुख को करते हैं तथा निकलते हुए उत्कृष्ट दुःख को प्रगट करते हैं। अर्थात् प्रवेश करते शुभ तथा निःसरण करते अशुभ हैं।

वामेन प्रविशन्तौ वरुण महेन्द्रौ समस्त सिद्धिकरौ।
इतरेण निःसरन्तौ हुतभुकपवनौ विनाशाय ॥ ३५ ॥
(ज्ञानार्णव प्रकाश २६ श्लो० ३३-३४-३५)

अर्थ—जल मंडल तथा पृथ्वी मंडल के पवन बांई तरफ प्रवेश करते हों तब कार्य करने से समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाले हैं एवं अग्नि मंडल और वायु मंडल के पवन दाहिनी तरफ निकलते हुए विनाश के करने वाले हैं।

इन स्वरों के चार भेदों को इस मंत्र द्वारा समझाते हैं—

स्वरों का नाम और गुण

निर्गुण स्वर	सगुण स्वर	उदय स्वर	अस्त स्वर
जब स्वर नाकके छेद में से बाहर निकले तब निर्गुण होता है इसमें कोई प्रश्न करे तो उसका कार्य सिद्ध न हो :	जब स्वर नाक के छेद में प्रवेश करे उसे सगुण स्वर कहते हैं तब जो प्रश्न करे वह अपनी आशा पावे	स्वर जब दूसरे स्वर से बदल कर नया चलना शुरू होता है उसे उदय स्वर कहते हैं।	जब स्वर बदलने को होता है उसे अस्त स्वर कहते हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चन्द्र तिथि में चन्द्र स्वर, सूर तिथि बहे सूर।
काया में पुष्टि करे, सुख आपत भरपूर ॥ २६ ॥
चन्द्र तिथि में आय जो, भानु करत प्रकास।
तो क्लेश पीड़ा हुए, किञ्चित वित्त विनास ॥ २७ ॥
सूरज तिथि पड़वा दिने, चले चन्द्र स्वर भोर।
पीड़ा कलह नृप भय करे, चित्त चंचल चिहुं ओर ॥ २८ ॥
दोऊ पक्ष पड़वा दिने, सुखमन स्वर जो होय।
लाभ हानि सामान्य थी, ते निहचे करि जोय ॥ २९ ॥

अर्थ—कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (एकम) के दिन यदि प्रातः काल सूर्य स्वर चले तो वह पक्ष बहुत आनन्द से बीतता है—२४

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (एकम) के दिन यदि प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो वह पक्ष भी बहुत सुख और आनन्द से बीतता है २५

इसी प्रकार चन्द्र तिथि में चन्द्र स्वर तथा सूर्य तिथि में सूर्य स्वर चले तो काया को स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, बहुत सुख और आनन्द को देने वाला है—२६

यदि चन्द्र की तिथि में सूर्य स्वर चले तो क्लेश और पीड़ा होती है तथा कुछ द्रव्य की भी हानि होती है—२७

यदि सूर्य की तिथि में प्रतिपदा आदि को प्रातःकाल चन्द्र स्वर चले तो पीड़ा, कलह, तथा राजा से किसी प्रकार का भय होता है और चित्त में चंचलता उत्पन्न होती है—२८

यदि कदाचित इन दोनों पक्षों में (कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष) पड़वा के दिन प्रातःकाल सुखमना स्वर चले तो उस मास में हानि और लाभ समान ही होते हैं—२९

स्वर, लग्न, राशियां तथा मास विचार

दोहा—वृश्चिक सिंह वृष कुम्भ, शशि सुर कीए रास।
चन्द्र जोग इनके मिलत, शुभ कारज परकास ॥ ३० ॥
कर्क मकर तुल मेष फुनि, चर राशि ए चार।
रवि संगे ए संचरत, चर कारज सुखकार ॥ ३१ ॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मीन मिथुन धन कन्यका, द्विस्वभाव ए जान।
सुखमन स्वर सु मिलत है, काज करत ही हान॥ ३२॥
शशि सूरज के मास इम, भिन्न-भिन्न करि जान।
राशि वर्गित दिन थकी अधिक भेद मन आन॥ ३३॥

अर्थ—वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ ये चार राशियां चन्द्र स्वर की हैं तथा चन्द्र स्वर के मिलने से ये राशियां स्थिर कार्यों में श्रेष्ठ हैं—३०

मेष, कर्क, तुला और मकर ये चार राशियां सूर्य स्वर की हैं यदि इन राशियों में सूर्य स्वर चलता हो तो ये चर कार्यों में श्रेष्ठ हैं—३१

मिथुन, कन्या, धन और मीन ये राशियां द्विस्वभाव (सुखमना स्वर) की हैं। यदि इन राशियों में सुखमना स्वर चलता हो तो कार्य के करने से अवश्य ही हानि होती है—३२

उक्त बारह राशियों से बारह महीने भी जान लेना चाहिए अर्थात् ऊपर लिखी जो सक्रांति लगे वही चन्द्र, सूर्य और सुखमना के महीने[६] भी समझना चाहिए—३३

प्रश्न कर्त्ता को दिशा के अनुसार निर्णय

दोहा—प्रश्न करने कु कोउ नर, आवत हिरदे धार।
पृच्छक नर की दिशि तणो, निर्णय कहुं विचार॥ ३४॥
सनमुख डाबी ऊर्ध्व दिशि, रही प्रश्न करे कोय।
चन्द्र जोग हो ता समय, कारज सिद्धि होय॥ ३५॥
नीचे पीछे जीमणो, जो को पूछे आय।
भानु जोग सुर होय तो, तस कारज हो जाय॥ ३६॥

अर्थ—यदि कोई मनुष्य अपने कार्य के लिए प्रश्न करने को आवे तो उस

६—सूर्य सक्रांति के हिसाब से राशियों से महीने इस प्रकार समझने चाहिएं। (अ) चन्द्र स्वर के महीने:—वृष से जेठ, सिंह से भादों, वृश्चिक से मगसिर और कुम्भ से फागुण। (आ) सूर्य स्वर के महीने—मेष से वैसाख, कर्क से श्रावण, तुला से कार्तिक, तथा मकर से माघ (इ) सुखमना स्वर के महीने—मिथुन से आषाढ़, कन्या से आसोज, धन से पोस एवं मीन से चैत्र मास जान लेना चाहिए।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

समय पृच्छक नर की दिशा सम्बन्धी निर्णय पूर्वक विचार कहता हूं—३४

यदि पृच्छक (प्रश्न पूछने वाला) अपने सामने, बांये अथवा ऊपर (ऊंचे) रहकर प्रश्न करे और उत्तरदाता का चन्द्र स्वर चलता है तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा—३५

यदि पृच्छक नीची दिशा, पीछे अथवा दाहिने तरफ खड़ा रह कर कोई प्रश्न पूछे और उस समय उत्तरदाता का सूर्य स्वर चलता हो तो भी कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा— ३६

(दोहा)—पूछे दक्षिण भुज रही, सूरज सुर में बात।
लगन वार तिथि जोग मिलि, सिद्ध कार्य अवदात ।। ३७ ।।
वाम भाग रही जो करे, प्रश्न तणो प्रसंग ।
शशि सुर जो पूरण हुए, तो तस काज अभंग ।। ३८ ।।
पूछे दक्षिण कर रही, शशि सुर में जो कोय ।
रवि तत्त्व तिथि वार बिन, तस कारज नवि होय ।। ३९ ।।
अधो पृष्ठ पाछल रही, पृच्छक नो परिमाण ।
चन्द्र चलत फल तेह नो, पूरब कथित पहिचान ।। ४० ।।
चलत सूर सुर जीमणो पूछ डाबी ओर ।
चन्द्र जोग बिन तेहनो, न[illegible] कारज विधि कोर ।। ४१ ।।
सनमुख ऊर्ध्व दि[illegible], पूछे जो रवि मांहि ।
चंद्र जोग बि[illegible] तहनुं, कारज सीझे नाहि ।। ४२ ।।

अर्थ—यदि कोई [illegible]हनो (जीमनी) तरफ खड़ा होकर प्रश्न करे और उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा लग्न वार और तिथि का योग भी मिल जावे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा—३७

बांई (डाबी) तरफ रह कर कोई प्रश्न पूछे तो उस समय यदि अपना चंद्र स्वर चलता हो और लग्न, तिथि, वार का भी सब योग मिल जावे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा—३८

यदि प्रश्न कर्ता दाहिनी (जीमनी) तरफ से प्रश्न करे और उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो सूर्य की तिथि और वार के बिना वह शून्य (खाली) दिशा का प्रश्न कदापि सिद्ध न होगा—३९

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यदि नीचे और पीछे रह कर प्रश्न करे तथा उस समय अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो कह देना चाहिए कि कार्य नहीं होगा—४०

यदि कोई बांई (डाबी) तरफ से प्रश्न करे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चन्द्र स्वर के बिना उसे कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा—४१

इसी प्रकार यदि कोई अपने सामने अथवा ऊपर (ऊंचे) रह कर प्रश्न पूछे तथा उस समय अपना सूर्य स्वर चलता हो तो चंद्र स्वर के योग मिले बिना कार्य कदापि सिद्ध न होगा—४२

स्वर द्वारा कार्य के अक्षरों से प्रश्न फल निर्णय

(दोहा)—लगन वार तिथि तत्त्व फुनि, राशि योग दिशि शोध।
कारज के अक्षर गिने, होवे साचो बोध ॥ ४३ ॥
सम अक्षर शशि कुं भलो, विषम भानु परधान।
तिन की संख्या करन कुं, कहुं एम अनुमान ॥ ४४ ॥
चार आठ द्वादश युगल, षट दश चवदे जान।
षोडष थी शशि योग यह, महा शुद्ध पहिछान ॥ ४५ ॥
एक तीन शर सात नव, एकादश अरु तेर।
तिथि संयम पच्वीस फुनि, रवि जोग इम हेर ॥ ४६ ॥

अर्थ—लग्न, वार, तिथि, तत्त्व, राशि, योग तथा दिशा को देखे और कार्य के अक्षर गिन कर सब बातों का मिलान करे तब प्रश्न का उत्तर देने से निश्चय रूप से सत्य होता है—४३

चंद्र स्वर के सम अक्षर होते हैं तथा सूर्य स्वर के विषम अक्षर होते हैं इस को समझाने के लिए पद्य नं० ४५-४६ में गिनती देता हूं—४४

दो, चार, छः, आठ, दस, बारह, चौदह, सोलह आदि सम अर्थात् दो से विभाजित होने वाले अक्षर चन्द्र के हैं—४५

एक, तीन, पांच, सात, नव, ग्यारह, तेरह, पंद्रह, सत्तारह, पच्चीस इत्यादि विषम अर्थात् दो से विभाजित न होने वाले अक्षर सूर्य के हैं—४६

स्वरोदय सिद्धि

(दोहा)—लोक काज सहु परिहरे, धरे सुनिश्चल ध्यान।
श्रवन, मनन, चिन्तन करत, लहत स्वरोदय ज्ञान ॥ ४७ ॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अथवा प्राणायाम जे, साधे चित्त लगाय।
ताकुं पहली भूमिका, सिद्ध स्वरोदय थाय ॥ ४८ ॥

अर्थ—स्वरोदय को साधन के लिए सब लौकिक कार्यों से लक्ष्य हटा कर निश्चल ध्यान करना चाहिए तथा श्रवन, मनन और चिन्तन करना चाहिए। अथवा जो एकाग्र चित्त से प्राणायाम साधन करता है उसे पहली भूमिका रूप स्वरोदय सिद्ध होता है—४७-४८

निश्चय प्राणायाम

(दोहा)—प्राणायाम विचार तो, है अति अगम अपार।
भेद दोय तस जानिये, निश्चय अरु व्यवहार ॥ ४९ ॥
निश्चय थी निज रूप में, निज परिणति होय लीन।
श्रेणी गत ज्युं संचरे, सो जोगी परवीन ॥ ५० ॥
उपशम क्षपक कही युगल, श्रेणी प्रवचन मांहि।
तिण को काल स्वभाव वस, साधन हिवणा नांहि ॥ ५१ ॥

अर्थ—प्राणायाम का स्वरूप बहुत गहन और अपार है मुख्यतया इसके निश्चय और व्यवहार दो भेद हैं—४९

निश्चय प्राणायाम से गुणस्थानों[७] की श्रेणी को चढ़ते हुए निज (शुद्ध) परिणति में लीन होकर आत्मा अपने निज स्वरूप को प्रगट कर लेता है। ऐसे महापुरुष को ही वास्तव में योगी कहना चाहिए—५०

शास्त्रों में गुणस्थानों की श्रेणियां दो प्रकार की कही हैं। कर्मों को क्षय करते हुए श्रेणी चढ़ने को क्षपक श्रेणी कहते हैं। इस क्षपक श्रेणी को करते हुए जीव अपने शुद्ध स्वरूप को प्रगट करके सब प्रकार के कर्म बन्धनों से छूट कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। तथा कर्मों को शांत करते (दबाते) हुए श्रेणी चढ़ने

७—गुणस्थान—आतम-विकास अथवा चरित्र विकास की समस्त अवस्थाओं को जैन कर्मशास्त्र में चौदह भागों में विभाजित किया गया है जो चौदह गुणस्थान के नाम से प्रसिद्ध है। ये जैन चारित्र की चौदह सीढ़ियां हैं। यहां पर इनके नाम मात्र का उल्लेख कर दिया जाता है विस्तार से जानने के इच्छुक अन्य जैन ग्रन्थों से जान लेवें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

को उपशम श्रेणी कहते हैं। इन क्षपक और उपशम श्रेणियों का काल दोष के प्रभाव से यहां इस समय साधन नहीं हो सकता—५१

व्यवहार प्राणायाम

(दोहा)—अह निश ध्यान अभ्यास थी, मन थिरता जो होय।
तो अनुभव लव आज फुनि, पावे विरला कोय ॥ ५२ ॥
निज अनुभव लवलेश थी, कठिन कर्म होय नाश।
अल्प भवे भवि ते लहे, अविचल-पुर को वास ॥ ५३ ॥

अर्थ—रात दिन ध्यान के अभ्यास से यदि मन की स्थिरता हो जाय तो आज भी किंचित अनुभव की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु यह लवलेश अनुभव की प्राप्ति भी कोई विरला ही पा सकता है—५२

इस भव में यदि योगाभ्यास से लवलेश अनुभव की प्राप्ति भी हो जाय तो कठिन कर्मों का नाश हो जाता है जिससे भव्य जीव थोड़े ही भवों में सब प्रकार के कर्मों का नाश कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है—५३

(दोहा)—व्यवहारे ये ध्यान को, भेद नवि कहेवाय।
भिन्न-भिन्न कहता थकां, ग्रंथ अधिक हो जाय ॥ ५४ ॥
नाम मात्र अब कहत हूं, याको किंचित भाव।
अधिक भवि तुम जाणजो, गुरु गम तास लखाव ॥ ५५ ॥

अर्थ—व्यवहार ध्यान (प्राणायाम) के अनेक भेद हैं। इनका भिन्न-भिन्न वर्णन करने से ग्रंथ बहुत बड़ा हो जाएगा, इस लिए उन भेदों का विस्तृत वर्णन नहीं करते—५४

अब मैं इसका नाम मात्र (किंचित) स्वरूप कहता हूं। अधिक विस्तार से जानने की इच्छा वालों को योगी गुरु से जान लेना चाहिए—५५

गुण स्थान १४ हैं—(२) मिथ्यात्व, (२) सास्वादन, (३) मिश्र, (४) सम्यग्दर्शन, (५) देश विरति, (६) प्रमत्त श्रमणत्व, (७) अप्रमत्त श्रमणत्व, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्ति बादर, (१०) सूक्ष्म संप्राय, (११) उपशांत मोह, (१२) क्षीण मोह, (१३) सयोगी केवली, (१४) अयोगी केवली।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अष्टांग योग तथा प्राणायाम के भेद

(दोहा)—अष्ट भेद हैं योग के, पंचम प्राणायाम।
ताके सप्त प्रकार हैं, सकल सिद्धि के धाम॥ ५६ ॥
रेचक पूरक तीसरो, कुम्भक भेद पिछान।
शांतिक समता एकता, लीन भाव चित्त आन॥ ५७ ॥

अर्थ—पातंजल की दृष्टि से यम[८], नियम[९], आसन[१०], प्रत्याहार, प्राणायाम धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ भेद योग के हैं। तथा इस हठ योग के आठ अंगों में से प्राणायाम पांचवां भेद है। इस प्राणायाम के सात भेद हैं जो कि सकल प्रकार की सिद्धियों को देने वाले हैं—५६

रेचक, पूरक, कुम्भक, शांति, समता, एकता, लीनभाव (प्राणायाम के) इन सात भेदों का स्वरूप समझ कर मन को इनमें लगा देना चाहिए—५७

प्राणायाम के सात भेदों का स्वरूप

(दोहा)—पूरक पवन गहंत सुधी, कुम्भक थिरता तास।
रेचक बाहिर संचरे, शांतिक ज्योति प्रकास॥ ५८ ॥
समता ध्येय स्वरूप में, तिहां सूक्ष्म उपयोग।
गहे एकता गुण विषय, लीन भाव निज योग॥ ५९ ॥

८—यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन पांचों की यम संज्ञा है।

९—योग का दूसरा अंग नियम है—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम बतलाये हैं।

१०—आसन—योग का तीसरा अंग आसन है। पातंजल योग शास्त्र में स्थिरता तथा सुख देने वाले बैठने के प्रकार विशेष को आसन कहा है। योग-मार्ग में प्रवृत्त होने वाले साधक को ध्यान के लिए आसन सिद्धि की नितान्त आवश्यकता है। आसन अनेक प्रकार के हैं उनमें से चौरासी प्रधान हैं तथा उनमें से भी योग साधन के लिए दो आसन उपयोगी हैं इन दोनों का वर्णन आगे स्वयं ग्रंथकार करेंगे। वहां से जान लेना। आसन जय करने के बाद ध्यान सिद्धि के लिए प्राणायाम आवश्यक है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पद्य न० ५७ में प्राणायाम के सात भेदों के नाम कह आए हैं पातंजली आदि योगाचार्यों ने मोक्ष साधन के लिए प्राणायाम को उपयोगी बतलाया है पर वास्तव में प्राणायाम मोक्ष साधन रूप ध्यान में उपयोगी नहीं है इस बात की पुष्टि इस ग्रन्थ के कर्त्ता भी आगे करेंगे। तो भी शरीर निरोगता तथा काल-ज्ञानादि में उपयोगी है। इसलिए यहां प्राणायाम का स्वरूप कहते हैं।

आसन जय करने के बाद ध्यान सिद्धि के लिए पांतजली ने प्राणायाम का आश्रय लिया है क्योंकि प्राणायाम करने के बिना मन तथा पवन को जय नहीं किया जा सकता।

प्रश्न—प्राणायाम से पवन का जय तो हो सकता है पर मन का जय कैसे हो सकता है?

उत्तर—मन जिस स्थान में है वहां पवन है तथा जहां पवन है वहां मन है। इसलिए समान क्रिया वाले मन और पवन दूध और पानी के समान इकट्ठे मिले हुए रहते हैं।

अर्थात – मन तथा पवन की क्रिया और स्थान एक सरीखा है। शरीर के कोई भी भाग पर मन को रोकेंगे तो वहां अवश्य पवन का भी खटक-खटक शब्द मालूम होगा। मन को किसी भी भाग पर रोकना अर्थात उपयोग रखकर उस समय उसी भाग पर देखते रहना ऐसा करने से दूसरे किसी भी विचार सम्बन्धी मन की क्रिया मन्द पड़ेगी और जिस जगह मन को रोका गया है वहां उपयोग की जागृति होने से अन्य विचार नही आते पर उपयोग की जागृति तक वहां ही मन रुका रहेगा और पवन भी वहां ही खटक-खटक शब्द करता हुआ अथवा दूसरे प्रकार से भी वहीं है ऐसा अनुभव होगा।

प्राणायाम का लक्षण—श्वास, प्रश्वास की गति, उसका आयाम विच्छेद अवरोध करना प्राणायाम है। बाहर की वायु को भीतर लेना श्वास है और भीतर के वायु को बाहर निकालना प्रश्वास (उच्छवास) कहलाता है।

प्राणायाम के सात भेदों की व्याख्या

अर्थ—१—पूरक—शरीर रूपी कोठे में अथवा कुम्भ (घड़े) में नथनों द्वारा खैंच लिया हुआ बाहर के वायु रूपी पानी को भरना। अर्थात् शरीर में नथनों द्वारा वायु का भरना "पूरक" कहलाता है। छाती, फेफड़े, पेट आदि भागों को

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

श्वास द्वार से खैंची हुई हवा से पूर (भर) देना।

२—रेचक—श्वास द्वार से पूरे हुए वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर निकालना रेचक कहलाता है।

३—कुम्भक—जिस प्रकार पानी से भरा हुआ घड़ा शांत और स्थिर होता है उसी प्रकार शरीर में वायु भर रखने से वह शांत और निश्चल होता है तथा शरीर में सब प्राण वायु स्थिर हो जानी है। इस प्रकार पानी से भरे हुए कुम्भ (घड़े) की उपमा से इस प्राणायाम को कुम्भक कहते हैं। इस कुम्भक के भी आठ भेद हैं।

४—शांतिक—ज्योति का प्रकाश करना—५८

५—समता—ध्येय स्वरूप में सूक्ष्म उपयोग।

६—एकता—आत्मा और गुणों में एकता

७—लीन भाव :—आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीनता—५९

प्राणायाम का फल

(१) पूरक प्राणायाम से शरीर को पुष्टि मिलती है। तथा रोगों की शान्ति होती है।

(२) रेचक प्राणायाम से पेट की व्याधि तथा कफ का नाश होता है।

(३) कुम्भक प्राणायाम से हृदय कमल तत्काल विकस्वर होता है, अन्दर की गांठ भेदी जाती है, शरीर में वल की वृद्धि होती है तथा वायु स्थिर रह सकती है।

(४) शांत प्राणायाम से वात, पित्त और कफ अथवा त्रिदोष (सन्निपात) की शान्ति होती है तथा उत्तर एवं अधर प्राणायाम से कुम्भक की स्थिरता होती है।

(दोहा) लीन दशा व्यवहार थी, होत समाधि रूप।
निहचे थी चेतन यह, होवे शिवपुर भूप॥ ६०॥

अर्थ—लीन दशा व्यवहार से समाधि रूप होती है और निश्चय से यह चेतन (आत्मा) मुक्त हो जाता है—६०

(दोहा) स्वासा कुं अति थिर करे, ताणे नहीं लगार।
मूलबन्ध[11] दृढ़ लायके, करे बीज संचार॥ ६१॥

---

११. मूलबन्ध का स्वरूप परिशिष्ट में देखें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ— श्वास को बिल्कुल न खेंचे, उसे अति स्थिर करके मूलबन्ध को दृढ़ कर बीज का संचार करे—६१

शरीर में वायु के भेद तथा इसके बीज

(दोहा) वायु पांच शरीर में, प्राण समान अपान।
उदान वायु चौथो कह्यो, पंचम अनिल अव्यान ॥ ६२ ॥
प्राण हिये फुनि सर्वगत तन में रहत समान।
आधार चक्र गति जानिये, तीजो वायु अपान ॥ ६३ ॥
उदान वासह कंठ में, संधि गतिए अव्यान।
पंच वायु के बीज फुन, पंच हिये इम आन॥ ६४ ॥
ऐं पैं रौं ब्लौं क्लौं सुधी, पांच बीज परधान।
इनके गर्भित भेद को, कहत न आवे मान ॥ ६५ ॥

अर्थ—शरीर में वायु पांच प्रकार की है। प्राण, समान, अपान, उदान तथा अव्यान—६२

१—प्राण :—श्वास द्वारा बाहर का खैंचा हुआ वायु हृदय में रहता है, लहू में सब प्रकार की चेष्टा कराने वाला शरीर में लघुता देने वाला—प्राण वायु कहलाता है। यह वायु मुख, नथने, नाभि और हृदय में रहता है। शब्द का उच्चार, श्वास, उच्छ्वास और खांसी आदि का कारण रूप है।

२—समान :—सारी नाभि में रहता है और सारे शरीर में व्यापक रूप से अग्नि के साथ बहत्तर हज़ार नाड़ियों के छिद्रों में संचरण करता है। खाये और पीये हुए रसों को अच्छी तरह से चलाकर शरीर को पुष्ट बनाता है तथा सब रसों को नाड़ियों में फैला देने वाला वायु समान कहलाता है।

३—अपान :—कंठ की पिछली नाड़ी, पीठ, गुदा, लिंग, कटि, जंघा, पेट, दो वृषण, साथल और घुटनों में जो रहा हुआ वायु है वह अपान वायु कहलाता है। मल, मूत्र तथा वीर्य को बाहर निकालना इसका काम है—६३

४—उदान :—दो हाथ, दो पग तथा अंगों के जोड़ों में रहने वाला वायु उदान कहलाता है। शरीर को नमाना, मृत्यु करना, शरीर को ऊंचा करना ये तीन इसके मुख्य कर्त्तव्य हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

५—अव्यान :—जोड़ों में, चमड़ी के सब भागों में, आंख, कण्ठ, घण्टी, कमर तथा नाक में रहने वाला वायु अव्यान अथवा व्यान कहलाता है। प्राण, अपान को धारण करना, उनका कुम्भक (रोकना) करना, त्याग और ग्रहण (आगम) करना, योग में कहे हुए नौली वगैरह कर्म करना—ये सब इस वायु से होते हैं तथा व्यापक रूप से सारे शरीर में रुधिर आदि का संचार करने वाला तथा स्पर्शेन्द्रिय का सहायक है।

इन पांचों वायु के बीज क्रमशः पांच प्रकार के हैं जो कि निम्नलिखित हैं—६४

इन वायु को जय करने के लिए पूरक, कुंभक और रेचक करते समय प्राणादि वायु का ऐं आदि बीजों का ध्यान करना चाहिए।

ऐं, पैं, रौं, ब्लौं, क्लौं ये पांच बीज प्रधान हैं और इनमें गर्भित भेदों की गिनती करना अशक्य हैं अर्थात् बहुत अधिक भेद हैं—६५

अनहद ध्वनी[१२]

(दोहा) पंच बीज संचार थी, अनहद धुन जो होय।
निर्गम भेद धुनी तणों जोगीश्वर लहे कोय ॥ ६६ ॥
वरण मात्र इन बीज के, कमल कमल थित जान।
भिन्न-भिन्न गुण तेहनो, शास्त्र थकी मन आन ॥ ६७ ॥

१२—योगाभ्यास में मन का लय करने के लिए दस प्रकार के नाद शनैः-शनैः खुलते हैं सो दस प्रकार के नादों के नाम इस प्रकार हैं—१. चिन्न, २. चिन चिन्न, ३. छोटी घंटी जैसा नाद, ४. शंख जैसा नाद, ५. वीणा के गर्जन जैसा नाद, ६. ताल के जैसा नाद, ७. मुरली जैसा नाद, ८. पखावज जैसा नाद, ९. नफीरी जैसा नाद, १०. सिंह गर्जन जैसा नाद। इन दस नादों में से नव नादों को सुनते-सुनते जब दसवां नाद सुनाई देने लगे तब नव-नादों को छोड़कर दसवें को ही सुनते रहने का अभ्यास बढ़ावें। इसी नाद को अनहद नाद कहते हैं। इस नाद की पक्व अवस्था में प्राण-वायु और मन दोनों ही लय हो जायेंगे। इसलिए चतुर साधकों को चाहिए कि योगानुभवी सद्गुरु की शरण लेकर इस नाद को सुननेका अभ्यास करें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सकल सिद्धि उनमें बसे, सर्व लब्धि इन मांहि।
केतिक आज हुं संपजे, केतिक तो अब नांहि ॥ ६८ ॥

अर्थ :—इन पांचों बीजों के संचार से अनहद की जो ध्वनी होती है उसके निर्गम भेद को कोई विरला योगी ही जानता है—६६

इन बीजों के वर्णमात्र कमल-कमल स्थित जानना चाहिए। इन सबके भिन्न-भिन्न गुण शास्त्रों से जान लेना चाहिए—६७

सब प्रकार की सिद्धियां[13] तथा सर्व प्रकार की लब्धियां[14] इनमें वास करती हैं। जिनमें से कुछ तो आजकल भी प्राप्त हो सकती हैं तथा कुछ आजकल

१३—सिद्धियां आठ हैं :—

अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, वशिता, प्राकाम्य, इशिता, प्राप्ति।

(१) अणिमा—यह सिद्धि प्राप्त होने पर अपने आपको जितना छोटा चाहे बना सकता है, अदृश्य भी हो सकता है। ऐसी शक्ति को अणिमा सिद्धि कहते हैं।

(२) महिमा—जितना बड़ा होना चाहे उतना शरीर बढ़ा सकता है। ऐसी शक्ति को महिमा कहते हैं।

(३) लघिमा—फूल के समान हल्का होने की शक्ति।

(४) गरिमा—जितना भारी होना चाहे उतना भारी होने की शक्ति।

(५) वशिता—जिसे वश करना चाहे उसे वश करने की शक्ति।

(६) प्राकाम्य—ऐसी शक्ति जिससे जगत में जो कार्य करना चाहे उसमें सफल हो।

(७) इशिता—सबको अपनी आज्ञा में चलाने की शक्ति।

(८) प्राप्ति—जैसा चाहे वैसा रूप परिवर्तन करने की शक्ति।

१४—लब्धियां २८ हैं :—

(१) आमौषधि, (२) विप्रौषधि, (३) खेलौषधि, (४) जलौषधि, (५) सर्वोषधि, (६) संभिन्न श्रोता, (७) अवधि, (८) मनः पर्याय, (९) विपुलमति, (१०) चारण लब्धि, (११) आशिविष, (१२) केवल लब्धि, (१३) गणधर लब्धि, (१४) पूर्वधर लब्धि, (१५) अरिहंत लब्धि, (१६) चक्रवति लब्धि, (१७) बलदेव लब्धि, (१८) वासुदेव लब्धि, (१९) अमृतश्राव, (२०) कोष्ठ, (२१) पादानुसारी, (२२) बीज वृद्धि (२३) तेजोलेश्या, (२४) आहारक, (२५) शीतलेश्या, (२६) वैक्रिय, (२७) अक्षीणमहानस, (२८) पुलाक लब्धि।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्राप्त नहीं हो सकती हैं—६८

अजपा जाप योग

(दोहा) वरुण नाभी में संचरे, सोऽहं शब्द उद्योत।
अजपा जाप ते जानिये, अनुभव भाव उद्योत ॥ ६९ ॥
नाभी थी हिये संचरे, तिहां रकार प्रकाश।
मन थिरता तामे हुए, अशुभ संकल्प विनाश ॥ ७० ॥
सुरत डोर लावे गगन, तिरवेणी कर वास।
तिहां अनहद धुनि उपजे, स्थिर ज्योति परकास ॥ ७१ ॥

अर्थ—श्वास लेते समय वायु नाभी में जाता है तब सोऽहं[१५] शब्द प्रगट होता है इसे अजपा—जाप[१६] कहते हैं इससे अनुभव भाव का प्रकाश होता है—६९

जब वायु नाभी से हृदय में संचार करती है तब 'रं' कार शब्द प्रगट होता

१५—पूरक करते समय 'सो' का उच्चारण करना (पूरक करते समय स्वाभाविक ढंग से 'सो' शब्द का उच्चारण होता है) उसके बाद थोड़ा रुक जाना, फिर रेचक करते हुए 'अहम्' का उच्चारण करना (रेचक के समय श्वास निकलने से 'अहम्' शब्द का स्वाभाविक उच्चारण होता है) फिर थोड़ा रुक जाना। इसे अजपा-जाप कहते हैं। इसमें मन्त्र का उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल श्वास के पूरक और रेचक की गति पर ध्यान देंने की। जिससे स्वयं मालूम होगा कि "सोऽहं" मन्त्र का जाप स्वत: बिना उच्चारण किए ही हो रहा है अर्थात् पूरक में 'सो' और रेचक में 'अहम्' दोनों मिलाकर 'सोऽहं' का जप बिना जाप किए ही हो रहा है। यही अजपा-जाप योग है। इस जप से वृत्ति अन्तरात्मा पर रखनी चाहिए अर्थात् वही 'सो' (वह ईश्वर) और वही 'अहम्' (साधक का जीवात्मा) है; दोनों मिलकर "सोऽहं" हुआ है। इसमें पूरक और विशेषकर रेचक धीरे-धीरे करना चाहिए।

१६—अजपा जाप—किसी मन्त्र के दो भाग करके एक भाग को पूरक करते

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है। इससे मन की स्थिरता होती है और अशुभ संकल्पों का नाश होता है—७०

सुरत की डोर को आकाश में लाकर त्रिवेणी[१७] में वास करावे, वहां पर

हुए अर्थात् श्वास के भीतर जाते समय जपना और पूरक पूरा हो जाने पर बहुत थोड़ी देर रुक जाना अर्थात् कुम्भक करना और फिर रेचक करते हुए अर्थात् श्वास को बाहर निकालते हुए मंत्र के दूसरे भाग का जप करना और रेचक पूरा हो जाने पर फिर बहुत थोड़ी देर रुक जाना। यह भी अजपा जाप है। अर्हम् का भी अजपा जाप होता है।

१७—लय योग के अंग तथा त्रिवेणी का स्वरूप :—

यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म-क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लय-क्रिया और समाधि ये लय योग के आठ अंग हैं। सूक्ष्म क्रिया के साथ-स्वरोदय साधन का, प्रत्याहार के साथ—नादानुसन्धान क्रिया का, और धारणा के साथ—षट्चक्र भेदन क्रिया का सम्बन्ध है।

पायु से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ से दो अंगुल नीचे चतुरंगुल विस्तृत समस्त नाड़ियों का मूल स्वरूप पक्षी के अण्ड की तरह एक बंद विद्यमान् है जिसमें से बहत्तर हज़ार नाड़ियां निकलकर सारे शरीर में व्याप्त हुई हैं। इनमें से योग शास्त्र में तीन नाड़ियां मुख्य कही हैं, इंगला, पिंगला और सुषुम्ना। चंद्ररूपिणी इंगला मेरुदंड के वाम भाग में, सूर्य रूपिणी पिंगला मेरुदण्ड के दक्षिण भाग में, और चन्द्रसूर्यादि रूपिणी त्रिगुणमयी सुषुम्ना मध्य भाग में विराजमान रहती है। मूल से उथित इड़ा (इंगला) और पिंगला मेरुदण्ड के वाम और दक्षिण भाग में समस्त पद्मों को वेष्टित करते हुए आज्ञाचक्र पर्यन्त धनुषाकार से जाकर भ्रूमध्य के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र के मुख में संगता हो नासारन्ध्र में प्रवेश करती है। भ्रूमध्य के ऊपर जहां पर इड़ा और पिंगला मिलती हैं वहां पर मेरुमध्य स्थित सुषुम्ना भी जा मिलती है। इसलिए यह स्थान त्रिवेणी कहलाता है क्योंकि शास्त्र में इन तीनों नाड़ियों को गंगा, यमुना, सरस्वती कहा गया है। इस त्रिवेणी के योग बल से ही पातंजल योग में मोक्ष माना है, परन्तु जैन दर्शन में इसे मोक्ष नहीं माना।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अनहद ध्वनी उत्पन्न होती है और उससे स्थिर ज्योति के प्रकाश का अनुभव प्राप्त होता है—७१

समाधि

(चौपाई)—अनहद अधिष्टायक जो देव। थिर चित्त देख करे तसु सेव ॥
ऋद्धि अनेक प्रकार दिखावे। अद्भुत रूप दृष्ट तस आवे ॥७२॥
ऋद्धि देख नवि चित्त चलावे। ज्ञान समाधि ते नर पावे ॥
वेद भेद समाधि[१८] कहिये। गुरु गम लक्ष तेह नो लहिये ॥७३॥

अर्थ —अनहद के अधिष्टायक जो देव हैं वे ऐसे योगी को स्थिर चित्त देख

१८—समाधि :—ध्येय वस्तु के स्वरूप को प्राप्त हुआ मन जब अपने ध्यान स्वरूप का परित्याग करके और संकल्प विकल्प से रहित होकर केवल ध्येय वस्तु के स्वरूप में स्थित होता है तब उसकी उस अवस्था को योगी जन समाधि कहते हैं यह दो प्रकार की है सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात।

१—सम्प्रज्ञात समाधि—सविकल्प। जिसमें ज्ञाता और ज्ञानादि के विकल्प लय की अनपेक्षा हो और अद्वितीय ब्रह्म के आकार की आकारता हो, वह चित्तवृत्ति का अवस्थान। इसमें चित्त की वृत्ति को ब्रह्म में लय कर देना होता है और इसका कुछ विचार नहीं रहता कि ज्ञाता और ज्ञान में भेद है या नहीं। इसमें किसी न किसी एक अवलम्बन की आवश्यकता रहती है। इसमें प्रज्ञा के संस्कार भी रह जाते हैं। यह समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था में होती है।

२—असम्प्रज्ञात समाधि—निर्विकल्प। बुद्धि का-वृत्ति का अद्वितीय ब्रह्म में उसी का आकार बनकर एक भाव से अवस्थान होना। इसमें ज्ञाता-ज्ञानादि के भेद की कोई अपेक्षा नहीं रहती। जैसे नमक जल में मिलकर जल रूप ही हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म में चित्तवृत्ति लीन हो जाने पर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं देता अर्थात् अपनी आत्मा का शुद्ध रूप में साक्षात्कार हो जाता है। इसमें कोई अवलम्बन नहीं रहता। सब वृत्तियां विलीन हो जाती है। यह चित्त की निरुद्धावस्था में होती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कर उसकी सेवा करने लगते हैं। अनेक प्रकार की ऋद्धियां दिखलाते हैं तथा उनके अद्भुत रूप उसे दिखाई देने लगते हैं—७२

ऐसी ऋद्धियों को देखकर जो योगी अपने चित्त को चलायमान नहीं करता वही योगी ज्ञान समाधि प्राप्त है। समाधि प्राप्त हो जाने पर वेद के भेद का वास्तविक अनुभव प्राप्त होता है। इसका लक्षण किसी परम योगीराज गुरु द्वारा जानकर उसके द्वारा बतलाये हुए विधि विधान से ही करना उचित है। क्योंकि योग विद्या के साधन के लिए इस विषय में निष्णात गुरु की परमावश्यकता हैं। गुरु के बिना अपने आप करने से लाभ के स्थान पर हानि होना सम्भव है—७३

शरीर में कुंडलिनी और बंकनाल का स्थान

(चौपाई) नाभी पास है कुंडलिनी[१९]। बंकनाल है तास पिछाड़ी ॥
दशम द्वार का मार्ग सोई। उलट वाट पावै नहीं कोई ॥ ७४ ॥

जैन शास्त्रों में समाधि को परा दृष्टि के नाम से कहा है, यथा—

समाधिनिष्टा तु परा तदासंग विवर्जिता।
सात्मीकृत प्रवृत्तिश्च तदुत्तीर्णाशयेति च ॥

अर्थ—आठवीं परा दृष्टि समाधिनिष्ट तथा उसके आसंग दोष से विवर्जित होती है तथा सात्मीभूत प्रवृत्तिवाली एवं उससे उत्तीर्ण आशय वाली होती है।

१९—कुंडलिनी क्या हैं? इसका संक्षेप से यहां वर्णन करते हैं। इड़ा और पिंगला दो नाड़ियों का वर्णन कर आये हैं। इन दो नाड़ियों के बीच में जिसका प्रवाह है वह है सुषुम्ना नाड़ी। इस सुषुम्ना नाड़ी के अन्तर्गत और भी नाड़ियां हैं, जिनमें एक चित्रिणी नाम की नाड़ी है। इस चित्रिणी नाड़ी में से होकर कुंडलिनी शक्ति का रास्ता है। इसका स्थान नाभी के पास है। योग शास्त्र में जो अनेक गूढ़ विषय हैं उन में से भी कुंडलिनी शक्ति गूढ़तम विषय है। योग शास्त्र के प्रथम सोपान से अन्तिम सोपान तक चढ़ जाने के पश्चात् ही इस शक्ति का अनुभूत ज्ञान प्राप्त होता है। इस कुंडलिनी को जाग्रत करने से ही योग सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस कुंडलिनी को जाग्रत करने की विधि योग विद्या के पारगामी से जान लेना ही उचित है। इसका स्वरूप परिशिष्ट में भी दिया है। वहां जान लेवें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—नाभी के पास कुंडालनी है और बंकनाल इसके पीछे है वह ही दशम द्वार का मार्ग है। उल्टे मार्ग से इससे कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता—७४

मुद्रा, बन्ध और आसन

(चौपाई) मुद्रा पांच[२०] बन्ध त्रय[२१] जानो । आसन चौरासी[२२] पहचानो ॥
तामे आसन युग परधान । मूलासन[२३] पद्मासन[२४] जान ॥७५ ॥

२०—पांच मुद्राएं—खेचरी, भूचरी, चांचरी, अगोचरी, उनमनी ।

२१—तीन बन्ध—उड्डियान, मूल बन्ध, जालंधर बन्ध । (देखें परिशिष्ट)

२२—चौरासी आसन—(१) सिद्धासन, (२) प्रसिद्ध सिद्धासन, (३) पद्मासन, (४) बद्ध पद्मासन, (५) उत्थित पद्मासन, (६) ऊर्ध्व पद्मासन, (७) सुप्त पद्मासन, (८) भद्रासन, (६) स्वस्तिकासन, (१०) योगासन, (११) प्राणासन, (१२) मुक्तासन, (१३) वज्रासन, (१४) चक्रासन, (१५) उत्कटासन इत्यादि-इत्यादि ।

२३—मूलासन—दोनों ओर के जानु और जंघों के बीच में दोनों पाद तलों को रखकर स्थिर बैठने को मूलासन कहते हैं । इसका दूसरा नाम स्वस्तिकासन भी है। इस आसन में बायां पैर नीचे रखें और दाहिना पैर ऊपर ।दोनों हाथ ऊपर नीचे पद्मासन के समान रखें ।

२४—पद्मासन—पहले बांयी जांघ के ऊपर दाहिने पैर को रखें, फिर बायें पैर की दाहिनी जांघ पर रखें, दोनों पैरों के मध्य में ऊपरी नीचे रखें, तीर्थंकर की मूर्ति के समान आसन उस समय शरीर स्थिर रहना चाहिए और चित्त में किसी प्रकार का भी उद्वेग नहीं होना चाहिए । (Relaxation of body and mind)

आसन के अभ्यास से सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, राग-द्वेष आदि द्वन्द्व छूट जाते है ।

"शरीर सुखमासनम्" (पातंजल योग सूत्र) अर्थात् "जो स्थिर और सुखदायी है वह आसन है ।"

आसन शरीर को स्वस्थ, हल्का और योग साधना के लिए योग्य

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पद्मासन में विराजमान

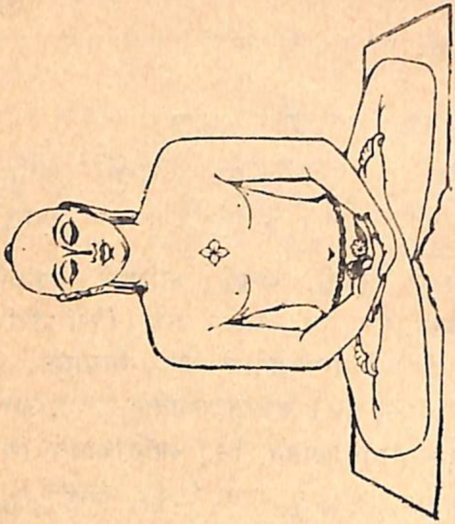

प्रभु महावीर (वर्धमान)

मूलासन में विराजमान

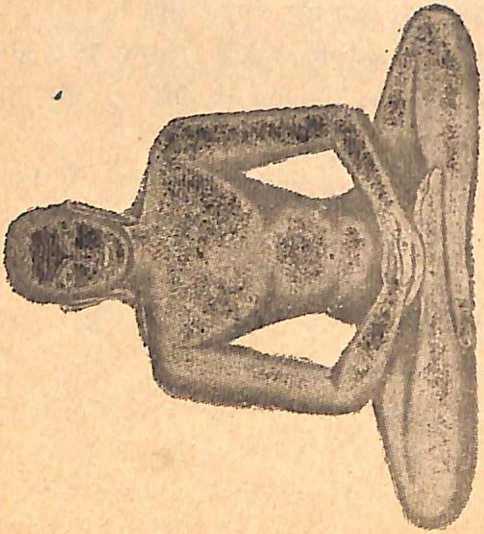

प्रभु ऋषभदेव (आदिनाथ)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—पांच प्रकार की मुद्रा, तीन प्रकार के बन्ध, चौरासी प्रकार के आसनों को जान लेना चाहिए। इनमें से दो आसन मुख्य हैं—मूलासन, पद्मासन—७५

बनाने में सहायक है।

आसन वह है जिसमें सुखपूर्वक निश्चलता से अधिक से अधिक समय ध्यान में बैठा जा सके।

पातंजल योग शास्त्र में आसन सिद्धि का उपाय बतलाते हैं—"प्रयत्न-शैथिल्यानन्त्य समापत्तिभ्याम्" अर्थात् प्रयत्न शिथिलता तथा अनन्तता में चित्त की तद्रुपता द्वारा आसन सिद्ध होता है।

शरीर को प्रयत्न शून्य करना, शिथिल करना तथा अनन्तता में चित्त को तदाकार करने से चित्त निर्विषय होकर स्थिर हो जाता है यह देह और मन का शिथिलीकरण (Profound Relaxation) है। जिसमें देह और मन क्रिया रहित होता है।

आसन को सिद्धि से द्वन्द्वों का आघात नहीं लगता। शरीर को साधना के योग्य बनाना यह आसन का अंग है।

अलग-अलग साधनाओं के लिए शरीर और मन के विशेष प्रकार के सम्बन्ध के लिए जुदा-जुदा आसन आवश्यक हैं।

योगाभ्यास के समय साधक के शरीर में नयी-नयी क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। जिससे मेरुदण्ड, छाती, गला, मस्तक आदि सुयोग्य प्रकार से रहें यह आसन का हेतु है।

प्राणायाम आदि करने वाले साधक को मेरुदण्ड अवश्य सीधा रखना चाहिए। नहीं तो हानि होगी।

आसन द्वारा नस-नस में रक्त का प्रवाह चालू होता है। सब इन्द्रियां और नाड़ियां जड़ता का त्याग कर चैतन्यमय बनती हैं।

कठोर ब्रह्मचर्य की साधना में जो असमर्थ हैं वे सिद्धासन न करें। सिद्धासन संसार विमुख साधकों के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

शरीर स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन लाभदायक है परन्तु ध्यान में

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

षट् कर्म

(चौपाई) अस्तव्यस्त वायु संचरे। कारण विशेष षट् कर्म[२५] करे ॥
नेती, धौती, नौली कही। भेद चतुर्थ त्राटक फुनि लही ॥ ७६ ॥

यह सहायक नहीं।

इसलिये इस ग्रन्थ के कर्त्ता चिदानन्द जी ने ध्यान के लिए दो आसनों का ही वर्णन किया है।

जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र जी योग शास्त्र में फरमाते हैं कि—

"जायते येन येनेह विहितेन् स्थिरं मनः।
तत्तदेव विधातव्यमासनं ध्यान साधनम्" ॥

जिस-जिस आसन के करने से मन स्थिर हो, ध्यान के साधनभूत वह-वह आसन ही करना चाहिये। अमुक आसन ही करना चाहिये ऐसा कोई आग्रह नहीं है। सुख पूर्वक लम्बे समय तक चित्त समाधि में बैठा जा सके वह आसन करने योग्य है। इसलिए सब आसनों में अपने योग्य आसन करना चाहिए। (आसनों के भेदों का स्वरूप परिशिष्ट में देखें।)

२५—षट्कर्म—(१) नौलिकर्म—कन्धों को नवाये हुए अत्यन्त वेग के साथ जल भ्रमर के समान अपनी तुन्द को दक्षिण वाम भागों से भ्रमाने को नौली कर्म कहते हैं। (२) वस्तिकर्म—यह दो प्रकार का है—पवन वस्ति, जल वस्ति। नौली कर्म द्वारा उपान वायु को उपर खींच पुनः मयूरासन से त्यागने को पवन वस्तिकर्म कहते हैं। पवन वस्ति पूरी सध जाने पर जल वस्ति सुगम हो जाती है। (३) धौती कर्म-चार अंगुल चौड़े और पन्द्रह हाथ लम्बे महीन वस्त्र को गरम जल में भिगोकर गुरुपाष्ट मार्ग से धीरे-धीरे प्रतिदिन निगलने और निकालने की क्रिया को धौती कर्म कहते हैं। (४) नैती कर्म—जल को नाक द्वारा खेंचने को नैतीकर्म कहते हैं। (५) त्राटक कर्म—एकाग्र चित्त हुआ मनुष्य निश्चल दृष्टि से लघु पदार्थ को तब तक देखे जब तक अश्रु पड़ते न होवें। (६) कपाल कर्म-लोहार की भाथी के समान अत्यन्त शीघ्रता से क्रमशः रेचक पूरक प्राणायाम को शांति पूर्वक करना।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

वस्ती पंचम भेद पिछानो। छठा कपाल भातो मन आनो॥
किंचित आरम्भ लख इन मांहि। जैन धर्म में करिये नांहि॥ ७७॥

अर्थ—वायु का संचार अस्त-व्यस्त होता है कारण विशेष वश षट्कर्म करना चाहिए। षट् कर्मों के नाम ये हैं—नैती, धौती, नौली, त्राटक—७६

पांचवां वस्ति, छठा कपाल—ये षट्कर्म श्वास निश्वास (प्राणायाम) के साधन मात्र में सहायक हैं परन्तु इनसे आत्मा का कल्याण नहीं है इसलिए इनका किंचित मात्र लाभ देखकर जैन धर्म इनको आध्यात्मिक साधना के लिए महत्व नहीं देता—७७

(चौपाई) त्राटक नवली ये दोय भेद। करत मिटे सहु तन का खेद॥
रोग नवि होवे तन मांहि। आलस ऊंघ अधिक होय नांहि॥ ७८॥

अर्थ—त्राटक और नौळी इन दो भेदों की साधना करने से शरीर के क्लेश मिट जाते हैं। शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं आता। आलस्य और नींद भी बहुत अल्प हो जाते हैं—७८

जैनधर्मानुसार अष्ट योग दृष्टि

(चौपाई) दृष्टि अष्ट योग की कही। ध्यान करत ते अन्तर लही॥
कीजे यह सालम्बन ध्यान। निरालम्बता प्रगटन ज्ञान॥ ७६॥
मित्रा तारा दूजी जान। बला चतुर्थी दीप्ता मन आन॥
थिरा दृष्टि कान्ता फुनि लहिये। प्रभा परा अष्टम कहिये॥ ८०॥

अर्थ–जैन दर्शन में योग[२६] की आठ दृष्टियां कहीं हैं इनके भेदों को जानकर

२६—पहले जो हठ योग के आठ अंगों के विषय में पद्य नं० ५६-५७ में कहा है वे आत्म कल्याण में साधक न होने से जैन धर्म की दृष्टि में इनका कोई विशेष महत्व नहीं है। आत्मा को स्वकल्याण करने के लिए अष्ट योग दृष्टियों का जैनाचार्यों ने विस्तृत वर्णन किया है। जो इनका विस्तृत स्वरूप जानने के अभिलाषी हैं वे योगदृष्टिसमुच्चय, योगबिन्दु, योग शास्त्र आदि ग्रन्थों का अवलोकन करें। यहां पर संक्षेप से इन आठों दृष्टियों का स्वरूप लिखते हैं। अष्ट योग दृष्टि—

१—मित्रा दृष्टि—इस दृष्टि में मन्द दर्शन, इच्छादि यम, देव कार्य आदि में

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ध्यान करना चाहिये। ध्यान के दो भेद हैं। (१) सालम्बन (२) निरालम्बन। पहले सालम्बन ध्यान करना चाहिये और उसके बाद निरालम्बन ध्यान द्वारा ज्ञान को प्रकाश में लाया जाता है—७९

मित्रा, तारा, बला, दीप्ता, स्थिरा, कांता, प्रभा, परा—योग की ये आठ दृष्टियां हैं— ८०

अखेद तथा अन्यत्र अद्वेष होता है अर्थात् इस दृष्टि में यम आदि के पालन में अखेद तथा अन्य प्रसंगों पर अद्वेष नाम का प्रथम गुण प्राप्त होता है। इस दृष्टि का मुख्य लक्षण सकल जगत के प्रति मित्र भाव, निर्वैर बुद्धि होने से इसका मित्रा नाम ठीक घटित होता है। इस दृष्टि से जो दर्शन (सत् श्रद्धा) वाला बोध होता है वह मन्द स्वल्प शक्ति वाला अग्नि समान होता है।

२—तारा दृष्टि—इसमें मित्रा दृष्टि से दर्शन (सत् श्रद्धा बोध) थोड़ा स्पष्ट होता है तथा वैसे प्रकार के नियम, हित प्रवृत्ति में अनुद्वेग तथा तत्त्व विषय सम्बन्धी जिज्ञासा होती है। अर्थात् योग का दूसरा अंग नियमों का पालन तथा दूसरे दोषों के त्याग रूप अनुद्वेग एवं एक दूसरे जिज्ञासा रूप गुण की उत्पत्ति होती है। कंडे की अग्नि के समान है।

३—बला दृष्टि—दर्शन (सत् श्रद्धा बोध) काष्ट अग्नि समान, योग का तीसरा अंग आसन, क्षेप नामक तीसरे आशय दोष का त्याग, शुश्रूषा नाम के तीसरे गुण की प्राप्ति होती है। इसमें सत् श्रद्धा प्रथम की दोनों दृष्टियों से अधिक बलवान दृढ़ होती है। तृण और कण्डे की अग्नि से अधिक प्रकाश वाली, अधिक स्थिति वाली, अधिक शक्ति वाली होती है।

४—दीप्ता दृष्टि—योग का चौथा अंग प्राणायाम इसमें होता है। उत्थान नामक चौथे आशय दोष का त्याग होता है। श्रवण नाम चौथा गुण प्रकट होता है, परन्तु दर्शन तो अब भी सूक्ष्म बोध बिना का होता है, दीप के प्रकाश तुल्य। पहले की तीनों दृष्टियों से अधिक स्थिरता आदि वाली होती है। इसका बोध दीपक के प्रकाश तुल्य निकटवर्ती पदार्थों का ही विषय करने में कार्यकारी होता है सूक्ष्म विषयों का बोध नहीं करता।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

योग दृष्टि साधने वाले की योग्यता

(चौपाई) सघन अघन[२७] दिन रयणी कही। ताका अनुभव या में लही॥
निर उपाधि एकान्ते स्थान। तिहां होय यह आत्म ध्यान॥ ८१॥

५—स्थिरा दृष्टि—यह दृष्टि दो प्रकार की है, निरतिचार-सातिचार। निरतिचार में जो दर्शन होता है वह नित्य, अप्रतिपाति होता है, जैसा है वैसा अवस्थित रहता है। सातिचार में जो दर्शन होता है वह अनित्य भी होता है—न्युनाधिक हुआ करता है। यह दर्शन प्रत्याहार से युक्त होता है तथा वन्दनादि क्रिया क्रम की अपेक्षा से अभ्रांत, निर्दोष-निरतिचार होता है इसलिए यह सूक्ष्म बोध सहित होता है। क्योंकि ग्रन्थि भेद से यहां, वैद्य संवेद्य पद की प्राप्ति होती है। इसका दर्शन रत्न की प्रभा के समान है। योग का पांचवा अंग प्रत्याहार होता है। भ्रांति नामक पांचवा चित्त दोष नष्ट होता है। बोध नामक पांचवां गुण प्रगट होता है।

६—कांता दृष्टि—नित्य दर्शनादि सब होते हैं तथा यह गुण सब को प्रीति उपजाने वाले होते हैं परन्तु द्वेष नहीं होता। परम धारणा-चित्त का देश बन्ध होता है तथा इस धारणा के कारण यहां अन्यमुह नहीं होती एवं नित्य सर्व काल सद् विचारात्मक तत्त्व विचारणा होती है, कि जो सम्यग्ज्ञान के फल के कारण हितोदयवती होती है।'

७—प्रभा दृष्टि—सूर्य प्रभा के समान बोध, सातवां योगांक ध्यान, सातवें रुग दोष का अभाव तथा सातवें तत्त्व प्रतिपत्ति गुण का सद्भाव होता हैं। ऐसी यह दृष्टि प्राय: ध्यान प्रिया होती है तथा विशेषकर समसंयुक्त तथा इससे सत्प्रवृत्ति पद लाने वाली होती है।

८—परा दृष्टि—यह समाधि निष्ठ तथा इसके आसंग दोष से विवर्जित होती है। सात्मीभूत प्रवृत्ति वाली, तथा इनके द्वारा उत्तीर्ण आशय वाली होती है।

२७—ओघ दृष्टि अर्थात् सामान्य दृष्टि-संसार प्रवाह में डूबे हुए ऐसे भवाभिनन्दी सामान्य कोटि के जीवों की दृष्टि को ओघ दृष्टि कहते हैं (Vision of a layman) तथा ओघ दृष्टि भी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि कर्म

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अल्पाहार निद्रावश करे। हित स्नेह जग थी परिहरे॥
लोक लाज नवि करे लगार। एक प्रीत प्रभु थी चित्त धार॥ ८२॥
आशा एक मोक्ष की होय। दूजी दुविधा नवि चित्त कोय॥
ध्यान योग्य जानो ते जीव। जो भव दुःख से डरत सदीव॥ ८३॥
पर निन्दा मुख थी नवि करे। स्व निन्दा सुनी समता धरे॥
करे सहु विकथा[२८] परिहार। रोके कर्म आगमन द्वार॥ ८४॥
हरख शोक हिरदे नवि आवे। शत्रु मित्र बराबर जाने॥
पर आशा तजी रहे निराश। तेथी होय ध्यान अभ्यास॥ ८५॥

अर्थ—मेघ वाली या मेघ बिना की रात अथवा मेघ वाले या मेघ बिना के दिन आदि के भेद अनुभव के विचार से उपाधि रहित. एकान्त स्थान में

के भिन्न-भिन्न क्षयोपशम के कारण (न्यूनाधिकता के लिए) जुदा-जुदा प्रकार से विचित्र प्रकार की होती है। नीचे लिखे विवेचन से भली भांति पढ़ने से इस दृष्टि की विचित्रता स्पष्ट रूप से समझ में आ जायेगा।

(१) मेघाच्छन्न रात्रि में वस्तु का बहुत ही अस्पष्ट भास होता है। (२) इस से कुछ अधिक मेघ बिना की रात्रि में दिखलाई देगा। (३) इससे स्पष्ट मेघाच्छन्न दिन में दिखलाई देगा। (४) मेघ बिना के दिन में इससे भी बहुत स्पष्ट दिखलाई देगा। (५) देखने वाला जो भूतादि ग्रह से अथवा चित्त विभ्रम आदि ग्रह से ग्रहित हो उससे देखने में (६) तथा ऐसे ग्रह आदि रहित देखने वाले में स्पष्ट भेद पड़ता है। (७) देखने वाला बालक हो तो उसके देखने में। (८) तथा वयोवृद्ध व्यक्ति हो तो उसके देखने में भी विवेक में कम अधिक प्रमाण में अन्तर होता है। (९) आंख पर मोतिया उतर आने से परदा आ जाने के कारण देखने वाले से (१०) रोग रहित आंखों वाले के देखने में अवश्य अन्तर पड़ता है। इस प्रकार एक ही दृश्य में देखने की वस्तु में विचित्र उपाधि भेद के कारण भिन्न-भिन्न दृष्टि भेद होते हैं। इस दृष्टांतानुसार लौकिक पदार्थों को लौकिक दृष्टि से देखने के जो जो भेद हैं, वे-वे ओघ दृष्टि के प्रकार हैं।

२८—राजकथा, देश कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा—ये चार बिकथाएं हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यह आत्म ध्यान करना चाहिये—८१

अल्पाहार, अल्प निद्रा, संसार से वैराग्य भाव, लोक लाज का त्याग, तथा अपने चित्त को एकमात्र प्रभु की भक्ति में लगाने वाला—८२

एकमात्र मोक्ष की आशा वाला तथा अन्य सब प्रकार की दुविधा का त्यागी ऐसे जीव को ध्यान के योग्य जानना चाहिये। जो सदा संसार के दुःखों से डरने वाला है—८३

जो मुख से दूसरे की निन्दा न करे, अपनी निन्दा सुनकर सम परिणाम रखे, सब प्रकार की विकथा का त्याग करे, वही नर कर्मों के आने के मार्गों को रोक सकता है—८४

हर्ष-शोक को मन में न लाने वाला, शत्रु-मित्र पर सम दृष्टि रखने वाला, दूसरों की आशा छोड़कर सदा स्वालम्बी रहने वाला तथा संसार से वैराग्य भाव वाला, पर के सहारे से निरपेक्ष इत्यादि गुणों वाला मनुष्य ही इस ध्यान[२९] को

२९—**ध्यान का स्वरूप**—एक आलम्बन में, अन्तमहूर्त तक मन को स्थिर रखना, यह छद्मस्थ योगियों का ध्यान कहलाता है। वह धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान दो प्रकार का है। और योग का निरोध रूप ध्यान अयोगियों (चौदहवें गुणस्थान वालों) को होता है।

एक महूर्त ध्यान में रहने के बाद ध्यान सम्बन्धी चिन्ता हो अथवा आलम्बन के भेद से दूसरा ध्यानान्तर हो (परन्तु एक महूर्त से अधिक एक ही आलम्बन में ध्याता अधिक नहीं रह सकता)।

ध्यान में वृद्धि करने के लिए—ध्यान भंग हो जाने पर उसे फिर ध्यानान्तर के साथ जोड़ने के लिए मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थता इन चार भावनाओं को आत्मा के साथ जोड़ें। (इन भावनाओं का स्वरूप देखें परिशिष्ट में)।

ध्यान करने का स्थान—ध्यान की सिद्धि के लिए तीर्थंकरों की जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण भूमियों में जाना चाहिये। इसके अभाव में ऐसे स्थान पर ध्यान करें, जो स्त्री, पशु, नपुंसकादि रहित कोई भी उत्तम एकांत स्थान हो।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

आराधन करने का पात्र है—८५

व्यवहार ध्यान का प्रभाव

(चौपाई) ध्यान अभ्यास थी जो नर होय। ताकुं दुःख उपजे नवि कोय।
इन्द्रादिक पूजे तस पाय। ऋद्धि, सिद्धि प्रगटे घट आय ॥ ८६ ॥
पुष्प-माल सम विषधर तास। मृगपति मृगसम होवे जास ॥
पावक होय पानी तत्काल। सुरभि सुत सदृश्य जस व्याल ॥ ८७ ॥
सायर गोपद नी परे होय। अटवी विकट नगर सम जोय ॥
रिपु लहे मित्राई भाव। शस्त्र तणो नवि लागे घाव ॥ ८८ ॥
कमलपत्र करवाल बखानों। हलाहल अमृत करि जानो ॥
दुष्ट जीव आवे नहीं पास। जो आवे तो लहे सुवास ॥ ८९ ॥
जो विवहार ध्यान इम ध्यावे। इन्द्रादिक पदवी ते पावे ॥

अर्थ—जो मनुष्य इस प्रकार से ध्यान का अभ्यास करता है उसे किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता। इन्द्रादिक उसके चरणों की सेवा करते हैं उसे सब प्रकार की ऋद्धियों और सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है—८६

ऐसे व्यक्ति को सर्प पुष्पमाला समान, सिंह हिरण के समान हो जाते हैं। अग्नि पानी में परिवर्तित हो जाती है और व्याघ्र गाय के बछड़े के समान हो जाता है—८७

समुद्र चोबचे के समान, विकट अटवी नगर समान, शत्रु मित्र समान हो

ध्यान कैसे करना ?—बहुत समय तक सुविधा (आसानी) से बैठ सकें ऐसे आसन से बैठ कर पवन बाहर न जावे इस प्रकार दृढ़ता से दोनों होंठ बन्द करके नासिका के अग्रभाग पर दोनों दृष्टि स्थापन करें। ऊपर के दातों के साथ नीचे के दांतों का स्पर्श न हो इस प्रकार दांतों को रख कर (दांतों के साथ दांत लगने से मन स्थिर नहीं होता) रजो, तमो गुण रहित, कुटी के विक्षेपों के बिना प्रसन्न मुख से पूर्व दिशा सन्मुख या उत्तर दिशा सन्मुख बैठ कर (अथवा जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा के सन्मुख बैठकर) अप्रमत्त (प्रमाद रहित) तथा शरीर को सरल (सीधे) या मेरुदण्ड को सीधे रख कर ध्यान करना चाहिए।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जाते हैं। तथा उसे शस्त्र का घाव भी नहीं लगता—८८

तलवार कमल-पत्र समान, विष अमृत समान हो जाते हैं। दुष्ट तथा हिंसक प्राणी पास में फटकने नहीं पाते। यदि दुष्ट जीव आ भी जावें तो मित्र सम बन जाते हैं—८९

यदि योगाभ्यास में व्यवहार ध्यान को ध्यावें तो उपर्युक्त सब प्रकार की योग्यताएं प्राप्त होती हैं तथा चक्रवर्ती, इन्द्रादि पदवी को भी प्राप्त कर सकता है—

निश्चय ध्यान का प्रभाव

(चौपाई) निहचे ध्यान लहे जब कोय। ताकुं अवश्य सिद्ध-पद होय ॥ ९० ॥
सुख अनन्त विलसे तिहुं काल। तोड़ी अष्ट कर्म[३०] की जाल ॥
ऐसा ध्यान धरी नितमेव। चिदानन्द लही गुरुगम भेव ॥ ९१ ॥

अर्थ—जब कोई निश्चय ध्यान करता है तो उसे अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है - ९०

निश्चय ध्यान से अष्ट कर्मों[३०] का नाश करके अनन्त सुख को भूत-भविष्य वर्तमान सदैव तीनों काल अर्थात् अनन्त काल तक प्राप्त करता रहता है। ऐसा ध्यान सदा करते रहने से अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस ध्यान के स्वरूप को सद्गुरु के पास से जानना चाहिये—९१

ध्यान के भेद

(चौपाई) ध्यान चार भगवन्त बतावे। ते मेरे मन अधिके भावे ॥
रूपस्थ पदस्थ पिंडस्थ कहिजे। रूपातीत साथ शिव लीजे ॥ ९२ ॥
रहत विकार स्वरूप निहारी। ताकी संगत मनसा धारी ॥
निज गुण अंश लहे जब कोई। प्रथम भेद तिन अवसर होई ॥ ९३ ॥

अर्थ—श्री वीतराग जिनेश्वर प्रभु ने ध्यान चार प्रकार का बतलाया है

---

३० – आठ कर्मों के नाम ये हैं—

(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय। इन आठ कर्मों का क्षय करने से जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(१) रूपस्थ, (२) पदस्थ, (३) पिंडस्थ, (४) रूपातीत इन चार ध्यानों के करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए ये ध्यान मेरे मन को (चिदानन्द को) अधिक रुचि करं हैं—९२

रूपस्थ ध्यान

१—अपने स्वरूप को विकार रहित जानकर आत्म ध्यान में लीन होकर जब कोई अपनी आत्मा के निज गुण को अंश रूप से प्राप्त करता है तो उस समय वह ध्यान के प्रथम भेद रूपस्थ को प्राप्त करता है—९३

पदस्थ ध्यान

(चौपाई) तीर्थंकर पदवी परधान। गुण अनन्त नो जाणो थान॥
गुण विचार निज गुण जे लहे। ध्यान पदस्थ सुगुरु इम कहे॥ ९४॥

अर्थ—सद्गुरु ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर पदवी जो सब पदवियों में प्रधान है और अनन्त गुणों का स्थान है ऐसे तीर्थंकर प्रभु के गुणों का ध्यान कर जो ध्याता उन गुणों को निज आत्मा में ग्रहण करता है उसे पदस्थ ध्यान कहते हैं—९४

पिंडस्थ ध्यान

(चौपाई) भेद ज्ञान अन्तरगत धारे। स्व पर स्थिति भिन्न विचारे॥
सकती विचारी शांतता पावे। ते पिंडस्थ ध्यान कहलावे॥ ९५॥

अर्थ—देह पिंड में स्थित आत्मा स्व (आत्मा) और पर (देह) की स्थिति का भिन्न विचार करते हुए इस भेद ज्ञान को अपने अन्तर्गत धारण कर अपने शुद्ध स्वरूप का विचार करते हुए शांति धारण करे। इसे पिंडस्थ ध्यान कहते हैं—९५

रूपातीत ध्यान

(चौपाई) रूप रेख जामे नवि कोई। अष्ट गुणां[३१] करी शिव पद सोई॥
ताकुं ध्यावत तिहां समावे। रूपातीत ध्यान सो पावे॥ ९६॥

३१—सिद्धात्मा के आठ गुण—(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त चारित्र, (४) अनन्त सुख, (५) अक्षय स्थिति, (६) अरूपी, (७) अगुरुलघु, (८) अव्याबाध स्थिति।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—जिनमें किसी भी प्रकार का न रूप है न पौदगलिक आकार है तथा आठ गुणों सहित जो मोक्ष पद को प्राप्त कर चुके हैं ऐसे सिद्धों के गुणों का ध्यान करते हुए उन्हीं में जो तल्लीन हो जाये, वह रूपातीत ध्यान को पाता है—९६

पिंडस्थ ध्यान यानी प्राणायाम करने वाले की मानसिक दशा

(चौपाई) प्राणायाम ध्यान जो कहिये। ते पिंडस्थ ध्यान भवि लहिये॥
मन अरु पवन समागम जानो। पवन साध मन निज घर आनो॥ ९७
अह निस अधिक प्रेम लगावे। जोगानल घट मांहि जगावे॥
अल्प आहार आसन दृढ़ करे। नयन थकी निद्रा परिहरे॥ ९८॥
काया जीव भिन्न करि जाने। कनक उपल नी परे पहिछाने॥
भेद दृष्टि राखे घट मांहि। मन शंका आने कछु नांहि॥ ९९॥
कारज रूप कथे मुख वाणी। अधिक नांहि बोले हित जानी॥
स्वप्न रूप जाने संसार। तन धन जोबन लखे असार॥ १००॥

अर्थ—प्राणायाम ध्यान पिंडस्थ ध्यान को कहते हैं। जो योगी प्राणायाम का साधन करना चाहता है वह मन और पवन का समागम जानकर पवन को साध कर मन को आत्मा में लीन कर दे—९७

रात दिन मन को एकाग्र करने के लिए अधिक लगन से योगानल को अपने घट में जाग्रत करे। अल्पाहार करे, आसन दृढ़ रखे, आंखों से नींद को दूर कर दे—९८

काया और जीव को सोने और पत्थर के समान भिन्न समझ कर शरीर और जीव में भेद दृष्टि रखे, मन को शंका रहित बना दे—९९

मुख से अधिक न बोले। आवश्यकता अनुसार ही बोलने में अपना हित समझे। तन, धन और जोबन को असार समझ कर इस संसार को असार जाने—१००

स्वरोदय सिद्धि की विधि

(चौपाई) श्री जिन वाणी हिये दृढ़ राखे। शुद्ध ध्यान अनुभव रस चाखे॥
विरला सो जोगी जग मांहि। ताकुं रोग सोग भय नांहि॥ १०१॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तेज कान्ति तन में अति वाधे। जो निश्चल चित्त ध्यान आराधे ॥
अल्पाहार तन होय निरोग। दिन-दिन वाधे अधिकोपयोग ॥१०२॥
नासा अग्रभाग दृग धरी। अथवा दोऊ संपुट करि ॥
हिये कमल नवपद[३२] जो ध्यावे। ताकु सहज ध्यान गति आवे ॥१०३॥
माया बीज प्रणव धरि आद। वरण बीज गुण जाने नाद ॥
चढ़ता वरण करे थिर स्वास। लख धुर नाद तणो परकास ॥ १०४॥
प्राणायाम ध्यान विस्तार। कहतां सुरगुरु न लहे पार ॥
ताते नाम मात्र ए कह्या। गुरुमुख जान अधिक जे रह्या ॥ १०५॥
प्राणायाम भूमि दस जानो। प्रथम स्वरोदय तिहा पिछानो ॥
स्वर प्रकाश प्रथम जो जाने। पंच-तत्त्व फुनि तिहा पिछानो ॥ १०६॥
कहुं अधिक अब तास विचार। सुनो अधिक चित्त थिरता धार ॥
स्वर में तत्त्व लखे जब कोई। ताकुं सिद्ध स्वरोदय होई ॥ १०७॥

अर्थ—श्री जिनेश्वर प्रभु की वाणी को अपने हृदय में श्रद्धा पूर्वक धारण करके जो शुद्ध ध्यान के अनुभव रस का आस्वादन करता है सो जोगी इस जगत में कोई विरला ही होता है। ऐसे योगी के रोग, शोक और भय सर्वथा नष्ट हो जाते हैं—१०१

जो शांत और स्थिर चित्त से ध्यान का आराधन करते हैं उनके शरीर में दिन प्रतिदिन तेज और कान्ति की अति वृद्धि होती है। अल्पाहार सेवन से निरोग होता है तथा ध्यान के प्रभाव से दिन प्रतिदिन आत्मा में ज्ञान और दर्शन उपयोग की अधिकाधिक वृद्धि होती जाती है—१०२

जो मनुष्य नासा के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर अथवा दोनों आंखें बन्द करके (मूलासन अथवा पद्मासन में) बैठकर हृदय में नवपद का एकाग्र चित्त से ध्यान करता है उसे सहज ही ध्यान की सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं—१०३

माया बीज (ह्रीं) प्रणव (ॐ) को आदि में रखकर वर्ण, बीज, गुण, तथा नाद का ज्ञान करे। चढ़ते वर्ण में श्वास को स्थिर करे और नाद के प्रकाश को देखे—१०४

३२—हृदय में अष्टदल कमल की स्थापना कर मध्य में ॐ ह्रीं पूर्वक अरिहंत पद की स्थापना करे। अष्टकमलदलों में चारों दिशाओं में क्रमश: ॐ ह्रीं पूर्वक सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पद को स्थापन करे। चारो विदिशाओं में ॐ ह्रीं पूर्वक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप पद की स्थापना करे। सब पदों की स्थापना ॐ ह्रीं पूर्वक करके इन नवपदों का एकाग्र चित्त से ध्यान करे। नवपदमय सिद्धचक्र के दो यहां दिये गये चित्रों से देखें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

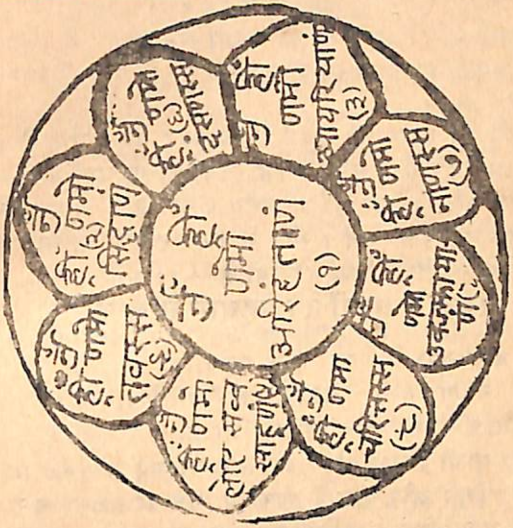

श्री नवपद सिद्धचक्र

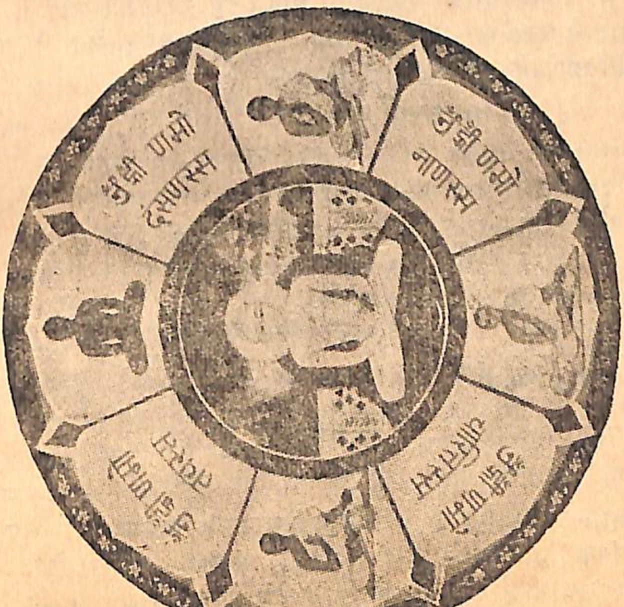

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्राणायाम ध्यान का इतना विस्तार है कि इसको वृहस्पति भी कहने में समर्थ नहीं है। इसलिए मैंने यहां पर नाम मात्र-अति संक्षेप से कहा है। इसका विस्तृत स्वरूप जानने के इच्छुक सम्यग्दृष्टि योगी गुरु के पास से जान कर अपना मनोरथ सिद्ध करे—१०५

प्राणायाम की दस भूमियां हैं उनमें से स्वरोदय प्रथम भूमि है सबसे पहले स्वर प्रकाश का ज्ञान करे फिर उसमें पांच तत्त्वों की पहचान करे—१०६

अब मैं उनका कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं। आप अपने चित्त को अति स्थिर करके ध्यान पूर्वक सुनें। स्वर में जब तत्त्व की पहचान हो जाय तो समझना चाहिये कि स्वरोदय सिद्ध हो गया है—१०७

स्वरों में तत्त्वों की पहचान से लाभ

(अडियल छन्द) दोय सुरा में पांच तत्त्व पहचानिये।
वरण मान आकार फल जानिये॥
इन विधि तत्त्व लखाव साधतां जो लहे।
साची बिसवावीस बात नर सो कहे॥ १०८॥

अर्थ—दोनों (सूर्य और चन्द्र) स्वरों में पांच-पांच तत्त्व चलते हैं, उनको पहिचान कर उन तत्त्वों के रंग, परिमाण, आकार, काल, फल आदि को भी विशेष रूप से जानना चाहिये क्योंकि जो मनुष्य इन तत्त्वों की उपर्युक्त प्रकार से भली भांति साधना कर लेता है अर्थात् भलीभांति समझ लेता है, उसकी कही हुई बात अवश्यमेव सत्य होती है—१०८

तत्त्वों की पहचान

(दोहा) पृथ्वी जल पावक अनिल, पंचम तत्त्व नभ जान।
पृथ्वी जल स्वामी शशि, अपर तीन को भान॥१०९॥
पीत श्वेत रातो वरण, हरित श्याम फुनि जान।
पंच वरण ये पांच के, अनुक्रम श्री पहिचान॥११०॥
पृथ्वी सन्मुख[३३] संचरे, करपल्लव षट् दोय।
समचतुस्र आकार तस, स्वर संगम में होय॥१११॥

३३—ज्ञानार्णव में कहा है कि—

घोणा विवरणमापूर्यं किञ्चिदुष्णं पुरन्दरः।
वहत्यष्टांगुलः स्वस्थः पीतवर्णः शनैः शनैः॥२४॥

अर्थ—नासिका के छिद्र को भली प्रकार भर कर कुछ उष्णता लिए आठ अंगुल बाहर निकलता, स्वस्थ, चपलता रहित, मन्द मन्द बहता ऐसा पुरन्द्र (इन्द्र) जिसका स्वामी है ऐसे (चिन्हों से) पृथ्वी मंडल को जानना—२४

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अधोभाग जल चलत है, षोडश अंगुल मान।
वर्तुल है आकार तस, चन्द्र सरीखो जान ॥११२॥
चारांगुल पावक चले, उर्ध्व दिशा स्वर मांहि।
त्रिकोण आकार तास, बाल रवि सम आहि ॥११३॥
वायु तिरछा चलत है, अष्टांगुल नित मेव।
ध्वजा रूप आकार तस, जानो इन विधि भेव ॥११४॥
नासा संपुट में चले, बाहिर नवि परकास।
शून्य अहे[३४] आकार तस, स्वर युग चलत आकास ॥११५॥
प्रथम पचास[३५] पल दूसरो, चालीस त्रीजो त्रीस।
बीस अरु दस पल चलत है, तत सुर में निश-दिश ॥११६॥

त्वरितः शीतलोऽधस्तात्सितरुक द्वादशांगुलः।
वरुणः पवनस्तज्ञैर्बहनेनावसीयते ॥२५॥

अर्थ—जो शीघ्र बहने वाला हो; कुछ निचाई लिए बहता हो, शीतल हो, उज्ज्वल (शुक्ल) दिप्ति रूप हो तथा बारह अंगुल बाहर आवे ऐसे पवन को वरुण मंडल (जल मंडल) का पवन निश्चय करना—२५

तिर्यग्वहत्यविश्रान्तः पवनाख्यः षडुंगलः।
पवनः कृष्णवर्णोऽसौ उष्णः शीतश्च लक्ष्यतः ॥२६॥

अर्थ—जो पवन सब तरफ तिर्छा बहता हो, विश्राम के बिना निरन्तर बहता रहे, छः अंगुल बाहर आवे, नीला वर्ण हो, उष्ण हो तथा शीत भी हो ऐसे पवन को वायु मंडल पहचानना चाहिए।

बालार्क सन्निभश्चोर्ध्वं सावर्त्तश्चतुरंगुलः।
अत्युष्णो ज्वलनाभिख्यः पवन कीर्तितो बुधैः ॥२७॥

अर्थ—जो उगते हुए सूर्य के समान रक्त वर्ण हो तथा ऊंचा चलता हो, चक्रों सहित फिरता हुआ चले, चार अंगुल बाहर आवे और अति उष्ण हो ऐसा अग्नि मंडल का पवन पंडितों ने कहा है।

चिदानन्द जी महाराज कृत इस स्वरोदय सार तथा इस ज्ञानार्णव में स्वरों के बाहर जाने के नाप प्रमाण में मत भेद है। ज्ञानार्णव में पृथ्वी में श्वास आठ अंगुल प्रमाण कहा है। तथा १२ अंगुल तक श्वास जाता हो तो पृथ्वी तत्त्व समझना चाहिए, ऐसा चिदानन्द जी मानते हैं। इसी प्रकार बाकी के तत्त्वों के परिमाण के विषय में समझना चाहिए।

३४—क्योंकि आकाश शून्य पदार्थ है।

३५—पृथ्वी तत्त्व पचास पल, जल तत्त्व चालीस पल, अग्नि तत्त्व तीस

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

घड़ी अढ़ाई पांच तत, एक एक स्वर मांहि।
अह निश इहूणविध चलत है, यामें संशय नांहि ॥११७॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पांच तत्त्व हैं। इनमें से प्रथम के दो अर्थात् पृथ्वी और जल तत्त्वों का स्वामी चन्द्र है और बाकी के तीन—अग्नि, वायु और आकाश तत्त्वों का स्वामी सूर्य है—१०६

पीला, सफेद, लाल, हरा(नीला)और काला ये पांच वर्ण(रंग)क्रम से पांचों तत्त्वों के जानने चाहियें। अर्थात् पृथ्वी तत्त्व का वर्ण पीला (गले हुए स्वर्ण के समान लाली युक्त पीला)। जल तत्त्व का वर्ण सफेद (चन्द्र समान)। अग्नि तत्त्व का वर्ण लाल (चिंगारी के सम्मान)। वायु तत्त्व का वर्णनीला (हरा) नीला और आकाश तत्त्व का वर्ण काला होता है—११०

जल तत्त्व नीचे की तरफ बहता है तथा नासिका से सोलह अंगुल बाहर जाता है और उसका आकार आधे चंद्रमा के समान गोल होता है—१११

पृथ्वी तत्त्व सामने चलता है तथा नासिका से बारह अंगुल तक दूर जाता है तथा उसका आकार समचौरस होता है—११२

अग्नि तत्त्व ऊपर की तरफ चलता है तथा नासिका से चार अंगुल तक दूर जाता है और इसका आकार त्रिकोणाकार होता है—११३

वायु तत्त्व तिरछा चलता है तथा नासिका से आठ अंगुल दूर जाता है और इसका ध्वजा के समान चंचल आकार होता है—११४

आकाश तत्त्व नासिका के भीतर ही चलता है अर्थात् दोनों स्वरों (सुखमना स्वर) में चलता है तथा इसका आकार कोई नहीं है—११५

प्रत्येक स्वर ढाई घड़ी अर्थात् एक घण्टे तक चला करता है और उसमें उक्त पांचों तत्त्व इस रीति से रात-दिन चला करते हैं—

पल, वायु तत्त्व बीस पल, और आकाश तत्त्व दस पल। इस प्रकार ५०+४० +३०+२०+१० कुल मिला कर १५० पल हुए। सोही ६० पल की एक घड़ी होने से १५० को ६० से भाग देने से २॥घड़ी समय हुआ। २॥घड़ी=१घण्टा होता है। अर्थात् एक मिनिट में २॥ पल होते हैं। ६० विपल=१ पल।
(नोट) सब प्रकार की विस्तृत परिभाषाओं को जानने के लिए देखें परिशिष्ट।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पृथ्वी तत्त्व ५० पल, जल तत्त्व ४० पल, अग्नि तत्त्व ३० पल, वायु तत्त्व २० पल, आकाश तत्त्व १० पल। इस प्रकार दोनों नाड़ियां उक्त प्रथम के चार तत्त्वों के साथ प्रकाशित रहती हैं तथा पांचवां आकाश तत्त्व सुषुम्ना नाड़ी के साथ प्रकाशित रहती है—११६-११७

तत्त्वों के द्वारा वर्ष फल जानने की प्रथम रीति

पृथ्वी तत्त्व

(दोहा) पंच तत्त्व सुर में लखे, भिन्न-भिन्न जब कोय।
काल समय को ज्ञान तस, बरस दिवस नो होय ॥११८॥
प्रथम मेष सक्रांति को, ह्वै प्रवेश जब आय।
तबहि तत्त्व विचारिये, स्वासा थिर ठहराय ॥११९॥
डाबा स्वर में होय जो, महीतणो परकास।
उत्तम जोग बखानिए, नीको फल है तास ॥१२०॥
परजा को सुख ह्वै घनो, समय होय श्रीकार।
धाण होय महीयल घणो, चौपद कुं अतिचार ॥१२१॥
ईति भीति उपजे नहीं जन वृद्धि पण थाय।
इत्यादिक बहुश्रेष्ठ फल, सुख पामे अति राय ॥१२२॥

अर्थ—स्वर में भिन्न-भिन्न पांचों तत्त्वों को देखने का जिस व्यक्ति को ज्ञान हो गया है वह मंडलों में पवन के प्रवेश और निःसरण काल को देखकर वर्ष-फल का विचार करे—११८

(१) जिस समय मेष सक्रांति (वैसाख मास-सूर्य मास) लगे उस समय श्वास को स्थिर करके स्वर में चलने वाले तत्त्व को देखना चाहिए—११९

यदि चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि यह बहुत ही उत्तम योग है जिसका उत्तम फल होगा। समय बहुत ही श्रेष्ठ होगा—१२०

इस वर्ष प्रजा को बहुत सुख प्राप्त होगा और धन की महान् प्राप्ति होगी। पृथ्वी पर अनाज बहुत उत्पन्न होगा। चौपायों को चारे आदि की कमी न रहेगी। अर्थात् घास, चारा तथा अनाज बहुत होगा—१२१

रोग और भय का अभाव होने से सब प्रकार की शान्ति रहेगी मनुष्यों की

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

वृद्धि होगी। राजा भी अत्यन्त सुखी होंगे। इत्यादि बहुत श्रेष्ठ फल होगा—१२२

जल तत्त्व

(दोहा)—चलत तत्त्व जल तिण समय, शशि सुर में जो आय।
ताको फल अब कहत हूं, सुनजो चित्त लगाय ॥१२३॥
मेघ वृष्टि होवे घणी, उपजे अन्न अपार।
सुख होय परजा सहु, चिदानन्द चित्त धार ॥१२४॥
धर्म बुद्धि सब कुं रहे, पुण्य दान थी प्रीत।
आनन्द मंगल उपजे, नृप चाले शुभ नीत ॥१२५॥
शशि सुर में ये जानिये, तत्त्व युगल सुखकार।
तीन तत्त्व आगल रहे, तिन को कहूं विचार ॥१२६॥

(२) अर्थ :—जिस समय मेष सक्रांति (वैसाख मास) लगे उस समय स्वर में यदि जल तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष में वर्षा बहुत होगी। पृथ्वी पर अपरिमित्त अन्न पैदा होगा। सब प्रजा सुखी होगी। सबका चित्त धर्म में अनुरक्त रहेगा अर्थात् राजा और प्रजा धर्म के मार्ग पर चलेंगे। राजा भी नीतिवान होगा, इत्यादि। १२३ से १२५

सारांश यह है चन्द्र स्वर में पृथ्वी और जल तत्त्व चलते हों तो वर्ष सुख देने वाला होगा। यदि ये दोनों तत्त्व सूर्य स्वर में चलते हों तो शुभ फल कम देगा अब बाकी के तीन तत्त्वों (अग्नि-वायु-आकाश) के विषय में वर्ष फल का विचार कहता हूं—१२६

अग्नि तत्त्व

(दोहा)—लगे मेष सक्रांति तब, प्रथम घड़ी स्वर जोय।
जैसो स्वर में तत्त्व बहे, तैसो ही फल होय ॥१२७॥
जो स्वर में पावक चले, अल्प वृष्टि तो होय।
रोग दोख होवे सही, काल कहे सहु कोय ॥१२८॥
देश भंग परजा दुःखी, अग्नि तत्त्व प्रकाश।
दोउ स्वर में होय तो, अशुभ अहे फल तास ॥१२९॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि मेष संक्रांति की प्रथम घड़ी में दोनों स्वरों में से किसी भी स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि वर्षा कम होगी। रोग-पीड़ाएं फैलेंगे, दुर्भिक्ष होगा, देश भंग होगा, तथा प्रजा दुःखी होगी—१२७-१२६

वायु तत्त्व

(दोहा)—वायु तत्त्व स्वर में चलत, नृप विग्रह कछु थाय।
अल्प मेघ बरसे मही, मध्यम वर्ष कहाय ।।१३०।।
अर्द्धा सा अन्न नीपजे, खड थोड़ा-सा होय।
अनिल तत्त्व का इणी परे, मन मांहि फल जोय ।।१३ ।।

अर्थ—यदि उस समय दोनों स्वरों में से किसी भी स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि राजा में कुछ विग्रह होगा, वर्षा थोड़ी होगी, जमाना साधारण होगा, पशुओं के लिए घास चारा थोड़ा होगा, आधा अनाज पैदा होगा इत्यादि फल होगा—१३०-१३१

आकाश तत्त्व

(दोहा)— स्वर मांही जो प्रथम ही, बहे तत्त्व आकाश।
तो ते काल पिछानिये, होय न पूरा घास ।।१३२।।
इन विध थी ए जानिये, तत्त्व स्वर के मांहि।
फल मन में पिण धारिये, या में संशय नाहिं ।।१३३।।

अर्थ–यदि उक्त समय में आकाश तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ेगा। पशुओं के लिए पूरा घास चारा भी न होगा–१३२

इस प्रकार स्वरों में तत्त्वों का फल जानना चाहिए इस बात में किंचित-मात्र भी सन्देह नहीं—१३३

वर्ष फल जानने की दूसरी रीति

चैत्र सुदि प्रतिपदा

१. पृथ्वी तत्त्व

(दोहा) मधु मास सित प्रतिपदा, कर तस लगन विचार।
चलत तत्त्व सुर तिन समय, ताको वर्ण निहार ।।१३४।।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रात समय शशि सुर विषय, मही तत्त्व जो होय।
ता ते सर्व विचारिये, सुखदायक अति होय ॥१३५॥

घरा वृष्टि होवे घरणी, समय होय श्रीकार।
राजा परजा के हिये, हर्ष सन्तोष विचार ॥१३६॥

ईति भीति उपजे नहीं, मोटा भय नावे कोय।
चिदानन्द इम चन्द में, क्षिति तत्त्व फल होय ॥१३७॥

अर्थ—चैत्र सुदि (चांद्रमास) की प्रतिपदा के दिन लगन का विचार कर कौन से स्वर में कौन-सा तत्त्व चलता है उसका विचार करना चाहिए—१३४

यदि प्रात: समय चंद्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो समझना चाहिए कि यह वर्ष अति सुखदायक होगा। वर्षा बहुत होगी। समय उत्तम होगा। राजा और प्रजा को सब प्रकार से हर्ष तथा सन्तोष होगा। भय और कष्ट का सर्वथा अभाव होगा। किसी भी प्रकार का इस वर्ष में उत्पात नहीं होगा—१३५ से १३७

२. जल तत्त्व

(दोहा)—चिदानन्द जो चंद में, प्रात उदक परवेश।
तो ते समय सुभिक्ष अति, वृष्टि देश विदेश ॥१३८॥

शान्ति पुष्टि होवे घरणी, धर्म तरणो अति राग।
आनन्द हिये अति उपजे, दान अर्थ धन त्याग ॥१३९॥

जल धरणी दोऊ बहे, दिवसपति घर आय।
प्रातकाल तो ते बरस, मध्यम समय कहवाय ॥१४०॥

अर्थ—यदि उस दिन प्रात:काल चन्द्र स्वर में जल तत्त्व हो तो उसका फल यह होगा कि इस वर्ष में सब प्रकार से सुभिक्ष होगा। देश-विदेश में उत्तम प्रकार की वृष्टि होगी, शान्ति की बहुत पुष्टि होगी अर्थात् सर्वत्र सब प्रकार से शान्ति का प्रसार होगा तथा लोगों का धर्म के प्रति अति अनुराग होगा। सब प्रजा के मन में सब प्रकार का आनन्द अनुभव होगा एवं खुले और उदार दिल से धन का दान देने के लिए प्रजा त्याग वृत्ति वाली होगी—१३८-१३९

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

विशेष इतना समझना चाहिए कि यदि ये दोनों[३] (पृथ्वी और जल तत्त्व) प्रातःकाल सूर्य स्वर में चलते हों तो इसका इस वर्ष में मध्यम फल होगा। १४०

३. अग्नि, पवन और आकाश तत्त्व

(दोहा) तीन तत्त्व अवशेष जो, सुर में तास विचार।
मध्यम निष्ट कह्यो तिको, पूर्वकथित इम धार ॥१४१॥
राज-भंग परजा दुखी, जो नभ बहे सुर मांहि।
पड़े काल बहु देश में, या में संशय नांहि ॥१४२॥

अर्थ :—यदि इस दिन प्रातःकाल चन्द्र स्वर अथवा सूर्य स्वर में अग्नि वायु और आकाश इन तीन तत्त्वों में से कोई तत्त्व चलता हो तो उनका मध्यम तथा अनिष्ट फल वैसा ही समझना चाहिए जैसा कि हम पूर्व मेष सक्रांति में लिख आये हैं—१४१

विशेष रूप से इतना और समझें कि यदि स्वर में आकाश तत्त्व हो तो राज भंग हो, प्रजा दुःखी हो तथा देश में दुष्काल पड़े। यह बात निःसन्देह है—१४२

४. सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व

(दोहा) स्वर सूरज में अग्नि को, होय प्रातः परवेश।
रोग सोग थी जन बहु, पावे अधिक क्लेश ॥१४३॥
काल पड़े महीतल विषे, राजा चित्त नवि चैन।
सूरज में पावक चलत, इम स्वरोदय बैन ॥१४४॥

अर्थ—प्रातःकाल यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो जानना चाहिए कि जनता रोग और शोक से अत्यन्त पीड़ित होगी। क्लेश पाएगी देश में दुष्काल पड़े, राजा को भी बहुत घबराहट हो अर्थात् यदि सूर्य स्वर में चैत्र सुदि प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल अग्नि तत्त्व चलता हो तो आगामी वर्ष उपर्युक्त कहे अनुसार बीतेगा—१४३-१४४

---

३६ वामायां विचरन्तौ दहन समीरौ तु मध्यमौ कथितौ।
वरुणैन्द्रावितरस्यां तथा विधावेव निर्दिष्टौ ॥३७॥ (ज्ञानार्णवे २९)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

५. सूर्य स्वर में वायु तत्त्व

(दोहा)—नृप विग्रह कछु ऊपजे, अल्प वृष्टि फुनि होय ।
सूरज में इम अनिल को, चिदानन्द फल जोय ।।१४५।।

अर्थ—यदि प्रातःकाल सूर्य स्वर में वायु तत्त्व हो तो राजा लोग परस्पर में लड़ेंगे, वर्षा कम होगी, इत्यादि—१४५

६—सुखमन स्वर

(दोहा)—सुखमन सुर जो ता दिवस, प्रात समय जो होय ।
जोवनहार मरे सही, छत्र भंग फुनि जोय ।।१४६।।
अन्न कहुं थोड़ो ऊपजे, कहुंक थोड़ो नांहि ।
सुखमन सुर को इनि परे, फल जानो मन मांहि ।।१४७।।

अर्थ—यदि चैत्र सुदि (चांद्रमास) की प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल सुखमन स्वर चलता हो तो जानना चाहिए कि इस वर्ष देखने वाले की अपनी मृत्यु होगी तथा छत्र भंग होगा । अन्न कहीं कम उत्पन्न होगा और कहीं पर थोड़ा भी पैदा नहीं होगा अर्थात् बिल्कुल उत्पन्न ही नहीं होगा । सुखमन स्वर में वर्ष फल इस प्रकार समझना चाहिए--१४६-१४७

वर्ष फल जानने की तीसरी रीति

(दोहा)—दुविध रीत जोवण तणी, कही बरस नी एम ।
तीजी आगल जाणजो, धरी हियडे अति प्रेम ।।१४८।।

अर्थ—दो प्रकार से वर्ष फल देखने की रीति हम कह चुके हैं । अब तीसरे प्रकार की रीति आगे कहते हैं सो हृदय में प्रीति रखकर जानें—१४८

माघ सुदि सत्तमी तथा वैसाख सुदि तीज

(दोहा) १. माघ मास सित सप्तमी, फुनि वैसाखी तीज ।
प्रात समय जो जोइये, बरस दिवस को बीज ।।१४६।।
निशापति के गेह में, जल धरणी परवेश ।
यदि होय यह तिण समय, तो सुख देश विदेश ।।१५०।।

१. पृथ्वी तथा जल तत्त्व चन्द्र स्वर में

अर्थ—यदि माघ सुदि ७ अथवा वैसाख सुदि ३ (अक्षय तृतीया) को

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रात:काल चंद्रस्वर में आगामी वर्ष के बीज रूप जल तत्त्व अथवा पृथ्वी तत्त्व चलते हों तो उस वर्ष देश-विदेशों में सब प्रकार के सुख की प्राप्ति हो अर्थात् पूर्व कहे (वर्ष फल जानने की प्रथम व दूसरी रीति) अनुसार श्रेष्ठ फल जानना चाहिए—१४६-१५०

२. अग्नि, वायु, आकाश तत्त्व चन्द्र स्वर में

(दोहा)—अपर तत्त्व निशिनाथ घर, बहे अधम फल जान।

अर्थ—यदि उक्त दिनों में प्रात:काल चन्द्र स्वर में अन्य अर्थात् अग्नि, वायु अथवा आकाश तत्त्वों में से कोई भी तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार अनिष्ट फल समझना चाहिए—१५१

३. पृथ्वी तत्त्व, जल तत्त्व सूर्य स्वर में

उदक मही जो भानु घर, तो मध्यम चित्त आन ॥१५१॥

अर्थ—यदि उक्त दिनों में प्रात:काल सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो तो साधारण फल जानना चाहिए—१५१

४. अग्नि-वायु और आकाश तत्त्व सूर्य स्वर में

(दोहा)—एक अशुभ फुनि एक शुभ, तीनों में जो होय।
सिद्ध होय फल तेह नुं, मध्यम निहचे जोय ॥१५२॥

अर्थ—यदि उक्त दिनों में प्रात:काल सूर्य स्वर में शेष के तीनों (अग्नि, वायु अथवा आकाश) तत्त्वों में से कोई तत्त्व चलता हो तो पूर्व कहे अनुसार उनका अशुभ, मध्यम अथवा शुभ फल जान लेना चाहिए—१५२

५. वर्ष फल में विशेष जानने योग्य

(दोहा)—सहु परीक्षा भाव में, मेष भाव बलवान।
ता दिन तत्त्व निहारि के, फल हिरदे दृढ़ आन ॥१५३॥

अर्थ—यह बात विशेष ध्यान में रखने योग्य है कि इन सब प्रकार के वर्ष फलों में मेष भाव (वैसाख मास का फल) बलवान है इसलिए उस दिन (वैसाख की सक्रांति को) तत्त्वों को जानकर उस दिन से वर्ष फल को अपने हृदय में निश्चय पूर्वक धारण करना चाहिए—१५३

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अपने शरीर, कुटुम्ब, धनादि का विचार

(दोहा)— अब जो जोवणहार नर, तेह नो कहुं विचार।
आप लखी अपने हिये, अपनो करहुं विचार ॥१५४॥

अर्थ—अब मैं देखने वाले मनुष्य के विषय में विचार कहता हूं। अपने स्वर को देखकर अपने मन में अपने लिए फल का निश्चय करें—१५४

चैत्र सुदि एकम से सुदि अष्टमी में स्वर विचार

(दोहा)—चैत्र सुदि एकम दिने, शशि सुर जो नवि होय।
तो तेह ने तिहुं मास में, अति उद्वेग सु जोय ॥१५५॥
मधुमास सित बीज दिन, चले न जो स्वर चंद।
गमन होय परदेश में, तिहां उपजे दुख दन्द ॥१५६॥
चैत्र मास सित तीज कुं, चन्द चले नहीं आय।
तो ताके तन में सही, पित्त ज्वरादिक थाय ॥१५७॥
मरण होय नव मास में, जो सुर जाने तास।
मधु मास सित चौथ को, जो नवि चंद्र प्रकास ॥१५८॥
निशापति स्वर चैत सुदि, पांचम को नवि होय।
राजदण्ड म्होटा हुवे, या में संशय न कोय ॥१५९॥
चैत्र सुदि छठ के दिवस, चंद्र चले नहि जास।
वरस दिवस भीतर सही, विणसे बन्धव तास ॥१६०॥
चले न चंदा चैत सित, सप्तम दिन लवलेश।
तस नर केरी गेहनी, जावे जम के देश ॥१६१॥
तिथि अष्टमी चैत्र सुदि, चन्द बिना जो जोय।
तो पीड़ा अति उपजे, भाग-जोग सुख होय ॥१६२॥
तिथि अष्ट नो चंद्र बिना, दीनो फल दरसाय।
होय शशि शुभ तत्त्व में, तो उल्टो मन भाय ॥१६३॥

अर्थ—(१) यदि चैत्र सुदि एकम के दिन अपना चंद्र स्वर न चलता हो तो जानना चाहिए कि तीन मास में मुझे बहुत चिन्ता और क्लेश उत्पन्न होगा—१५५

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(२) यदि चैत्र सुदि दूज के दिन अपना चंद्र स्वर न चले तो जानना चाहिए कि परदेश में जाना पड़ेगा और वहां भारी दुःख भोगना पड़ेगा—१५६

(३) यदि चैत्र सुदि तीज के दिन अपना चंद्र स्वर न चले तो जानना चाहिए कि शरीर में गरमी, पित्त ज्वर, रक्त ज्वर आदि रोग होंगे—१५७

(४) यदि चैत्र सुदि चौथ को अपना चंद्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि नव मास में अपनी मृत्यु होगी—१५८

(५) यदि चैत्र सुदि पंचमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि अवश्य ही बहुत बड़ा राजदण्ड होगा—१५९

(६) यदि चैत्र सुदि छठ के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष के अन्दर ही भाई अथवा मित्र की मृत्यु होगी—१६०

(७) यदि चैत्र सुदि सप्तमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जान लेना चाहिए कि इस वर्ष में अपनी स्त्री मर जाएगी—१६१

(८) यदि चैत्र सुदि अष्टमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो जानना चाहिए कि इस वर्ष में मुझे कष्ट और पीड़ा अधिक होगी अर्थात् भाग्य योग से ही सुख की प्राप्ति हो सकेगी—१६२

इस प्रकार चैत्र शुक्ल पक्ष की आठ तिथियों में अपने चन्द्र स्वर के बिना फल बतला दिया है। अब यदि उक्त दिनों में अपने चन्द्र स्वर में पृथ्वी अथवा जल तत्त्व आदि शुभ तत्त्व चलते हों तो उत्तम एवं श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है—१६३

पांच तत्त्वों में कार्य सम्बन्धी प्रश्न विचार

(दोहा)—तत्त्ववान के कहत हूं, प्रश्न तणौ परसंग।
इन विध हिये विचार के, कथिये[३६] वचन अभंग ॥१६४॥

३६—उदयश्चन्द्रेण हितः सूर्येणास्तं प्रशस्यते वायोः।
रविणोदये तु शशिना, शिवमस्तमनं सदा नृणाम् ॥३९॥
सितपक्षे रव्युदये प्रतिपद्दिवसे समीक्ष्यते सम्यक्।
शस्तेतर प्रचारौ वायोर्यत्नेन च विज्ञानी ॥४०॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—पवन का उदय चन्द्रमां के स्वर में शुभ है, सूर्य अस्त स्वर में प्रशस्त

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जल धरणी के जोग में, प्रश्न करे जो कोय।
निशानाथ पूरण बहत, तस कारज सिध होय ॥१६५॥

अर्थ—अब में तत्त्व में प्रश्न सम्बन्धी विचार को कहता हूं सो इस प्रकार मन में निश्चय कर पृच्छक के फल के विषय में उत्तर दें—१३४

(१) यदि चन्द्र स्वर में पृथ्वी[37] तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो और उस समय कोई कार्य के लिए प्रश्न करे तो कह देना चाहिये कि तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा—१६५

(दोहा)—पवन अगन आकाश को, जोग शशि स्वर मांहि।
होय प्रश्न करतां थका, तो कारज सिद्धि नांहि ॥१६६॥
क्षिति उदक थिर काजकुं, उडुगणपति सुरमांहि।
तत्त्व युगल ये जानिये, चर कारज कुं नांहि ॥१६७॥
वायु अगन नभ तीन ये, चर कारज परधान।
तत्त्व हिये में जानिये, उदय होत सुर भान ॥१६८॥

अर्थ—(२) यदि चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व, अग्नितत्त्व अथवा आकाश तत्त्व हो और उस समय आकर कोई किसी कार्य के लिए प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि कार्य कदापि सिद्ध न होगा—१६६

(३) स्मरण रखना चाहिये कि चन्द्र स्वर में जल तत्त्व तथा पृथ्वी तत्त्व

है। यदि सूर्य स्वर से उदय हो और शशि स्वर से अस्त हो तो जीवों को सदा कल्याणकारी है—३९

पवन के प्रचार को शुक्ल पक्ष में सूर्य के उदय में प्रतिपदा के दिन विज्ञानी सम्यक् प्रकार से यत्नपूर्वक शुभाशुभ दोनों को विचारे—४०

३७—नेष्ठ घटने समर्था राहु-ग्रह-काल-चन्द्र सूर्याद्याः।
क्षिति वरुणौ त्वमृतगतौ समस्त कल्याणदौ ॥४६॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—पृथ्वी मंडल (तत्त्व) और वरुण (जल) मंडल ये दोनों पवन अमृत-गति (चन्द्र) स्वर में बहें तो राहु, ग्रह, काल, चन्द्र, सूर्य आदि अनिष्ट करने में समर्थ नहीं होते। ये दोनों मंडल समस्त कल्याणों को देने वाले हैं।—४६

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

स्थिर कार्य के लिए अच्छे होते हैं परन्तु चर कार्यों के लिये अच्छे नहीं होते—१६७

(४) वायु तत्त्व, अग्नि तत्त्व, आकाश तत्त्व ये तीनों यदि सूर्य स्वर में हों तो चर कार्य के लिये अच्छे होते हैं किन्तु चन्द्र स्वर में अशुभ फलदाता हैं—१६८

पांच तत्त्वों में रोगी सम्बन्धी प्रश्नों का विचार

(दोहा)—रोगी केरो प्रश्न नर, जो कोउ पूछे आय।
ताकुं स्वास विचार के, इम उत्तर कहवाय ॥१६९॥
शशि सुर में धरणी चलत, पूछे तिस दिसि मांहि।
ताते निहचे करि कहो, रोगी विणसे नांहि ॥१७०॥
चन्द्र बन्द सूरज चलत, पूछे डाबी ओड़।
रोगी के परसंग तो, जीवे नहिं विधि कोड़ ॥१७१॥
पूरण स्वर सुं आय के, पूछे खाली मांहि।
तो रोगी कुं जाणजो, साता होवे नांहि ॥१७२॥
खाली सुर सुं आयके, बहते सुर में बात।
जो को रोगी की कहे, तो तस नांहिज घात ॥१७३॥

अर्थ—यदि[३८] कोई नर रोगी सम्बन्धी प्रश्न आपके पास आकर पूछे तो अपने स्वर का विचार कर निम्न प्रकार से उत्तर दें—१६९

(१) यदि कोई पुरुष आकर रोगी सम्बन्धी प्रश्न करे उस समय यदि आपके चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व चल रहा हो और प्रश्न कर्त्ता भी उस भरे[३९] स्वर की

३८—ज्ञातुर्नाम प्रथमं पश्चाद्यद्यातुरस्य गृह्णाति।
दूतस्तदेष्ट-सिद्धिस्तद्वयस्ते स्याद्विपर्यस्ता ॥४८॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—कोई प्रश्नकर्त्ता दूत यदि प्रथम ही ज्ञाता का नाम लेकर तत्पश्चात् आतुर (रोगी) का नाम ले तो इष्ट की सिद्धि होती है और इसके विपरीत रोगी का नाम पहले और ज्ञाता का पीछे ले तो इष्ट की सिद्धि नहीं होती (विपर्यस्त है)

३९—जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा को पूर्ण अथवा भरी दिशा कहते हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तरफ से प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि रोगी नहीं मरेगा—१७०

(२) आपका चन्द्र स्वर न चलता हो और सूर्य स्वर चलता हो उस समय प्रश्न कर्त्ता यदि बाईं[४०] तरफ से प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि रोगी किसी प्रकार भी नहीं जी सकता—१७१

(३) कोई व्यक्ति पूर्ण (भरी) दिशा में से आकर खाली दिशा में रोगी सम्बन्धी प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि रोगी रोग मुक्त नहीं होगा—१७२

(४) यदि कोई खाली स्वर से वहते स्वर की तरफ आकर प्रश्न करे तो रोगी अवश्य अच्छा हो जायगा—१७३

रोगों का कारण वात, पित्त, कफ

(दोहा)—वात पित्त कफ तीन ये, भयो पिण्ड त्रय जोग।
सम से सुख होय देह में, विषम होत होय रोग ॥१७४॥
वाय चौरासी पिण्ड में, पित्त पच्चीस प्रकार।
कफ त्रय भेद बखानिये, द्वादश शत चित्त धार ॥१७५॥
वायु निवास उदर विषय, स्वामी है तस सूर।
फुनि शत धमनी मांहि ते, रहत सदा भरपूर ॥१७६॥
खन्ध मांहि फुनि जानजो, पित्त तणो नित्त वास।
जठराग्नि में संचरत, दिवानाथ पति तास ॥१७७॥
नाभि कमल थी वाम दिस, कर पल्लव त्रय जान।
नाड़ी युगल है कफ तणी, रही हिये में आन ॥१७८॥
शशि स्वामी तस जानजो, यह विवहारी बात।
निश्चय थी लख एक में, तीनों आय समात ॥१७९॥
अपनी-अपनी ऋतु विषय, वात पित्त कफ तीन।
ज़ोर जनावत देह में, तस उपचार प्रवीन ॥१८०॥
वैद्यक ग्रन्थ नहीं लख्यो, तिन का अधिक प्रकार।
मूल तीन सुं होत हैं, रोग अनेक प्रकार ॥१८१॥

४०—जिधर का स्वर चलता हो उस दिशा के सिवाय सब दिशायें खाली मानी गई हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अपने अमल विसार के, दूजे के घर जाय ।
रोग कफादिक थी जुई, सन्निपात कहवाय ॥१८२॥

रोम-रोम में जगतगुरु, पौरण दो दो रोग ।
भाख्या प्रवचन मांहि ते, अशुभ उदय तस भोग ॥१८३॥

अर्थ—यह शरीर वात, पित्त, कफ इन तीनों के योग से बना है। इन तीनों के सम रहने से शरीर निरोग रहता है जिससे जीव को सुख का अनुभव होता है तथा इन तीनों के विषम हो जाने से शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है—१७४

इस शरीर में चौरासी प्रकार की वात है, पच्चीस प्रकार का पित्त है तथा तीन प्रकार का कफ होता है इन तीनों के कुल मिला कर ११२ भेद होते हैं—१७५

वायु का निवास उदर में है और उसका स्वामी सूर्य है। यह सौ धमनियों में सदा भरपूर रहता है—१७६

पित्त का निवास कन्धों में है, जठराग्नि में संचरण करता है तथा इसका स्वामी भी सूर्य है—१७७

नाभी से तीन अंगुल वाम दिशामें दो नाड़ियां कफ की हैं जो हृदय तक आती हैं—१७८

कफ का स्वामी चंद्र है, यह तो हुई व्यवहार की बात। निश्चय से तो एक में ही तीनों का समावेश हो जाता है—१७९

अपनी-अपनी ऋतु में वात, पित्त और कफ अपना-अपना ज़ोर दिखलाते हैं इसके उपचार में प्रवीण जो वैद्यक ग्रंथ हैं उनसे सविस्तार जान लेना चाहिए। यहां विस्तार भय से इनके अधिक प्रकार नहीं लिखे। इन मूल वात, पित्त और कफ तीनों से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं—१८०-१८१

कफादिक अपना अपना स्थान छोड़ कर जब दूसरे के घर जाते हैं तब जो रोग होता है उसका नाम सन्निपात है—१८२

सर्वज्ञ प्रभु ने प्रवचन में एक-एक रोम में पौने दो-दो रोग बतलाये हैं। अशुभ कर्म के उदय से जीव को इन रोगों को भोगना पड़ता है—१८३

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

रोग सम्बन्धी प्रश्न

(दोहा)—प्रश्न करे रोगी तणो, जैसे सुर में आय।
सुर फुणि तत्त्व विचार के, तैसा रोग कहाय ॥१८४॥
अपने[४१] स्वर में अपना, तत्त्व चले तिण वार।
तो रोगी के पिण्ड में, रोग एक निर्धार ॥१८५॥
सुर में दूजा सुर तणो, प्रश्न करत तत होय।
मिश्र भाव से रोग की, उत्पत्ति तस जोय ॥१८६॥

अर्थ—यदि कोई आकर रोगी को क्या रोग है ऐसा प्रश्न करे तो स्वर में तत्त्व का विचार करके जैसा स्वर और तत्त्व हो वैसा रोग कहना चाहिए—१८४

(१) यदि अपने स्वर में अपना तत्त्व चलता हो तो रोगी को एक रोग है, ऐसा कहना चाहिए। जैसे चंद्र स्वर में यदि पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि रोगी को एक रोग है और वह कफ के प्रकोप से हुआ है। यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि रोगी पित्त जनित एक रोग से पीड़ित है। यदि स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिये कि रोगी वायु जनित एक रोग से पीड़ित है—१८५

(२) यदि दूसरे स्वर में दूसरा तत्त्व (विपरीत तत्त्व) चलता हो उस समय कोई रोगी के रोग सम्बन्धी आकर प्रश्न पूछे तो उत्तर देना चाहिए कि मिश्र भाव से रोग है। अर्थात यदि चंद्र स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कहना चाहिये कि कफ और पित्त मिश्रित रोग है। यदि चंद्र स्वर में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि कफ और वायु मिश्रित रोग है। यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलते हों तो कह देना चाहिए कि कफ और

४१—पूर्णे वरुणे प्रविशति यदि वामा जायते क्वचित्पुण्यैः।
सिद्ध्यत्यचिन्तितान्यपि कार्याण्यारभ्यमाणापि ॥५१॥

अर्थ—जल तत्त्व का पवन पूर्ण होकर प्रवेश करते हुए यदि किसी पुण्योदय से बांई नाड़ी चले तो अनचिन्ते कार्य के प्रारंभ करने में भी सिद्धि होती है। अर्थात् महाशुभ तथा कल्याणकारी है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पित्त के प्रकोप जनित रोग है। इत्यादि—१८६

खाली तथा भरे स्वर में प्रश्न विचार

(दोहा)— पूरण स्वर थी आय के, पूछे पूरण मांहि।
सकल काज संसार के, पूरण संशय नांहि ॥१८७॥
खाली स्वर में आय के, पूछे खाली मांहि।
जो-जो काज जगत तणो, सो सो होवे नांहि ॥१८८॥
खाली सुर से आय के, पूछे पूरण मांहि।
सकल काज संसार के, पूरण संशय नांहि ॥१८९॥
पूछे पूरण सुर तजी, खाली सुर की ओड़।
प्रश्न तास निष्फल कहो, सफल नहीं विधि कोड़ ॥१९०॥

अर्थ—यदि कोई पुरुष पूर्ण स्वर से आकर पूर्ण स्वर की ही तरफ से प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य अवश्य पूर्ण होगा—१८७

यदि कोई पुरुष खाली स्वर से आकर खाली स्वर की तरफ से ही प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य कदापि सिद्ध न होगा—१८८

यदि कोई पुरुष खाली स्वर की तरफ से आकर पूर्ण स्वर की तरफ प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि तुम्हारा कार्य निःसन्देह सिद्ध होगा—१८९

यदि कोई पुरुष पूर्ण स्वर की तरफ से आकर खाली स्वर की तरफ प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि करोड़ों उपाय करने पर भी तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं होगा—१९०

वार के अनुसार स्वरों में तत्त्व

(दोहा) — प्रातःकाल बुधवार को, क्षिति तत्त्व शुभ जान।
सोमवार जल शुक्र कुं—तेज हिये में आन ॥१९१॥
गुरुवार वायु भलो, शनि दिवस आकाश।
चलत तत्त्व इम काय में, पूरब रोग[४२] विनाश ॥१९२॥

४२—रोग सम्बन्धी कुछ और विशेष बातें:—
दक्षिणेन यदा वायुर्दूतो रौद्राक्षरो वदेत्।
तदा जीवति जीवोऽसौ चंद्रे समफलं भवेत् ॥३१८॥ (शिव स्वरोदय)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि प्रात:काल बुधवार को पृथ्वी तत्त्व, सोमवार को जल तत्त्व, शुक्रवार को अग्नि तत्त्व चलता हो तो उसे शुभ फलदायी जानना चाहिए—१९१

यदि गुरुवार को वायु तत्त्व और शनिवार को आकाश तत्त्व प्रात:काल चलता हो तो जान लेना चाहिए कि शरीर में जो कोई पहले का रोग है वह अवश्य मिट जायेगा—१९२

चन्द्र स्वर में कार्य विचार

(दोहा)—अपने शशि सुर मांहि अब, करन-जोग जो काम।
तस विचार अब कहत हूं, सुखदायक अभिराम ॥१९३॥
देवल श्री जिनराज नो, नवो निपावे कोय।
खात महूरत अवसरे, चन्द्र-योग तिहां जोय ॥१९४॥
अमी-स्रवन शशि जोग में, अरुण द्युति थिर होय।
करत प्रतिष्ठा बिम्ब की, अति प्रभाव तस जोय ॥१९५॥

अर्थात्—यदि वायु नाड़ी के दक्षिण की ओर बहती हो और दूत के मुख से भयानक वचन निकलें तो वह प्राणी जीवेगा। यदि चन्द्र स्वर हो तो सम फल होगा।

प्रश्ने चाधः स्थितो जीवो, नूनं जीवोहि जीवति।
ऊर्ध्वं चारस्थितो जीवो, जीवो याति यमालयम् ॥३२१॥

(शिव स्वरोदय)

अर्थ—यदि प्रश्न के समय दूत अधोभाग में स्थित हो तो वह रोगी निश्चय से जीवे। यदि दूत ऊर्ध्व भाग में स्थिति हो तो जीव की अवश्य मृत्यु हो।

विपरीताक्षर प्रश्ने रिक्तायां पृच्छको यदि।
विपर्ययं च विज्ञेयं विषमस्योदय सति ॥३२२॥

(शिव स्वरोदय)

यदि विषम नाड़ी (सुखमना) का उदय हो और प्रश्न कर्त्ता रिक्त नाड़ी से ऐसा प्रश्न करे जिसके अक्षर विषम(१,३,५,७,९)हों तो विपरीत फल जानना।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तखत मूलनायक प्रभु, बैठावे तिरण वार।
जिनघर कलश चढ़ावतां, चन्द्र योग सुखकार॥ १९६॥
पौषधशाल निपावतां, दानशाल घर हाट।
महल दुर्ग गढ़ कोट नो, रचित सुघट धुर घाट॥ १९७॥
संघ-माल आरोपतां, करतां तीरथ-दान।
दीक्षा मंत्र बतावतां, चन्द्र जोग परधान॥ १९८॥
घर नवीन पुर गांव में, करतां प्रथम प्रदेश।
वस्त्राभूषरण संग्रहत, ले अधिकारे देश॥ १९९॥
योगाभ्यास करत सुधि, औषध भेषज मीत।
खेती बाग लगावतां, करतां नृप सुं प्रीत॥ २००॥
राज तिलक आरोपतां, करतां गढ़ परवेश।
चन्द्र जोग में भूपति, विलसे सुख सुदेश॥ २०१॥
राज सिंहासन पग धरत, करत और थिर काज।
चन्द्र जोग शुभ जानजो, चिदानन्द महाराज॥ २०२॥

(चौपाई) मठ देवल अरु गुफा बनावे। रतन धातु कुं घाट घड़ावे॥
इत्यादिक जग में बहु ये काम। चन्द्र योग में अति अभिराम॥२०३॥
चन्द्र जोग थिर काज प्रधान। कह्यो तास किंचित अनुमान॥

अर्थ—चन्द्र स्वर में जो-जो कार्य करने चाहिएं अब मैं उनका विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं। इस स्वर में निम्न प्रकार के कार्य करने से शुभ, सुखदाई और शान्तिदाता होते हैं—१९३

शान्त और स्थिर कार्यों को चन्द्र स्वर में करना चाहिये जैसे कि नये जिन-मन्दिर का बनाना, मन्दिर की नीव को खुदवाना चन्द्र स्वर के योग में करना चाहिये—१९४

चन्द्र योग में अमृत-स्राव तथा सूर्य के समान द्युति होती है। ऐसे समय में यदि जिन-बिम्ब की प्रतिष्ठा की जावे तो वह विश्व को बहुत प्रभावशाली और चमत्कारी होती है—१९५

मूलनायक की मूर्ति को गद्दी (गादी) पर विराजमान करना, मन्दिर पर

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ध्वजादंड तथा कलश का चढ़ाना चन्द्र स्वर में सुखकारी है—१९६

पौषधशाला (उपाश्रय), धर्मशाला, पाठशाला, दानशाला, घर, दुकान, महल, गढ़, किले और कोट का बनवाना, सुदृढ़ घाट बनवाना—१९७

संघ को माला का पहनाना, तीर्थ यात्रा करना, दान करना, दीक्षा देना, मंत्र बतलाना, इन सब में चन्द्र योग (चन्द्र स्वर) प्रधान है—१९८

नगर अथवा गांव में प्रवेश करना, नवीन घर में प्रथम प्रवेश करना, नये कपड़ों तथा गहनों को बनवाना तथा खरीदना, नये कपड़ों तथा गहनों को पहनना, देश को अपने अधिकार में लेना ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहिएं—१९९

योगाभ्यास करना, दवाई का बनाना, मित्रता करना, खेती करना, बाग लगाना, राजा आदि बड़े व्यक्तियों से मित्रता करना इत्यादि सर्व कार्य चन्द्र स्वर में करने चाहियें—२००

राजगद्दी पर बैठना या बिठलाना, किले में प्रवेश करना, दुर्ग में आकर प्रवेश करना, ये सब चन्द्र स्वर में करने चाहिये इससे राजा तथा प्रजा सब प्रकार से सुख और आनन्द का उपभोग करते हैं—२०१

राज सिंहासन पर चढ़कर बैठते समय तथा अन्य स्थिर कार्य करते समय—जैसे कि शान्ति कर्म करना, दीर्घ कार्य करना, विवाह करना, स्त्री संग्रह करना, अपने स्वामी के दर्शन करना, व्यापार तथा धन संग्रह करना, नौकरी करना, खेती में बीज बोना, शान्ति तथा स्थिरता के लिए मंत्र साधन करना, जपादि करना, सर्व बांधवों का दर्शन करना, जल छोड़ना तथा बांधना, रस साधन करना, उत्तम कार्य करना, कला सीखना, सेवा करना, चाकरी करना, शहर बसाना, नया स्थान, मकान, दुकान, कारखाना बनाना, इत्यादि। ये सब कार्य चन्द्र स्वर में करने से शुभ फलदायी होते हैं जिससे सदा प्रसन्नता प्राप्त होती है—२०२

मठ बनाना, मन्दिर बनाना, गुफा बनाना, रत्नों और सोने, चांदी आदि के अलंकार बनवाना इत्यादि सब स्थिर कार्यों को जैसे कि—खजाना बनाना, बावड़ी, कुंआ, तालाब, नहर आदि खुदवाना, गीतादि का प्रारम्भ करना तथा इनका अभ्यास करना, नृत्य प्रारम्भ करना, लक्ष्मी का स्थापन करना, कष्ट

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

निवारण तथा शोक दूर करना, विषाद-विवाद मिटाना, ज्वर के अन्त में, व्याधि शान्ति में तथा सब शुभ कार्यों में, तीर्थ यात्रा, मुसाफरी इत्यादि जो-जो सर्व कार्य कहे हैं अथवा जो नहीं भी कहे किन्तु यदि वे स्थिर और शान्त हों, उन्हें चाहे रात्रि हो अथवा दिवस, चन्द्र स्वर में करने चाहिएं क्योंकि इन कार्यों में चन्द्र स्वर प्रशस्त है—२०३

चन्द्र योग (चन्द्र स्वर) स्थिर कार्यों के लिए प्रधान है। यहां पर हमने इस का थोड़ा सा वर्णन कर दिया है—२०४

सूर्य स्वर में कार्य विचार

(चौपाई) स्वर सूरज में करिये जेह। सुनो श्रवण दे कारज तेह ॥ २०४ ॥
विद्या पढ़े ध्यान जो साधे। मंत्र साध अरु देव आराधे ॥
अरज़ी हाकम के कर देवे। अरि विजय का बीड़ा लेवे ॥ २०५ ॥
विष अरु भूत उतारण जावे। रोगी कुं जो दवा खिलावे ॥
विघन हरण शान्ति जल नाखे। जो उपाय कुष्टि कुं भाखे ॥२०६ ॥
गज बाजी वाहन हथियार। लेवे रिपु विजय चित्त धार ॥
खान पान कीजे असनान। दीजे नारी को ऋतु दान ॥ २०७ ॥
नया चोपड़ा लिखे लिखाये। वणिज करत कछु वृद्धि थावे ॥
भानु जोग में ये सहु काज। करत लहे सुख चैन समाज ॥ २०८ ॥
भूपति दक्षिण स्वर में कोई। युद्ध करण जावे सुन जोई ॥
रण संग्राम मांहि जस पावे। जीत करि पाछो घर आवे ॥ २०९ ॥
सागर में जो पोत चलावे। वंछित द्वीप वेगे ते पावे ॥
वैरी भवन गवन पग दीजे। भानु जोग में तो जस लीजे ॥ २१० ॥
ऊंट महीष गो विक्रय करतां। साट वदत सरिता जल तरतां ॥
करज़ द्रव्य काहु कुं देतां। भानु जोग शुभ अथवा लेतां ॥ २११ ॥
इत्यादिक चर कारज जेते। भानु जोग में करिये तेते ॥
लाभालाभ विचारी कहिये। नहितर मन में जानी रहिये ॥ २१२ ॥
विवाह दान इत्यादिक काज। सौम्य चन्द्र योगे सुखसाज ॥
क्रूर कार्य में सूर परधान। पूर्व कथित मन में ते जान ॥ २१३ ॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—अब सूर्य स्वर में जो जो कार्य करने चाहियें उनका संक्षेप से वर्णन करता हूं। पाठक गण कान लगाकर सुनें—२०४

विद्या[४३] सीखना, विद्या प्रारम्भ करना, ध्यान साधना, मंत्र सिद्ध करना, देवता का आराधन करना, राजा अथवा हकिम को अर्जी देना, वैरी से मुकाबिला करना, वकालत का मुखतार नामा लेना—२०५

सर्पादि का विष तथा भूतादि का उतारना, रोगी को दवा देना, विघ्न की शान्ति के लिए शान्ति जल डालना, कोढ़ी का इलाज करना और कष्टवाली स्त्री का उपाय करना—२०६

हाथी, घोड़ा, बग्घी, मोटर, गधा, तख्त, रथ, पालकी, बैलगाड़ी, शस्त्रादि बेचना। शत्रु विजय का विचार करना, भोजन करना, स्नान करना, स्त्री को ऋतुदान देना—२०७

नया बही खाता लिखना लिखवाना, व्यापार के कार्य में वृद्धि होना। ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने से सब प्रकार से सुख और शांति प्राप्त होते हैं—२०८

राजा शत्रु से लड़ाई करने के लिए यदि सूर्य स्वर में जावे तो लड़ाई में यश को प्राप्त करे तथा विजय प्राप्त करके वापिस अपने घर आवे—२०९

सूर्य स्वर में यदि जहाज़, अगन बोट, नाव, बजरा इत्यादि नदी अथवा समुद्र में चलावे तो वांछित द्वीप में शीघ्र सुरक्षित पहुंच जावेगा। अपने शत्रु के घर में जाकर यदि सूर्य स्वर चलते समय प्रवेश करोगे तो विजय तथा यश की प्राप्ति होगी—२१०

ऊंट, गाय, गधा, घोड़ा इत्यादि पशुओं को बेचना, भट्टा करना, तालाब, नदी, समुद्र आदि में तैरना, किसी को रुपया आदि उधार देना अथवा लेना। ये सब कार्य सूर्य स्वर में करने चाहियें—२११

४३—सूर्य चर तथा क्रूर कार्यों में सिद्धिदायक है तथा चन्द्र शान्त एवं स्थिर कार्यों में सिद्धिदायक है। अतः विद्या साधन, ध्यान, मंत्र इत्यादिक शांत और स्थिर कार्यों के लिये चन्द्र स्वर में तथा क्रूर और चर कार्यों के लिए सूर्य स्वर में करने चाहियें। इसी प्रकार अन्य कार्यों में समझ लेना चाहिये।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

वाद-विवाद करना, दूत का काम करना, शस्त्रादि युद्ध कला का अभ्यास करना, जुआ खेलना, चोरी करने जाना, कल-मशीनरी आदि का काम सीखना, लेखन लिपि सीखना, यंत्र-मंत्र-तंत्र का क्रूर कार्यों के लिये साधन करना। माल की खरीद-फरोखत (क्रय-विक्रय) करना, मारण, उच्चाटन(तथा मोहन-स्तम्बन) के प्रयोग करना, स्त्री से आलिंगन करना, मित्रता जोड़ना, स्त्री को वश करना, मोहन, स्तम्बन, उच्चाटन करना, भूत निकालना, वैतालादि डाकिनी, शाकिनी, छल, छिद्र, दृष्टि दोष, मुट्ठी, देव, दानव आदि सर्व दोष दूर करना। इत्यादि जितने भी चर और क्रूर कार्य हैं वे सब सूर्य स्वर में करने चाहिये। लाभालाभ का विचार कर पूछने वाले को कहना चाहिये, नहीं तो मन में विचार कर चुप रहना चाहिये—२१२

तात्पर्य यह है कि विवाह दानादि सौम्य कार्य चन्द्र स्वर में करने से सुखदायी होते हैं तथा क्रूर और चर कार्यों में सूर्य स्वर प्रधान है। हम जो पूर्व में वर्णन कर आये हैं उनको अच्छी तरह समझ कर मन में धारण करना चाहिये और मनन चिन्तन पूर्वक शुभाशुभ का निर्णय करे। जैसे कि घोड़ा, ऊंट, बैलगाड़ी, पालखी, रथ, मोटरगाड़ी आदि जिन सवारियों का वर्णन किया है उन्हें बेचना सूर्य स्वर में और खरीद करना चाहिये चन्द्र स्वर में। क्रूर कार्य के लिये मंत्र-यंत्र-तंत्र आदि साधन करने हों तो सूर्य स्वर में और नवकार मंत्रादि शांतिदायक मंत्रों का साधन तो शान्त स्वर अर्थात् चन्द्र स्वर में ही करना चाहिये अर्थात् जो चर और क्रूर कार्य कहे हैं अथवा नहीं भी कहे वे सब सूर्य स्वर में सिद्ध होते हैं—२१३

(दोहा) चन्द्र[४४] जोग थिर काज कूं, उत्तम महा बखान।
भानु जोग चर काज में, श्रेष्ठ अधिक मन आन॥ २१४॥

४४—संग्राम-सुरत - भोजन विरुद्धकार्येषु दक्षिणेष्टास्यात्।
अभ्युदय - हृदयवांछित - समस्त - शस्तेषु वामैव॥ ४५॥

अर्थ—संग्राम, कामक्रीड़ा, भोजनादि विरुद्ध कार्यों में तो दाहिनी नाड़ी श्रेष्ठ है तथा अभ्युदय और मनोवांछित समस्त शुभ कार्यों में बाईं नाड़ी शुभ है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—सारांश यह है कि चन्द्र स्वर स्थिर कार्य के लिए उत्तम है तथा सूर्य स्वर चर कार्य के लिये अति उत्तम है—२१४

सुखमना स्वर में कार्य विचार

दोहा—सुखमन चलत न कीजिये, चर थिर कारज कोय ।
करत काम सुखमन विषय, अवस हानि कछु होय ।। २१५ ।।
भवन प्रतिष्ठादिक सहु, वरजित सुखमन मांहि ।
ग्रामान्तर जावा तणो, पगला भरिये नांहि ।। २१६ ।।
दुःख दोहग पीड़ा लहे, चित में रहे क्लेश ।
चिदानन्द सुखमन चलत, जो को जाय विदेश ।। २१७ ।।
कारज की हानि होवे, अथवा लागे बार ।
अथवा मित्र मिले नहीं, सुखमन भाव विचार ।। २१८ ।।
श्वास शीघ्र अति पालटे, छिन चन्द्र छिन सूर ।
ते सुखमन सुर जानिये, नाम अनिल भरपूर ।। २१९ ।।
सुखमन सुर संचार में, कीजे आतम ध्यान ।
रुद्ध गति एहि नाक की, लहिये अनुभव ज्ञान ।। २२० ।।
आतम तत्त्व विचारणा, उदासीनता भाव ।
भावत सुर सुखमन विषय, होवे ध्यान जमाव ।। २२१ ।।
चर थिर तीजी यह कही, द्विस्वभाव की बात ।
इन अनुक्रम थी आरंभी, कारज सफल[४५] कहात ।। २२२ ।।

अर्थ—जब सुखमन स्वर चलता हो तब चर तथा स्थिर कोई भी कार्य न करें । क्योंकि सुखमन स्वर में कार्य करने से अवश्य हानि होती है—२१५

मकान, मंदिर आदि की प्रतिष्ठा इत्यादि कार्य सुखमन स्वर में नहीं करने चाहियें और न ही ग्रामान्तर (परदेश) जाना चाहिये—२१६

सुखमन स्वर में जो कोई विदेश जायेगा वह दुःख, दुर्भाग्य, कष्ट, और पीड़ा पायेगा तथा उसके चित्त में क्लेश ही बना रहेगा—२१७

४५—सुखमना नाड़ी से श्वास चलते समय किसी को भी शाप अथवा वरदान देने से वह सफल होता है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सुखमन[४६] स्वर में विदेश के लिए प्रस्थान करने पर कार्य की हानि होगी अथवा कार्य होने में विलम्ब होगा अथवा मित्र नहीं मिलेगा, यात्रा में मृत्यु, हानि

४६—कौन-सा कार्य कब करने से सफलता मिलेगी ?

चन्द्र स्वर (बायां स्वर) में पृथ्वी, जल अथवा दोनों तत्त्वों में, सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार को निम्नलिखित कार्यों में सफलता प्राप्त हो—

(१) पौष्टिक कार्य, (२) मैत्री करण, (३) प्रभुदर्शन, (४) योगाभ्यास, (५) दिव्यौषध सेवन, (६) रसायन कार्य, (७) आभूषण धारण, (८) नये वस्त्र पहनना, (९) विवाह, (१०) दान, (११) गृह प्रवेश, (१२) गृहारंभ, (१३) जलाशय निर्माण, (१४) बाग लगाना, (१५) धर्मानुष्ठान, (१६) बंधु मित्र मिलन, (१७) ग्राम-नगर निर्माण, (१८) दूर गमन यात्रा, (दक्षिण-पश्चिम) (१९) पानी पीना, (२०) पैशाब करना।

(ख) सूर्य स्वर (दायां स्वर) में पृथ्वी, जल अथवा दोनों तत्त्वों में, मंगल, शनि, रविवार को निम्नलिखित कार्यों में सफलता प्राप्त हो—

(१) शस्त्र-अस्त्र अभ्यास, (२) शास्त्राभ्यास, (३) दीक्षा, (४) संगीत, (५) सवारी, (६) व्यायाम, (७) नौका, जहाज की सवारी, (८) यंत्र-तंत्र रचना, (९) गिरी (पहाड़), कोट (किले) पर चढ़ना, (१०) विषय-भोग, (११) युद्ध, (१२) पशु-पक्षी का लेना-देना, (१३) काट-छांट करना, (१४) कठोर-हठ योग साधना, (१५) राजदर्शन, (१६) विवाद, (१७) लड़ाई-झगड़ा, (१८) किसी से मिलने जाना, (१९) मुकदमे बाज़ी, (२०) सब प्रकार के क्रूर कार्य।

(ग) कार्य के लिए जहां जाना हो वहां पहुंचकर जिससे काम लेना हो, उस व्यक्ति को उस समय अपना जिस तरफ का श्वास चलता हो उस तरफ रखकर बातचीत का प्रारंभ करना चाहिये।

आपको आश्चर्य होगा कि सामने वाला व्यक्ति यदि आपका विरोधी भी होगा तो भी आपकी इच्छानुसार ही कार्य करेगा। ऊपर बतलाई हुई विधि ही उत्तम वशीकरण है। इस विधि को निम्नलिखित कार्यों में उपयोग करने से मनमानी सफलता मिलेगी ही।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

और क्लेश हो—२१८

जिस समय श्वास जल्दी-जल्दी पलटे अर्थात् थोड़ी देर चन्द्र नाड़ी में और

(१) नौकरी की उमेदवारी के लिए जाना, (२) इण्टरव्यु के लिए जाना, (३) मुकदमे में वादी, प्रतिवादी अथवा साक्षी के लिये जाना, (४) अपने मालिक, स्वामी, आफिसर, बड़े, बुजुर्ग अथवा गुरु की मुलाकात के लिए जाना।

(घ) जिस व्यक्ति ने सफलता प्राप्त करनी हो—अथवा भाग्य का उदय करना हो उसे निम्नलिखित कुछ नियमों का पालन करना चाहिए। इन नियमों के अनुसार चलने से अशुभ योग अपने आप नष्ट हो जाते हैं:-(१)नित्य सूर्योदय से आधा घण्टा पहले जागना चाहिए। (२) सुबह उठते समय (बिछौने में बैठे बैठे) आंख खोलते ही जो स्वर चलता हो उसी तरफ का पग बिछोने से उतरते हुए पहले धरती पर रखना चाहिए। पर उतरते समय श्वास लेते समय पग धरती पर रखना आवश्यक है। खाली स्वर से लाभ के बदले हानि होना संभव है। यदि दाहिना (सूर्य) स्वर चलता हो तो दायां (जीमना) पग धरती पर रखना चाहिए। यदि बायां चन्द्र स्वर चलता हो तो बायां (डाबा) पग धरती पर रखना चाहिए। चन्द्र स्वर में सम अर्थात् दो, चार आदि कदम आगे बढ़ना चाहिए। तथा सूर्य स्वर में विषम अर्थात् १, ३, ५, आदि कदम आगे बढ़ना चाहिये।

(ङ) स्वरोदय के प्रयोग से अग्नि शांत हो जाती है:—सबको आश्चर्य होगा कि स्वर की मदद से बड़ी-बड़ी लगी हुई आग बुझाई जा सकती है। स्वर की मदद से आग बुझाने की विधि इस प्रकार स्वर शास्त्र में कही है—

जिस जगह आग लगी हो, जिस तरफ से पवन हवा की गति से आग ज़ोर पकड़ती हो उस तरफ पानी का पात्र लेकर खड़े रहें। तदनन्तर जिस नासिका से (नाड़ी से) श्वास चलता हो उस नाड़ी से श्वास अन्दर खींचते-खीचते उसी नाड़ी से थोड़ा जल भी खींचें। तत्पश्चात् उस पात्र में से ७ रत्ती भर (एक चम्मच) पानी लेकर आग पर छोड़ें, थोड़ी देर में आग आगे बढ़ना बन्द होकर बन्द हो जायेगी अर्थात् बुझ जाएगी।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

थोड़ी देर सूर्य नाड़ी में चलने लगे अथवा दोनों नथनों में श्वास चलता हो और श्वास में आकाश तत्त्व चलता हो अथवा दोनों स्वर एक साथ चलें अथवा जिस

(च) मृत्यु-रोग तथा आपत्तियों का पूर्वज्ञान तथा उपाय:—पहले हम लिख आये हैं कि स्वर चालन का समय तथा दिन निश्चित है । परन्तु जब कोई शुभ-अशुभ होने का हो तो स्वर के समय तथा दिनों में परिवर्तन हो जाता है । यह परिवर्तन दो प्रकार से होता है ।

(१) विपरीत स्वर चले अर्थात् जिस दिन बाईं (डाबी) नाड़ी चलने की हो उस दिन दाईं (जीमनी) नाड़ी चले और जिस दिन दाईं (जीमनी) नाड़ी चलने की हो उस दिन बांईं नाड़ी चले ।

(२) इसी प्रकार जितने समय तक बांई और दाईं नाड़ी चलनी चाहिए उतने समय तक वह न चलकर निश्चित समय से अधिक तथा अल्प प्रमाण में चले तो कोई छोटी, बड़ी आपत्ति आवेगी ही ऐसा निश्चित समझें ।

(छ) दिनों में (तिथियों में) परिवर्तन से शुभाशुभ फल :—

(१) यदि शुक्लपक्ष की एकम् (प्रतिपदा) के दिन बाईं नाड़ी न चले परन्तु उससे विपरीत दाहिनी (सूर्य) नाड़ी चले तो पूर्णिमा तक गरमी से कोई रोग हो, सर्दी से कोई रोग हो, किसी कार्य में हानि हो, घर में क्लेश हो, कोई प्रिय वस्तु नाश पाये ।

(२) यदि कृष्णपक्ष एकम् के दिन सूर्य नाड़ी न चले परन्तु उसके विपरीत चन्द्र नाड़ी चले तो अमावस तक नं० १ में लिखे अनुसार सर्दी, क्लेश, हानि, आदि आपत्तियों की सम्भावना रहे ।

(३) यदि नं०१-२ के समान लगातार दो (वदि, सुदि) पक्ष तक विरुद्ध स्वर से नाड़ी चलती रहे तो अपने पर विशेष आपत्ति आने की अथवा किसी सज्जन की बीमारी का अथवा मृत्यु का समाचार मिलने की सम्भावना रहे ।

(४) यदि तीन पक्ष लगातार विरुद्ध स्वर से दोनों नाड़ियां चलें तो अपनी मृत्यु समीप समझें ।

(५) यदि ३ दिन विपरीत स्वर चले तो क्लेश अथवा कोई रोग होना संभव है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

समय एक स्वर चलते-चलते दूसरा स्वर चलने को होता है उस समय पांच सात मिनट तक दोनों स्वर चलने लगते हैं उसी को सुखमना स्वर कहते हैं—२१६

(६) यदि लगातार एक महीने तक बाईं (डाबी) नाड़ी विपरीत चले तो महारोग हो।

(ज) समय में परिवर्तन से शुभाशुभ फल :—यदि स्वर के समय में परिवर्तन अर्थात् कमी-बेशी हो तो उससे नीचे लिखे अनुसार शुभाशुभ फल होता है। यह बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिए कि समय का परिवर्तन दोनों स्वरों में उत्पन्न होता रहता है।

(क) शुभ फल:—(१) चन्द्रस्वर लगातार चार घड़ी चले तो कोई अकल्पित उत्तम वस्तु की प्राप्ति हो। (२) यदि लगातार आठ घड़ी चले तो सुख वैभव मिले, (३) चौदह घड़ी लगातार चले तो प्रेम, मैत्री आदि मिले, (४) यदि एक दिन रात लगातार चले तो ऐश्वर्य, मान, वैभव मिले, (५) यदि २ दिन तक आधा-आधा पहर दोनों स्वर क्रमशः चले तो यात्रा और सौभाग्य की प्राप्ति हो, (६) यदि दिन को चन्द्र तथा रात्री को सूर्यस्वर लगातार चलते रहें तो १२० वर्ष की आयु हो, (७) यदि ४,८,१२ अथवा २० रात-दिन तक चन्द्रस्वर चलता रहे तो ८० वर्ष से अधिक आयु तथा ऐश्वर्य एवं सुख समृद्धि प्राप्त हो।

(ख) अशुभ फल चन्द्रस्वर :—(१) यदि लगातार दस घड़ी तक चन्द्रस्वर चालू रहे तो देह कष्ट, (२) बारह घड़ी तक चालू रहे तो उद्वेग हो,(३) यदि एक महीना तक लगातार चन्द्रस्वर चालू रहे तो धन का नाश हो।

(ग) अशुभ फल सूर्य स्वर :—(१) यदि लगातार चार घड़ी तक सूर्य स्वर चालू रहे तो वस्तु की हानि हो अथवा बिगाड़ हो। (२) यदि दो घड़ी तक चालू रहे तो सज्जन से द्वेष हो, (३) यदि २१ घड़ी तक चालू रहे तो सज्जन का विनाश हो, (४)६० घड़ी तक यदि लगातार सूर्य स्वर चालू रहे तो आयुष्य क्षीण और यदि बीमार हो तो मृत्यु हो।

(झ) रोग ज्ञान और उनका प्रतिकार:—नासिका का स्वर निश्चित तिथि और समयानुसार न चले तो शरीर में व्याधि उत्पन्न हो। इस विषय में बहुत

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सुखमना स्वर में नाक के श्वास को रोक कर प्राणायाम द्वारा भृकुटी में चढ़ाकर आत्म ध्यान कर निज अनुभव ज्ञान प्राप्त करें—२२०

कुछ पहले वर्णन कर चुके हैं। तथा इसके अनुसार जब शरीर में भूल से भी रोग प्राप्त हो तो स्वरों को विवेक पूर्वक चलाने से रोग भी अवश्य दूर हो जाते हैं। अब इस विषय पर कुछ विशेष लिखते हैं।

(१) **ज्वर (बुखार)**—जब शरीर में ज्वर की पूर्व तैयारी रूप बेचैनी और अधिक गरमी मालूम पड़े, तब जो स्वर चालू हो उसे जब तक शरीर बराबर स्वस्थ न हो तब तक उस स्वर को बन्द रखना चाहिए। नासिका में नरम रुई भरकर रखने से स्वर बन्द किया जा सकता है।

(२) **सिरदर्द** हो तो सीधे चित्त लेट जाना चाहिए और दोनों भुजायें लम्बी फैला देनी चाहियें। तत्पश्चात् किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा दोनों भुजाओं की कोहनियां ऊपर कस कर डोरी बांध देवें। ऐसा करने से तमाम दर्द पांच-दस मिनिट में शांत हो जाएगा। जब दर्द ठीक हो जावे तो तुरन्त डोरियां खोल दें।

(३) यदि आधा सीसी (आधे सिर का दर्द) हो तो इस परिस्थिति में जिस तरफ का माथा दुखता हो, मात्र उस तरफ के हाथ की कोहनी पर डोरी बांधनी चाहिए। दोनों कोहनियों पर डोरी बांधने की जरूरत नहीं है। (४) कदाचित दूसरे दिन फिर आधा सीसी का दर्द हो तो पहले दिन जो स्वर चलता था वही स्वर दूसरे दिन भी चलता है, ऐसा हो तब हाथ की कोहनी बांधने के साथ यह स्वर भी बन्द कर दें। (५) **अजीर्ण (बदहज़मी)**—जिसको सदा अजीर्ण की शिकायत रहती हो, उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब उसकी अपनी सूर्य नाड़ी चलती हो तभी भोजन करे। ऐसा करने से धीरे-धीरे अजीर्ण की व्याधि निर्मूल हो जाती है अर्थात् मिट जाती है। फिर पाचन शक्ति बढ़ने से खाया हुआ सब अन्न पच जाता है। भोजन करने के बाद १५-२० मिनिट बाईं करवट लेटने से अधिक लाभ होगा।

(६) **पुराणा अजीर्ण रोग मिटाने के लिए:**—एक अन्य उपाय भी है। नित्य १०-१५ मिनिट पद्मासन से बैठना। दृष्टि को नाभी पर स्थिर रखना।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इसलिए सुखमना स्वर में योगाभ्यास, प्रभु का ध्यान, आत्म तत्त्व विचारणा, संसार से उदासीनता भाव तथा प्राणायाम आदि करना चाहिये, क्योंकि

केवल सात दिन में ही अजीर्ण से छुट्टी पा जावेंगे ।

(७) **हिलते हुए दांतों को मजबूत करना**:—जिसके दांत हिलते या दुखते हों उसे पाखाना (शौच) और पेशाब (लघुशंका) करते समय ऊपर नीचे के दोनों दांतों की पंक्तियों को ज़ोर से दबाकर रखना चाहिए। इस प्रकार थोड़े समय करने से दर्द सम्पूर्ण शांत हो जाता है और हिलते हुए दांत भी ठीक हो जाते हैं।

(८) **दूसरे रोग**:—जैसे कि छाती, कमर, पेट आदि शरीर के कोई भी भाग पर दर्द होता हो तो उस समय जो स्वर चालू हो उसे एकदम बन्द कर दें। ऐसा करने से चाहे कैसा ही दर्द हो वह थोड़े ही समय में बन्द हो जायेगा।

(९) श्वास-दमा:—जब श्वास का उपद्रव शुरू होता मालूम पड़े और श्वास नली धमनी के समान फूलती मालूम पड़े तब जो स्वर चालू हो उसे एकदम बन्द कर देना चाहिए। ऐसा करने से १०-१५ मिनिट बाद आराम आ जावेगा। इस रोग को जड़ से दूर करने के लिए एक महीने तक चालू स्वर को बन्द करके दूसरा स्वर चलाने का अभ्यास करें। जितना बन सके उतना अधिक समय तक नित्यप्रति चालू श्वास को बन्द कर दूसरे स्वर को चलाने के अभ्यास से श्वास का रोग अवश्य मिट जायेगा।

(ज) **कुछ आवश्यक उपचार** :—(१) परिश्रम से थकावट उतारने के लिए अथवा ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की गरमी से शांति पाने के लिए थोड़ा समय दाई करवट लेट जाने से थकावट और गरमी से शांति मिलेगी। (२) नित्य भोजन करके चन्दन की कंघी से बाल संवारने से सिर रोग, वायु रोग मिट जाता है, और बाल काले रहते हैं, जल्दी पकते नहीं हैं। (३) नित्य आधा घंटा पद्मासन से बैठकर दांतों के मसूड़ों में जीभ चिपटा कर रखने से कोई भी रोग नहीं होता, शरीर अधिक से अधिक स्वस्थ होता जाता है। (४) नित्य आधा घंटा सिद्धासन से बैठकर नाभि पर दृष्टि स्थिर करने से भयंकर से भयंकर स्वप्न-दोष हमेशा के लिए मिट जाता है। (५) सुबह आंख खुलते ही जो स्वर चलता

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इस स्वर में बहुत जल्दी ध्यान जमता है। दूसरा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये—२२१

हो उस तरफ के हाथ की हथेली मुख पर रख कर उसी तरफ का पग बिछोने पर से प्रथम धरती पर रखने से इच्छा सिद्धि प्राप्त होती है। (६) जिसे अधिकतर अजीर्ण रहता हो वह प्रातः काल कोई भी वस्तु खाये बिना खाली पेट ८-१० काली मिर्चें धीरे-धीरे चबा जावे। पन्द्रह-बीस दिन तक ऐसा क्रम जारी रखने से पुराने अजीर्ण का रोग नाश पा जाता है। (७) रक्त शुद्धिः—यदि किसी भी कारण से रुधिर में बिगाड़ हो गया हो तो इस रक्त विकार के कारण शरीर में फोड़े फुंसियां आदि निकल आते हों तो अमुक दिनों तक नियम पूर्वक "शीतली कुम्भक" करने से रक्त शुद्धि होती है। और चर्म रोग मिट जाते हैं। (८) जवानी कायम रखने के लिए इच्छानुसार स्वर बदलने का अभ्यास करने से जवानी टिकी रहती है। दिन में जब भी समय मिले जो स्वर चलता हो उसे तुरन्त बदलने का प्रयास करें। इस प्रकार दिन में कई बार स्वर बदलने के अभ्यास से चिर यौवन प्राप्त होता है। ऊपर की क्रिया के साथ-साथ प्रातः सायं **"विपरीत करणी"** मुद्रा भी की जावे तो अतीव लाभ मिलता है। (९) **दीर्घायुष्य के लिए:**—साधारणतया श्वास की साधारण गति का प्रमाण नासिका में से बाहर निकलते १२ अंगुल का होता है तथा नासिका में प्रवेश करते इसकी गति का प्रमाण १० अंगुल का होता है। श्वास को एक बार अन्दर जाकर बाहर जाने तक साधारण कालमान कुल ४ सेकेंड लगभग होता है। यह कालमान और गति का प्रमाण दोनों को जैसे बने वैसे कम करने से मनुष्य दीर्घायु होता है। धातु की दुर्बलता आदि बीमारी वाले मनुष्य के श्वास की गति का प्रमाण अधिक और समय का प्रमाण न्यून होता है। मनुष्य की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं में उसके श्वास की गति का प्रमाण कितना होता है उसकी तालिका नीचे दी जाती है—

(१) गाते हुए श्वास की गति का प्रमाण १६ अंगुल होता है। (२) खाते समय २० अंगुल, (३) चलते हुए २४ अंगुल, (४) सोते हुए ३० अंगुल, (५) मैथुन करते ३६ अंगुल होता है। (६) व्यायामादि कठिन परिश्रम करते

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चर (सूर्य स्वर), स्थिर (चन्द्र स्वर) तथा तीसरे द्विस्वभाव (सुखमना स्वर) के विषय में सब बात कह दी है। अनुक्रम से जिस-जिस स्वर में जो-जो कार्य करने के लिए हम कह आये हैं वैसा-वैसा उस-उस स्वर में कार्य प्रारम्भ करने से अवश्य कार्य में सफलता प्राप्त होगी—२२२

हुए श्वास की गति का प्रमाण सब से अधिक बढ़ जाता है। जो मनुष्य श्वास की उपर्युक्त स्वाभाविक गति के प्रमाण में जितनी-जितनी अधिक कमी कर सकेगा अर्थात् घटा सकेगा, वह उतने-उतने प्रमाण में अपनी आयुष्य की वृद्धि कर सकता है।

(ट) **स्वर द्वारा शक्तियों की प्राप्ति** :—(१) श्वास की गति को १२ अंगुल तक लावे तो प्राण स्थिर होता है। (२) श्वास की गति को १२ अंगुल से घटा कर १० अंगुल तक लावे तो महान आनन्द प्राप्त हो। (३) नौ अंगुल तक ले जावे तो उसमें कवित्व शक्ति आती है। (४) आठ अंगुल तक लावे तो वाक् सिद्धि होती है। (५) सात अंगुल तक लावे तो दूर दृष्टि प्राप्त होती है। (६) छः अंगुल तक लावे तो आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त करे। (७) पांच अंगुल तक लावे तो उसमें प्रचंड वेग आता है। (८) चार अंगुल तक लावे तो सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं। (९) तीन अंगुल तक लावे तो उसे नव निधियां प्राप्त होती हैं। (१०) दो अंगुल तक लावे तो अनेक रूप धारण कर सकता है। (११) एक अंगुल तक लावे तो अदृश्य हो सकता है। (१२) श्वास की गति को १२ अंगुल से घटा कर प्राण की गति का प्रमाण नखाग्र भाग जितना रह जाये तब यमराज भी स्पर्श नहीं कर सकता अर्थात् वह अमर बन जाता है।

(ठ) **शब्द ब्रह्म अथवा आंतरिक नाद**:—इसके नौ भेद हैं-यथा घोष, कांस्य, शृंग, घण्टा, वीणा, बांसुरी, दुन्दुभी, शंख और मेघ गर्जना। अभ्यास में पहले इन्हीं शब्दों का अन्तरात्मा से उद्घोष होता है जिसे अभ्यासी सुनता है। किन्तु अभ्यास सिद्ध हो जाने पर इन शब्दों से भी भिन्न एक और शब्द होता है जिसे तुंकार का शब्द ब्रह्म कहा जाता है। उपर्युक्त नौ प्रकार के शब्द, शब्द ब्रह्म की प्रथमावृत्ति के हैं और द्वितीय वृत्ति में शब्द ब्रह्म का तुंकार ही है। तुंकार शब्द से काल का भय सदा के लिए मिट जाता है और प्राणी इच्छानुसार जीवित

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पांचों तत्त्वों के ज्ञान की सहज रीतियां

दोहा—तत्त्व स्वरूप निहारवा, कहूं उपाय विचार।
भाव शुभाशुभ तेहनो, अधिक हिये में धार ॥ २२३ ॥
श्रवण अंगूठा मध्यमा, नासा पुट पर थाप।
नयन तर्जनी थी ढकी, भृकुटी में लख आप ॥२२४॥
पड़े बिन्दु भृकुटी विषय, पीत श्वेत अरु लाल।
नील श्याम जैसा हुवे, तैसा तिहां निहाल ॥२२५॥
जैसा वर्ण निहारिये, तैसा तत्त्व विचार।
श्वास गति स्वर में लखी, इच्छा फुनि आकार ॥२२६॥

अर्थ—अब मैं पांचों तत्त्वों का स्वरूप देखेने का उपाय कहता हूं। तत्त्वों को जानकर उनके शुभाशुभ फल का मन में निश्चय करना चाहिये—२२३

दोनों अंगूठों से दोनों कानों को, दोनों मध्यमा अंगुलियों से नासिका के दोनों नथनों को, दोनों तर्जनी अंगुलियों से आखों को बन्द कर लें [और दोनों अनामिकाओं एवं दोनों कनिष्टिकाओं (इन चारों अंगुलियों) से दोनों होटों को

रह सकता है।

(ङ) **देवताओं के भिन्न-भिन्न रंगों का रहस्य:**—देवताओं के देहगत पीत, शुक्ल, नीला (हरा) लाल एवं काला आदि रंगों का रहस्य एवं उनका ध्यान फल कहते हैं।

(१) पृथ्वी तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग पीला होता है। पीला रंग स्तंभन कारक है।

(२) जल तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग शुक्ल रंग ज्ञान, शांति श्री, कीर्ति, सौभाग्य और मुक्ति का दाता है। (३) आग्नेय तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग लाल होता है। लाल रंग वश्य, आकर्षण, शांति, श्री, सौभाग्व, और विजय का दाता है। (४) वायु तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का वर्ण धुआं सा, अथवा हरा होता है इस रंग के कार्य उच्चाटन आदि हैं। (५) आकाश तत्त्व (शक्ति) प्रधान देवताओं का रंग काला अथवा नीला होता है। मारण एवं उत्सादन (उच्चाटन) आदि कार्य करता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ऊपर नीचे से खूब दवा लें] यह कार्य करके एकाग्र चित्त से गुरु की बतलाई हुई रीति से भ्रकुटी में देखना चाहिये—२२४

भ्रकुटी में जैसा और जिस रंग का बिन्दु दिखलाई दे वही तत्त्व जानना चाहिये । जैसे यदि पीला रंग हो तो स्वर में पृथ्वी तत्त्व जानें, यदि सफेद रंग हो तो जल तत्त्व जानें, यदि लाल रंग हो तो अग्नि तत्त्व जानें, यदि हरा अथवा नीला रंग हो तो वायु तत्त्व जानें और यदि काला रंग हो तो आकाश तत्त्व जानें । [४७] अर्थात् जैसा वर्ण देखे वैसा तत्त्व जानें, इनके साथ श्वास की

४७—तत्त्वों की पहचान के लिये अन्य उपाय भी हैं सो निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

(१) दर्पणेन समालोक्य तत्र श्वासं विनिःक्षिपेत् ।
आकारैस्तु विजानीयात् तत्त्वभेद विचक्षण: ।।१५२
चतुरस्रं चार्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्तुलं स्मृतम् ।
बिन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्व लक्षणम् ।।१५३

अर्थ—दर्पण अर्थात् मुंह देखने का कांच अपने होठों के पास लगा कर उसके ऊपर बलपूर्वक अपने श्वास को छोड़ें, ऐसा करने से उस दर्पण पर जिस आकार का चिन्ह पड़े उसे देख कर तत्त्व का निर्णय करें—१५२

यदि समचौरस आकार दिखलाई दे तो पृथ्वी तत्त्व, अर्ध चन्द्र का आकार दिखलाई दे तो जल तत्त्व, त्रिकोण दिखलाई दे तो अग्नि तत्त्व, गोल (अथवा ध्वजा) का आकार दिखलाई दे तो वायु तत्त्व, बिन्दुओं का आकार दिखलाई दे अथवा कोई आकार न हो तो आकाश तत्त्व जानना चाहिये—१५३

[तुलना के लिये देखें इसी ग्रंथ का पद्य नं०—११४-११५]

(२) पांच रंगों की गोलियां (पीली, सफेद, लाल, हरी और काली एक-एक रंग की तथा एक गोली विचित्र (चित्तकबरी) बनाकर इन छह गोलियों को अपने पास रख लेना चाहिये और मन में किसी तत्त्व का विचार करना हो उस समय इन गोलियों में से किसी एक गोली को

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

गति का प्रमाण देखे और साथ ही[४८] आकार एवं [४९]इच्छा को भी ध्यान में रख कर तत्त्व का निर्णय करें—२२५-२२६

विचार करो कि जिस समय तत्त्व चार अंगुल नासिका से बाहर निकलता है तीखी वस्तु पर चित्त चलता है, प्यास लगती है तो उस समय अग्नि तत्त्व होगा। यदि नीचे लिखे चार्ट के[५०] बारहवें कोठे के विचार से इनके साथ

आंख मीच कर उठा लेना चाहिये। यदि मन में बिचारा हुआ और गोली का रंग एक मिल जावे तो जान लेना चाहिये कि तत्त्व मिलने लगा है।

(३) अथवा किसी दूसरे पुरुष को कहना चाहिये कि तुम किसी रंग का विचार करो। जब वह पुरुष किसी रंग का विचार कर ले उस समय अपने नाक के स्वर में तत्त्वों को देखना चाहिये तथा अपने तत्त्व को विचार कर उस पुरुष के विचारे हुए रंग को बतलाना चाहिये कि तुमने अमुक रंग का विचार किया है। यदि उस पुरुष का विचारा हुआ रंग ठीक मिल जावे तो समझ लेना चाहिये कि तत्त्व ठीक मिलता है।

(नोट) जब तत्त्व को देखना हो तब आसन बिछाकर मूलासन अथवा पद्मासन में बैठ कर चित्त को स्थिर करके देखना चाहिये। ऊपर कही हुई रीतियों से मनुष्य को कुछ दिनों तक तत्त्वों का साधन करना चाहिये। क्यों कि कुछ दिनों के अभ्यास से मनुष्य को तत्त्वों का ज्ञान होने लगता है और तत्त्वों का ज्ञान होने से वह पुरुष कार्याकार्य और शुभाशुभादि होने वाले कार्यों को शीघ्र ही जान सकता है।

४८—अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं०—१११-११

४९—अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं०—२५३

५०—कांति संगम आलस्य भूख प्यास जो होय।
चरणदास पांचों कही, अग्नि तत्त्व सों जोय ॥१६१॥
रक्त वीर्य कफ तीसरो, मेद मूत्र को जान।
चरणदास परकिरत यह, पानी सों पहिचान ॥१६२॥
चाम हाड़ नख कहूं, रोम जान अरु मांस।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२					१३	१४
तत्त्व का नाम	तत्त्व का रंग	तत्त्व का गुण	तत्त्व का समय	तत्त्व की चाल का प्रमाण तथा आकार	तत्त्व का बीज	तत्त्व का रस (स्वाद)	तत्त्व की प्रकृति (स्वभाव)	तत्त्व का द्वार	तत्त्व का भोजन	तत्त्व का स्थान	एक तत्त्व में पाँच तत्त्व मिलते हैं तथा उनकी प्रकृति के जुदा जुदा भेद।					दिशों की [illegible]	[illegible] की प्रधानता
											आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी		
आकाश	काला	स्थिर	१० पल (४ मिनट)	नासिका के भीतर रहता है और बाहर नहीं आता। आकार कोई नहीं।	हौं	कड़वे स्वाद की चाह	स्थिर	दोनों कान	शब्द	सिर में रहता है	मोह	काम	क्रोध	लज्जा	मद	^	ध्यान को अथवा कोई काम न करें
वायु	हरा अथवा नीला	रजोगुण	२० पल (८ मिनट)	टेढ़ा होकर नासिका से आठ अंगुल बाहर आता है। आकार = ध्वजा समान।	बैं	खट्टी वस्तु की चाह	चर	दोनों नासिकाएं	सूंघना	नाभि में रहता है	बल करना	उठना-बिठना	दौड़ना	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible] उच्चाटन कार्य करें
अग्नि	लाल	तमोगुण	३० तीस पल (१२ मिनट)	ऊँचा होकर नासिका से चार अंगुल बाहर आता है। आकार = त्रिकोण	रौं	तीखी वस्तु की चाह	तप्त	दोनों नेत्र	देखना	[illegible] में रहता है	नींद	[illegible] अंगड़ाई कान्ति	भूख	प्यास	आलस	दक्षिण दिशा में	[illegible]
जल	सफ़ेद	सतोगुण	४० पल (१६ मिनट)	नीचे होकर नासिका से सोलह अंगुल बाहर आता है। आकार = अर्द्ध-चन्द्र जैसा	पैं	कसैली वस्तु की चाह	शीतल	लिंग	मैथुन	पैर में रहता है	वीर्य	पेशाब	लहू	पसीना [illegible]	थूक	पश्चिम दिशा में	चर कार्य तथा सब प्रकार उत्तम कार्य
पृथ्वी	पीला	सतोगुण	५० पल (२० मिनट)	सामने नासिका से बारह अंगुल बाहर आता है। आकार = समचौरस	लैं	मीठी वस्तु की चाह	कठिन (कठोर)	गुदा द्वार	भोजन	जाँघ में रहता है	रोम	मांस	नस अथवा नाड़ी	चाम	हाड	पूर्व दिशा में	स्थिर कार्य तथा सम्मान आदि कार्य
पद्य नम्बर	पद्य संख्या	स्वरोदय ११२	पद्य नम्बर	पद्य नम्बर	पद्य संख्या	पद्य नम्बर	शिवस्वरोदय से	पद्य नम्बर	पद्य नम्बर	पद्य नम्बर	चरणदास कृत ज्ञानस्वरोदय से पद्य नम्बर १६० से					पद्य नम्बर	पद्य नम्बर
१०६	११०		११६	१११ से ११५	६४,६५	२२४ ३६४		२६१,२६२	२६२	२३२	१६६					[illegible]	२३१

(नोट) इन पद्यों को देखने से बुद्धिमान मनुष्य प्रत्येक तत्त्व को सहज ही में पहचान सकता है। उदाहरण स्वरूप देखें कोष्ठक नम्बर ५ तथा ८ ने [illegible]

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अंगड़ाई भी आती हो तो अग्नि तत्त्व में पवन तत्त्व है। [५]प्यास भी लगती हो तो अग्नितत्त्व में है ऐसे ही सब तत्त्वों का विचार बुद्धि पूर्वक हो सकता है।

पृथ्वी की परकिरत यह, अन्त सबन को नास ॥१६३॥
बल करना अरु धावना, उठना अरु संकोच।
देह बढ़े सो जानिये, वायु तत्त्व है सोच ॥१६४॥
काम क्रोध मोह लोभ, मद आकाश को भाग।
नभ की पांचों जानियै, नित न्यारो तु जाग ॥१६५॥
पांच पचीसों एक ही, इन के सकल स्वभाव।
निर्विकार तू ब्रह्म है, आप आप को पाव ॥१६६॥

अर्थ—(१) कांति, संगम (अंगड़ाई) आलस्य भूख और प्यास ये पांचों अग्नि तत्त्व में होते हैं।१६१

(२) लहू, वीर्य, थूक, पसीना अथवा चर्बी, मूत्र ये पांचों जल तत्त्व में होते हैं।१६२

(३) चाम, हाड, नख अथवा नाड़ी, रोम और मांस ये पांचों पृथ्वी तत्त्व में होते हैं।१६३

(४) बल करना, दौड़ना, उठना, चलना-बढ़ना, सिमटना, संकोच करना, हिलना, ये पांचों वायु तत्त्व में होते हैं।१६४

(५) काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद ये पांचों आकाश तत्त्व में होते हैं।१६५

पांच तत्त्वों में एक-एक तत्त्व में पांच-पांच तत्त्व भुगतते हैं उन की प्रकृति को ऊपर लिखे कोष्टक में स्पष्टतया समझा दिया है। कुल पच्चीस तत्त्व एक ही स्वर में होते हैं। परन्तु तू तो इनसे परे निर्विकार ब्रह्मस्वरूप है अपने स्वरूप को पहचान। (रणजीत-चरणदास कृत स्वरोदय)

५१—अग्नि तत्त्व गुण तामसी, कही रजोगुण वाय।
पृथ्वी नीर सतोगुणी, नभ है स्थिर भाय ॥२१२॥

अर्थ—अग्नि तत्त्व तमोगुणी है, वायु तत्त्व रजोगुणी है, पृथ्वी तथा जल तत्त्व सतोगुणी है तथा आकाश तत्त्व स्थिर है—२१२ (चरणदास स्वरोदय)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हानि लाभ विचारने का भेद

हम पहले लिख आये हैं कि स्वरों के तीन भेद हैं और तिथि वार आदि एक-एक के संग जुदा-जुदा हैं उनको स्पष्ट समझाने के लिये पांच कोठों का यन्त्र लिखा जाता है। पहले कोठे में पद्य नं० दूसरे कोठे में स्वर, पक्ष, वारादि

पद्य नंबर	स्वरादि के नाम	पिंगला के संगतियों के नाम	इंगला की संगतियों के नाम	सुखमना के भेद
१४ से १८	स्वरों के नाम	पिंगला अथवा सूर्य दाहिने स्वर का नाम है। इसकी प्रकृति गरम है।	इड़ा, इंगला अथवा चन्द्र बायें स्वर का नाम है। इस की प्रकृति सौम्य (ठंडी है)	दोनों स्वर चलते हैं।
१९ से २२ तक	पक्षों तथा तिथियों के नाम	कृष्ण पक्ष १५ दिनों में ९ दिन सूर्य के और ६ दिन चन्द्र के हैं जो कि मनुष्य की देह में अपना अपना काम करते हैं। सूर्य के दिन मान= १/२/३/ ७/८/९/१३/१४/अमावस चन्द्र के दिनमान = ४/५/६/१०/११/१२	शुक्लपक्ष १५ दिनों में ९ दिन चन्द्र के और ६ दिन सूर्य के मनुष्य के शरीर मे अपना अपना राज करते हैं। चन्द्र के दिन= १/२/३/७/ ८/९/१३/१४/पूर्णमाशी/ सूर्य के दिन= ४/५/६/ १०/११/१२	
२३	वारों के नाम	मंगल, शनि, रविवार	सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार	
३१५, ३१६	दिशाएं	पूर्व, उत्तर	पश्चिम, दक्षिण	
३४, ३५	ओर (तरफ)	पीछे, दाहिने, नीचे	आगे, ऊंचे, बायें	
१०८	तत्वनाम	अग्नि, पवन, आकाश	पृथ्वी, जल	
४४ से ४६	प्रश्न के अक्षर	विषम अक्षर जैसे- १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, २१,	सम अक्षर जैसे— २, ४, ६, ८, १०, १२, २०, २४	
३० से ३३	राशियों के नाम	मेष, कर्क, तुला, मकर	वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ	मिथुन, कन्या, धन, मीन
गमन—(चलते) समय		दायें तीन कदम आगे धरें	बायें चार कदम आगे धरें	कहीं न जावें

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

के नाम बतलाये हैं। तीसरा कोठा पिंगला का है। इसके नीचे के कोठों में उसके संगतियों का व्योरा दिया है। इसी प्रकार चौथा कोठा इंगला नाड़ी का तथा पांचवां कोठा सुखमना नाड़ी का है। इन तीनों स्वरों के संगती उनके नीचे घरों में है—

तत्त्वों के विषय में कुछ आवश्यक बातें

दोहा—प्रथम वायु सुर में बहे, दुतिये अगन बखान।
तीजी भू चौथो सलिल, नभ पंचम मन आन ॥२२७॥
बाम दिशा थी सुर उठी, बहे पिंगला मांहि।
ताकु संक्रम कहत हैं, या में संशय नांहि ॥२२८॥
तत्त्व उदक भू शुभ कहे, तेज मध्य फलदाय।
हानि मृत्यु दायक सदा, मारुत व्योम कहाय ॥२२९॥
ऊर्ध्व अधो अरु मध्य पुट, तिर्छा संक्रम रूप।
पंच तत्त्व यह बहत है, जानो भेद अनूप ॥२३०॥
ऊर्ध्व मृत्यु शान्ति अधो, उच्चाटन तिरछाय।
मध्य स्तभन नभ विषय, वरजित सकल उपाय ॥२३१॥
जंघ मही नाभी अनिल, तेज खंध जल पाय।
मस्तक में नभ जानजो, दिये स्थान बताय ॥२३२॥
थिर काजे प्रधान भू चर में सलिल विचार।
पावक क्रूर कारज विषय, वायु उच्चाटन मार ॥२३३॥
व्योम चलत कारज सहू, करियें नांहि मीत।
ध्यान योग अभ्यास की, धारो या में रीत ॥२३४॥
पश्चिम दक्षिण जल मही, उत्तर तेज प्रधान।
पूरब वायु बखानजो, नभ कहिए थिरथान ॥२३५॥
धीरज सिद्धि पृथ्वी विषय, जल सिद्धि तत्काल।
हीन वायु अग्नि थकी, काज निष्फल नभ भाल ॥२३६॥
सिद्धि पृथ्वी उदक विषय, मृत्यु अगन विचार।
क्षयकारी वायु सिद्धि, नभ निष्फल चित्तधार ॥२३७॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—(१) स्वर में प्रथम वायु तत्त्व, दूसरे अग्नि तत्त्व, तीसरे पृथ्वी तत्त्व चौथे जल तत्त्व, और पांचवें आकाश तत्त्व क्रमशः एक-एक स्वर में बहते हैं—२२७

(२) बांई तरफ से स्वर उठकर पिंगला में बहने लगे तो उसे संक्रम कहते हैं। इसमें संशय नहीं है—२२८

(३) पृथ्वी और जल तत्त्व शुभ है, अग्नि तत्त्व मध्यम (मिश्र) फल दाता है, वायु तत्त्व हानि करता है, तथा आकाश तत्त्व मृत्यु दायक है—२२९

(४) पृथ्वी तत्त्व सामने, जल तत्त्व नीचे, अग्नि तत्त्व ऊंचे, वायु तत्त्व टेढ़ा, तथा आकाश तत्त्व नासापुट में संक्रम करता है। इस प्रकार पांचों तत्त्व बहते हैं—२३०

(५) ऊर्ध्वतत्त्व में मृत्यु, अधो तत्त्व में शांति, तिरछे तत्त्व में उच्चाट, मध्य तत्त्व में स्तम्भन के कार्य करने चाहिए तथा नभ तत्त्व में कोई काम नहीं करना चाहिए—२३१

(६) पृथ्वी तत्त्व जांघ में, वायु तत्त्व नाभि में, अग्नि तत्त्व कन्धों में, जल तत्त्व पांव में, तथा नभ तत्त्व सिर में वास करते हैं। तत्त्वों के स्थान इस पद्य में बतला दिए हैं—२३२

(७) स्थिर कार्य पृथ्वी तत्त्व में, चर कार्य जल तत्त्व में, क्रूर कार्य अग्नि तत्त्व में, उच्चाटन और मारण कार्य वायु तत्त्व में करने चाहिए। आकाश तत्त्व में कोई कार्य नहीं करना चाहिए। आकाश तत्त्व में मात्र ध्यान ईश्वर भजन, तथा योगाभ्यास करना चाहिए[५२] —२३३-२३४

५२—पद्य नं० २३३-२३४ के वर्णन के अतिरिक्त ज्ञानावर्णव प्र० २९ में इस प्रकार से कहा है—

स्तम्भनादिके महेन्द्रो, वरुणः शस्तेषु सर्व कार्येषु।
चल मलिनेषु च वायुर्वश्यादौ वह्निरुद्देश्यः ॥२८॥

अर्थ—पुरुष को स्तम्भानादि कार्य करने हों तो पृथ्वीमंडल का पवन शुभ है। जल मंडल का पवन समस्त प्रकार के उत्तम कार्यों में शुभ है तथा वायु मंडल का पवन चल कार्यों तथा मलिन कार्यों में श्रेष्ठ है तथा वश्यादि कार्यों में अग्नि मंडल का पवन उत्तम है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(८) पश्चिम दिशा में जल तत्त्व बलिष्ठ है। दक्षिण दिशा में पृथ्वी तत्त्व बलिष्ठ है। पूर्व दिशा में वायु तत्त्व बलिष्ठ है। उत्तर दिशा में अग्नि तत्त्व बलिष्ठ है। और आकाश स्थिर स्थान में बलिष्ठ[५३] है—२३५

(९) पृथ्वी तत्त्व में कार्य की सिद्धि धीरे-धीरे हो, जल तत्त्व में कार्य की सिद्धि तत्काल हो, पवन तत्त्व हो तो थोड़ा लाभ हो, अग्नि तत्त्व हो तो सिद्ध हुआ कार्य भी नष्ट हो जावे, आकाश तत्त्व में कोई कार्य सिद्ध न हो—२३६

(१०) पृथ्वी तथा जल तत्त्व में सिद्धि, अग्नि तत्त्व में मृत्यु, वायु तत्त्व में क्षयकारी, तथा आकाश तत्त्व निष्फल है—२३७

प्रश्न समय उत्तरदाता के स्वरों से प्रश्नकर्त्ता को फल

(दोहा) संग्रामादिक कृत्य में, प्रबल हुताशन होय।
चन्द्र स्वर संग्रह विषय, फलदायक अति जोय ॥२३८॥
जीवित[५४] जय धन लाभ पुत्र, मित्र अर्थ जुध रूप।
गमनागमन विचार में, जानो मही अनूप ॥२३९॥
कलह[५५] शोक दुःख भय तथा मरण कछु हुइ उत्पात।

५३—शिवस्वरोदय ज्ञान में तत्त्व की बलिष्ठता के विषय में निम्न मतहै—

पूर्वायां पश्चिमे याम्यां उत्तरस्यां यथाक्रमम्।
पृथिव्यादीनि भूतानि, बलिष्ठानि विनिर्दिशेत् ॥१९०॥

अर्थ—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चारों दिशाओं में क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चारों तत्त्व बलिष्ठ हैं।

५४—छत्र-गज-तुरग-चामर रामा-राज्यादि सकल कल्याणम्।
माहेन्द्रो वदति फलं मनोगतं सर्वकार्येषु ॥२९॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—माहेन्द्र पवन (पृथ्वी मंडल) छत्र, हाथी, घोड़ा, चामर, स्त्री, राज्यादि समस्त कल्याणों को कहता है तथा समस्त कार्यों में मनोगत भावों को प्राप्त कराता है अर्थात् मन में विचारे हुए कार्यों की सिद्धि करता है—२९

५५—सिद्धमपि याति विलयं, सेवा कृष्यादिकं समस्तमपि चैव।
मृत्यु-भय-कलह-वैरं पवने त्रासादिकं च स्यात् ॥३२॥ (ज्ञानार्णवे)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

संक्रम भाव समीर में, फल दृष्टि जु विख्यात् ॥२४०॥

राजनाश[56] पावक चलत, पृच्छक नर की हान।
दुर्भिक्ष हो महितत विषय, रोगादिक फुनि जान ॥२४१॥

दूर्भिक्ष घोर विग्रह सुधि, देश भंग भय जान।
चलत वायु आकाश तत, चौपद हानि बखान ॥२४२॥

माहेन्द्र वरुण[57] जुग जोग में, घन-वृष्टि अति होय।
राज-वृद्धि परजा-सुखी, समय श्रेष्ठ अति होय ॥२४३॥

मही उदक दोऊ विषय, चन्द्रथान तिथि रूप।
चिदानन्द फल तेहनुं, जानो परम अनूप ॥२४४॥

अर्थ—१. युद्धादि प्रश्न में अग्नि तत्त्व प्रबल है। महायुद्ध में वैरी हार प्राप्त करे।

२. संग्रह करने के लिए चन्द्र स्वर उत्तम फलदाता है—२३८

३. जीवन, जय, धन, लाभ, पुत्र, मित्र, अर्थ, युद्ध, गमनागमन जाने-आने

अर्थ—वायु मंडल के पवन बहने पर सेवा, कृषि आदि समस्त कार्य सिद्ध हुए हों वे भी नष्ट हो जाते हैं। तथा मृत्यु भय, कलह, वैर, त्रासादिक होते हैं—३२

५६—भय-शोक-दुःख-पीड़ा—विघ्नौघपरम्परां विनाशं च।
व्याचटे देहभृतां दहनो दाहस्वभावोऽयम् ॥३१॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—यह अग्नि मंडल का पवन दाह स्वभाव रूप है। यह पवन जीवों को भय, शोक, दुःख, पीड़ा तथा विघ्न समूह की परम्परा तथा विनाशादिक कार्यों को प्रगट कहता है—३१

५७—अभिमतफलानि कुरम्बं विद्यावीर्यादि भूति संकर्णम्।
सुतयुवति वस्तुसारं वरुणो योजयति जन्तूनाम् ॥३०॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जल पवन जीवों को विद्या वीर्यादि विभूति सहित तथा पुत्र स्त्री आदि में जो सार वस्तु मनोवांछित हो उन सबको प्राप्त कराता है—३०

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

में पृथ्वी तत्त्व श्रेष्ठ है—२३६

४. वायु तत्त्व में कलह, शोक, दुःख, भय, मृत्यु, उत्पात आदि फल होता है—२४०

५. अग्नि तत्त्व में प्रश्न करता को हानि, राज का नाश, पृथ्वी पर दुर्भिक्ष रोगादि की उत्पत्ति होती है—२४१

६. स्वर में आकाश तत्त्व चलने से दुर्भिक्ष, घोर विग्रह, देश भंग का भय, और चौपायों का नाश हो—२४२

७. पृथ्वी और जल तत्त्व हो तो वर्षा अच्छी हो, राज वृद्धि हो, प्रजा सुखी तथा समय अति श्रेष्ठ होगा—२४३

८. यदि पृथ्वी और जल तत्त्व के साथ चन्द्र तिथि का योग हो जाय तो चिदानन्द जी कहते हैं कि इसका फल बहुत ही उत्तम होता है—२४४

तत्त्वों में पदार्थों की चिन्ता

(दोहा) मही मूल चिन्ता लखो, जीव वायु जल धार।
तेज धातु चिन्ता लखो, शुन्य आकाश विचार ।।२४५।।
बहु-पाद पृथ्वी विषय, जुगपद जल अरु वाय।
अग्नि चतुष्पद नभ उदय, विगत चरण कहवाय ।।२४६।।

अर्थ—यदि पृथ्वी तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि पूछने वाले के मन में मूल की चिन्ता है। यदि जल तत्त्व अथवा वायु तत्त्व चलता हो तो जान लेना चाहिए कि पूछने वाले के मन में जीव की चिन्ता है। यदि अग्नि तत्त्व हो तो धातु की चिन्ता जाननी चाहिए। यदि आकाश तत्त्व हो तो विचार शून्य जानना चाहिए—२४५

यदि पृथ्वी तत्त्व हो तो बहुत पैरों वाले की चिन्ता जाननी चाहिए। यदि जल तत्त्व अथवा वायु तत्त्व हो तो दो पैरों वाले की चिन्ता जानना। यदि अग्नि तत्त्व हो तो चौपायों की चिन्ता जानना चाहिए। यदि आकाश तत्त्व हो तो बिना पैर के पदार्थ की चिन्ता जानना चाहिए—२४६

पांचों तत्त्वों के स्वामी ग्रह तथा वार

(दोहा) रवि राहु कुज तीसरो, शनि चतुर्थ बखान।
पंच तत्त्व के भानु घर, स्वामी अनुक्रम जान ।।२४७।।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

बुध पृथ्वी जल को शशि, शुक्र अग्निपति मीत ।
वायु गुरु सुर चन्द में, तत्त्व स्वामि इन रीत ॥२४८॥
स्वामी अपनो आपनो, अपने घर के मांहि ।
शुभ फलदायक जानजो, या में संशय नांहि ॥२४९॥

अर्थ—रवि, राहु, मंगल और शनि ये चार सूर्य स्वर के तत्त्वों के स्वामी हैं। अर्थात् पृथ्वी तत्त्व का स्वामी रवि है जल तत्त्व और वायु तत्व का स्वामी राहु है। अग्नि तत्त्व का स्वामी मंगल है। तथा आकाश तत्त्व का स्वामी शनि है—२४७

पृथ्वी तत्त्व का स्वामी बुध, जल तत्त्व का स्वामी चन्द्र, अग्नि तत्त्व का स्वामी शुक्र, और वायु तत्त्व का स्वामी गुरु है—२४८

इसलिए अपने-अपने तत्त्वों में ये ग्रह अथवा वार शुभ फलदाता है—२४९

चन्द्र स्वर की अवस्थाएं

दोहा—जय तुष्टि पुष्टि रति क्रीड़ा हास्य कहाय ।
इम अवस्था चन्द्र की, षट् जल भू में थाय ॥२५०॥
ज्वर निद्रा प्रयास फुन, कम्प चतुर्थ पिछान ।
वदे अवस्था चन्द की, वायु अग्नि में जान ॥२५१॥
प्रथम गतायु दूसरी मृत्यु नभ के संग ।
कही अवस्था चन्द की, द्वादश एम अभंग ॥२५२॥

अर्थ—जय, तुष्टि, पुष्टि, रति, खेलकूद, हास्य ये छः अवस्थाएं चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व में होती हैं—२५०

ज्वर, निन्द्रा, परिश्रम और कम्पन जब चन्द्र स्वर में वायु तत्त्व अथवा अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय शरीर में ये चार अवस्थाएं होती हैं—२५१

जब चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता है तब आयु का क्षय और मृत्यु होती है। पांचों तत्त्वों में कुल मिलाकर ये बारह अवस्थाएं चन्द्र की होती हैं—२५२

पांच रसों की तत्त्वों द्वारा पहचान

दोहा—मधुर कसायल तिक्त फुन, खारा रस कहवाय ।
नभ कटुक रस पंच के, अनुक्रम दिये वताय ॥२५३॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जैसा रस आस्वाद की, होय प्रीत मन मांहि।
तैसा तत्त्व पिछानिये, शंका करजो नांहि ॥२५४॥

अथ—पृथ्वी तत्त्व में मधुर, जल तत्त्व में कसायला, वायु तत्त्व में तीखा, अग्नि तत्त्व में खारा, तथा आकाश तत्त्व में कड़वा स्वाद की चाह होती है। यहां पर पांचों तत्त्वों के रस अनुक्रम से बतला दिये गये हैं—२५३

जिस समय जैसे रस के स्वाद की इच्छा मन में हो उस समय उसी तत्त्व को स्वर में समझना चाहिए। इसमें ज़रा भी शंका को स्थान नहीं है—२५४

तत्वों में नक्षत्र

दोहा—श्रवण धनिष्टा रोहिणी, उत्तराषाढ़ा ऽभीच।
ज्येष्ठा अनुराधा सप्त, श्रेष्ठ मही के बीच ॥२५५॥
मूल उत्तरा-भाद्रपद, रेवती आद्रा जान।
पूर्वाषाढ़ अरु शतभिषा, अश्लेषा जल ठान ॥२५६॥
मघा पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वा-भाद्रपद स्वात।
कृतिका भरणी पुष्य ये, सप्त अग्नि विख्यात ॥२५७॥
हस्त विशाखा मृगशिरा, पुनरवसु चित्राय।
उत्तराफाल्गुण अश्विनी, अनिल धाम सुखदाय ॥२५८॥

अर्थ—१. श्रवण, धनिष्टा, रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, अभिजित, ज्येष्ठा, और अनुराधा ये सात नक्षत्र पृथ्वी तत्त्व के हैं तथा शुभ फलदायी हैं—२५५

२. मूल, उत्तरा भाद्रपद, रेवती, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा और अश्लेषा ये सात नक्षत्र जल तत्त्व के हैं—२५६

३. मघा, पूर्वाफाल्गुणी, पूर्वभाद्रपद, स्वाति, कृतिका, भरणी और पुष्य ये सात नक्षत्र अग्नि तत्त्व के हैं—२५७

४. हस्त, विशाखा, मृगशिरा, पुनरवसु, चित्रा, उत्तराफाल्गुणी और अश्विनी ये सात नक्षत्र वायु तत्व के हैं—२५८

स्वरों में तत्त्वों का क्रम

दोहा—नभ थी पवन-पवन थकी पावक तत परकास।
पावक थी पानी लखो, मही लखो फुनि तास ॥२५९॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, और जल से पृथ्वी तत्त्व का प्रकाश होता है—२५६

तत्त्वों में गुणों की उत्पत्ति

दोहा—क्रोधादिक अग्नि उदय, इच्छा वायु मंझार।
　　क्षान्त्यादिक गुण मन विषय, जल भू मांहि विचार ।।२६०।।

अर्थ—अग्नि तत्त्व में क्रोध का उदय, वायु तत्त्व में इच्छा का उदय, जल और पृथ्वी तत्त्व में क्षमादि[५८] दस प्रकार के यति धर्म रूप दस गुणों की उत्पत्ति होती है—२६०

तत्त्वों के द्वार

दोहा—गुदा द्वार धरती तणो, लिंग उदक नो जान।
　　तेज द्वार चक्षु सुधी, वायु घ्राण बखान ।।२६१।।
　　श्रवण द्वार नभ का कह्या, शब्दादिक आहार।
　　चिदानन्द इन पांच को, जानो उर निहार ।।२६२।।

अर्थ—पृथ्वी तत्व का द्वार गुदा है, जल तत्त्व का द्वार लिंग है, अग्नि तत्त्व का द्वार नेत्र है, वायु तत्त्व का द्वार नासिका है—२६१

आकाश तत्त्व का द्वार कान है, इनके शब्दादिक आहार हैं। चिदानन्द जी महाराज कहते हैं कि इनको अपने मन में चिन्तन करो—२६२

युद्ध के लिए प्रस्थान

दोहा—चन्द्र[५९] चलत नहीं चालिए, युद्ध करन कुं मीत।
　　चलत चन्द में तेहना, शत्रु की होय जीत ।।२६३।।

५८—दस प्रकार के यति धर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य।

५९—घोरतरः संग्रामो हुताशने, मारुति भंग एव स्यात्।
　　गगने सैन्य विनाशं, मृत्युर्वा युद्ध पृच्छायाम् ।।५६।।
　　ऐन्द्रे विजयः समरे ततोऽधिको वाञ्छितश्च वरुणे स्यात्।
　　सन्धिर्वा रिपुंभंगात्स्वसिद्धिसंसूचनोपेतः ।।५७।।　　(ज्ञानार्णवे)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

दिवसपति स्वर मांहि जो, युद्ध करन कुं जाय।
विजय लहे संग्राम में, शत्रु सेन पलाय ॥२६४॥
अपना सुर दक्षिण चले, शत्रु का फुनि तेह।
जीत लहे संग्राम में, प्रथम चढ़े नर जेह ॥२६५॥
शशि चलत कोऊ भूपति, मत जावो रण मांहि।
खेत जीत अरियण लहे, या में संशय नांहि ॥२६६॥
सुखमन सुर संग्राम में, होय शीश पर वार।
निकस युद्ध में प्राण जो, कौन बचावन-हार ॥२६७॥
दूर देश संग्राम में, जातां शशि परधान।
निकट युद्ध में जानजो, जयकारी स्वर भान ॥२६८॥

अर्थ—१. हे मित्र ! चन्द्र स्वर चलते हुए युद्ध करने के लिए कदापि नहीं जाना चाहिए। यदि चन्द्र स्वर चलते समय युद्ध करने को जाओगे तो शत्रु की जीत होगी—२६३

२. यदि कोई सूर्य स्वर चलते समय लड़ाई करने को जाएगा तो उसकी अवश्य जीत होगी। और शत्रु की सेना मैदान छोड़कर भाग जाएगी—२६४

३. यदि अपना और शत्रु दोनों के दक्षिण (सूर्य) स्वर चलते हों तो जो नर पहले चढ़ाई करे उसकी जीत हो—२६५

४. चन्द्र स्वर में युद्ध करने को कभी नहीं जाना चाहिए। जो व्यक्ति जाएगा वह अवश्य हारेगा और शत्रु की जीत होगी। यह निःसन्देह है—२६६

५. सुखमन स्वर में गमन करने वाले के सिर का छेदन होगा जिससे वह लड़ाई में मारा जाएगा। उसे कोई भी नहीं बचा सकता—२६७

६. बहुत दूर देश में संग्राम के लिए चन्द्र स्वर में तथा निकट देश में सूर्य स्वर में प्रस्थान करना चाहिए। ऐसा करने से अपनी विजय होगी—२६८

अर्थ—युद्ध के प्रश्न में अग्नि तत्त्व में तीव्र संग्राम, वायु तत्त्व में भंग होना, आकाश तत्त्व में सेना का विनाश अथवा मृत्यु कहे—५६

पृथ्वी तत्व में संग्राम विजय, जल तत्त्व में वांछित से भी अधिक जय, अथवा सन्धि हो तथा शत्रु के भंग होने से अपनी सिद्धि की सूचना करे—५७

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

युद्ध के विषय में प्रश्न

दोहा—सन्मुख[६०] उर्ध्व दिशा रही, युद्ध प्रश्न करे कोय।
सम अक्षर शशि सुर हुआ, जीत तेहनी होय ॥२६९॥

पूछे दक्षिण पूठ थी, दूत प्रश्न करे कोय।
विषमाक्षर भानु हुआ, खेत विजय लहे सोय ॥२७०॥

युद्ध युगल की पूर्ण दिशी, रही प्रश्न करे कोय।
प्रथम नाम जस उच्चरे, जीत लहे नर सोय ॥२७१॥

रिक्त पक्ष में आय के, मिथुन युद्ध परसंग ॥
पूछत[६१] पहिला हारि है, दूजा रहत अभंग ॥२७२॥

युद्ध प्रयाण के विषय में प्रश्न

करत युद्ध परियाण वा, रिक्त मांहि लहे हार।
अल्प बली भूपति थकी, महाबली चित्त धार ॥२७३॥

६०—पूर्णे पूर्वस्य जयो रिक्ते त्वितरस्य कथ्यते तज्ज्ञैः।
उभयोर्युद्धनिमित्ते दूते नाशंसिते प्रश्ने ॥४७॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—कोई दूत आकर युद्ध के निमित्त भरे स्वर में प्रश्न करे तो पहले पूछने वाले की जीत हो। यदि रिक्त (खाली) स्वर में पूछे तो दूसरे की जय हो और दोनों चलें तो दोनों की जय हो—४७

६१—जयति समाक्षरनामा वामावाहस्थितेन दूतेन।
विषमाक्षरस्तु दक्षिणादिक्संस्थेनास्त्रसंपाते ॥४९॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—दूत आकर जिसके लिए पूछे उसके नाम के अक्षर सम हों (दो चार, छः, चौदह इत्यादि) और बांईं नाड़ी बहती हुई की तरफ खड़ा होकर पूछे तो शस्त्रपात होते हुए भी जीते तथा जिसके नाम के विषमाक्षर (१, ३, ५ इत्यादि) हों और दाहिनी नाड़ी बहती हुई में खड़ा रहकर पूछे तो उसकी भी जीत हो। इस प्रकार जय पराजय के प्रश्न का उत्तर कहें—४९

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

महा कटक सन्मुख चले, थोड़ा सा दल जोड़ ।
पूरण तत प्रकाश में, जीत लहे विधि कोड़ ॥२७४॥

अर्थ—१. यदि कोई चन्द्र स्वर चलते समय—सामने अथवा ऊंचे रहकर लड़ाई के विषय में प्रश्न करे और प्रश्न के अक्षर सम (२, ४, ६, ८, १० इत्यादि) हों तो कह देना चाहिए कि तुम्हारी जीत होगी—२६९

२. यदि कोई दाहिने अथवा पीछे रहकर लड़ाई के विषय में प्रश्न करे और प्रश्न के अक्षर विषम (१, ३, ७, ९ इत्यादि) हों और उस समय सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिए कि तुम्हारी जीत होगी—२७०

३. यदि कोई युद्ध के विषय में पूर्ण स्वर की तरफ से आकर दोनों पक्ष के लिए प्रश्न पूछे तो जिसका नाम पहले बोले उसकी जीत होगी—२७१

४. यदि खाली स्वर की तरफ से दोनों पक्षों के लिए युद्ध का प्रश्न करे तो जिसका नाम पहले लिया जाएगा उसकी हार होगी और दूसरे पक्ष की जीत होगी—२७२

१. अथवा यदि खाली स्वर में युद्ध के लिए प्रयाण करे तो महाबली राजा भी अल्पबली से हार जाए—२७३

२. यदि पूर्ण स्वर में युद्ध के लिए प्रयाण करे तो उसके पास थोड़ी-सी सेना होने पर भी बहुत बड़ी सेना को हराकर सब प्रकार से विजय प्राप्त करे—२७४

युद्ध करने तथा युद्ध प्रयाण के विषय में पश्न

दोहा—मही तत्त्व में युद्ध वा, करे प्रश्न परियाण ।
दोऊ दल सम उतरें, इम निश्चय करि जान ॥२७५॥
करे प्रश्न परियाण वा, वरुण तत्त्व के मांहि ।
दोय मिलें तिहां परस्पर, युद्ध जानजो नांहि ॥२७६॥
महि उदक होय एक कुं, दूजा कुं जो नांहि ।
महि वरुण तिहां जीतिये, या में संशय नांहि ॥२७७॥
प्रश्न करे अथवा लड़े, अथवा करे प्रयाण ।
बहत हुताशन तेहनी, रण में होवे हान ॥२७८॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रश्न पयाण जुध करे, अनिल तत्त्व में कोय।
निश्चय थी संग्राम में, भागे पहला सोय ॥२७९॥
व्योम बहत कोऊ भूपति, करे प्रश्न परियाण।
अथवा युद्ध तिण अवसरे, करत मरण तस जान ॥२८०॥
चन्द्र चलत भूपति मरण, सम जोधा रवि मांहि।
वायु बहत भाजे कटक, संशय करजो नांहि ॥२८१॥
नाम ध्येय सदृश कही, पूछे पूरण मांहि।
प्रथम नाम जस उच्चरे, तस जय संशय नांहि ॥२८२॥

अर्थ—(१) यदि पृथ्वी तत्त्व में कोई युद्ध के लिए प्रश्न करे अथवा युद्ध के प्रयाण के लिए प्रश्न करे या प्रयाण करे तो कह देना चाहिए कि दोनों दल बराबर रहेंगे—२७५

(२) यदि प्रश्न कर्त्ता युद्ध में जाने के लिए प्रश्न पूछे और उत्तर देने वाले के स्वर में जल तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि दोनों दलों में सन्धि होगी—२७६

(३) पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व का एक को उदय हो और दूसरे को उदय न हो तो जिसका उदय हो उसकी जीत हो इसमें सन्देह नहीं—२७७

(४) युद्ध के लिए प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा प्रयाण करे उस समय यदि अग्नि तत्त्व बहता हो तो उसकी युद्ध में अवश्य हार हो—२७८

(५) यदि वायु तत्त्व में कोई युद्ध के लिए प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा युद्ध के लिए प्रयाण करे तो उसे युद्ध में हार कर भागना पड़ेगा—२७९

(६) आकाश तत्त्व में कोई राजा युद्ध के लिए प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा युद्ध के लिए प्रयाण करे तो युद्ध में उस राजा की मृत्यु होगी—२८०

(७) चन्द्र स्वर चलते समय युद्ध सम्बन्धी प्रश्न करे, लड़ाई करे अथवा प्रयाण करे तो राजा की मृत्यु हो। सूर्य स्वर में यदि वायु तत्त्व बहता हो तो बराबर के योद्धा होते हुए भी प्रश्नादि कर्ता की सेना हार खाकर भाग जावे। इसमें संशय नहीं है—२८१

(८) पूर्ण नाड़ी में दोनों के नाम लेकर प्रश्न करे तो जिसका पहले नाम

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लेवे उसकी जय हो, इसमें संशय नहीं—२८२

युद्ध में घायल सम्बन्धी प्रश्न

दोहा—रण में जो घायल हुए, तेहनी पूछे बात।
चिदानन्द ते पुरुष कुं, उत्तर एम कहात ॥२८३॥
अपनी दिशा से आयके, पूछे पूरण मांहि।
जास नाम कहे तास सुन, घाव जानजो नांहि ॥२८४॥
पूछे खाली सुर विषय, घायल का परसंग।
जस पूछे तस रण विषय, घाव कहिजे अंग ॥२८५॥
पृथ्वी उदर बताइये, जल चलता पग जान।
पावक उर हिरदय विषय, वायु जंघा बखान ॥२८६॥
घाव शीश में जानजो, चलत तत्त्व आकाश।
सुर में तत्त्व विचार के, पृच्छक कुं इम भाष ॥२८७॥

अर्थ—यदि कोई युद्ध में घायल होने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे तो उसे इस प्रकार उत्तर देना चाहिए—२८३

(१) पूर्ण दिशा में आकर पूर्ण दिशा में ही जिस घायल के लिए प्रश्न करे उस घायल को कोई घाव नहीं है। ऐसा कह देना चाहिए—२८४

(२) खाली स्वर की तरफ घायल का नाम लेकर प्रश्न करे तो कह देना चाहिए कि घायल के शरीर में घाव है—२८५

(३) यदि पृथ्वी तत्त्व में प्रश्न करे तो पेट ये घाव है। यदि जल-तत्त्व में प्रश्न करे तो पग में घाव है। यदि अग्नि तत्त्व में प्रश्न करे तो छाती तथा हृदय में घाव है। यदि वायु तत्त्व में प्रश्न करे तो जांघ में घाव है। ऐसा कह देना चाहिए—२८६

(४) यदि आकाश तत्त्व में प्रश्न करे तो घायल को सिर में घाव है। स्वर के तत्त्व को पहचान कर प्रश्न कर्ता को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए—२८७

युद्ध करते समय तत्त्व विचार

दोहा—पूरण प्राण प्रवाह में, निज तत घर सुर होय।
प्रबल गयो आन मिला, सुख से जय ले सोय ॥२८८॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अपने सुर जल तत्त्व में, शत्रु कुं नहीं होय।
रिपु मरण निज हाथ थी, विजय अपनी होय ॥२८९॥

अर्थ—(१) अपने पूर्ण स्वर में चलते समय यदि स्वर में संगाति तत्त्व आदि हों तो समझ लेना चाहिए कि यह योग अति प्रबल है। उस समय युद्ध के लिए चढ़ाई कर देने से चढ़ाई करने वाले को अवश्य ही सुखपूर्वक विजय प्राप्त हो—२८८

यदि अपने स्वर में जल तत्त्व हो और शत्रु के न हो तो युद्ध के लिए चढ़ाई कर देने पर शत्रु को अपने हाथों से मार कर विजय प्राप्त होगी—२८९

गर्भ[६२] सम्बन्धी प्रश्न विचार

दोहा—गर्भ तणा प्रसंग अब, सुनना चित्त लगाय।
स्वर विचार तासुं कहो, जो कोई पूछे आय ॥२९०॥
क्लीव कन्यका सुत जनम, गर्भ पतन वा धार।
दीर्घ अल्प आयु तणा, भाखो एम विचार ॥२९१॥

६२—गर्भ सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देने से पहले इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि गर्भ है या नहीं :—

बन्ध ओर जो आय करि, है पूछे जो कोय।
बन्ध ओर तो गर्भ है, बहते स्वर नहीं होय। (चरणदास)

अर्थ—पृच्छक यदि चलते स्वर की तरफ आकर प्रश्न करे तो स्त्री के गर्भ नहीं है। यदि बन्द स्वर की तरफ से आकर प्रश्न करे तो गर्भ है।

वरुण-महेन्द्रौ शस्तौ प्रश्ने गर्भस्य पुत्रदौ ज्ञेयौ।
इतरौ स्त्री—जन्मकरौ शून्यं गर्भस्थ नाशाय ॥६४॥
नासा प्रवाह दिग्भागे गर्भार्थी यस्तु पृच्छति।
पुरुषः पुरुषादेशं शून्यभागे तथांगना ॥६५॥
विज्ञेयः सन्मुखे पण्ढः सुषुम्नायामुभौ शिशू।
गर्भहानिस्तु संक्रान्तौ समे क्षेमं विनिर्दिशत् ॥६६॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जल तथा पृथ्वी इन दोनों तत्त्वों में प्रश्न हो तो पुत्र जन्मेगा।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चन्द्र चलत पूछे कोउ, पूरण दिशि में आय ।
गर्भवती के गर्भ में, तो कन्या कहवाय ।।२९२।।
दिवसपति पूरण चलत, पूछे पूरण मांहि ।
पुत्र कूख में जानजो, या में संशय नांहि ।।२९३।।
सुर सुखमन में आय के, पूछे गर्भ विचार ।
नारी केरी कूख में, गर्भ नपुंसक धार ।।२९४।।
भानु चलत पूछे कोउ, वाकुं चन्दा होय ।
पुत्र जन्म तो जानजो, फुनि जीवे नहि सोय ।।२९५।।
दिवसपति संचार में, करे प्रश्न कोउ आय ।
सुर सूरज वाकुं हुआ, सुखदायक सुत थाय ।।२९६।।
करे प्रश्न शशि सुर विषय, वाकुं जो रवि होय ।
होय सुता जीवे नहीं, कहो एम तस जोय ।।२९७।।
चन्द्र चलत आवी कहे, वाकुं चन्दा उद्योत ।
कन्या निश्चय तेह ने, दीर्घ स्थिति धर होत ।।२९८।।
चलत मही सुत जानजो, प्रश्न करे तिन वार ।
राजमान सुखिया घना, रूपे देव-कुमार ।।२९९।।
उदक तत्त्व में आय के, करे प्रश्न जो कोय ।
सुत सुखिया धनवन्त तस, षट् रस भोगी होय ।।३००।।

अग्नि तथा वायु तत्त्व में प्रश्न हो तो कन्या होगी । खाली स्वर में प्रश्न हो तो गर्भ नष्ट हो जाएगा—६४

जिस तरफ का स्वर चलता हो उसी तरफ होकर प्रश्न करे और वह प्रश्न करने वाला पुरुष हो तो पुत्र हो तथा खाली स्वर की तरफ होकर प्रश्न करे तो पुत्री हो—६५

यदि सन्मुख होकर प्रश्न करे तो नपुंसक सन्तान होगी ऐसा कहे । तथा दोनों स्वर पूर्ण भरे हों तो दो बालक होना कहे । पवन के पलटने के समय पूछे तो गर्भ की हानि हो और दोनों तरफ पवन सम बहती हुई में पूछे तो क्षेम कुशल कहे—६६

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तत्त्व युगल जो भानु धर, चलत पुत्र पहिछान।
निशानाथ घर होय तो, कन्या हिरदे आन ॥३०१॥
पूछत पावक तत्त्व में, गर्भ पतन तस होय।
जन्मे तो जीवे नहीं, विगत-पुण्य नर सोय ॥३०२॥
प्रश्न प्रभंजन तत्त्व में, करतां छाया होय।
अथवा विज्ञ विचारजो, गले गर्भ में सोय ॥३०३॥
पूछत नभ परकास में, गर्भ नपुंसक जान।
चलत चन्द कन्या कहो, बांझ भाव चित्त आन ॥३०४॥
शून्य युगल सुर मांहि जो, गर्भ प्रश्न करे कोय।
ता थी निश्चय करि कहो, कन्या उपजे दोय ॥३०५॥
चन्द्र सूर दोउ चलत, रवि होय बलवान।
गर्भवती के गर्भ में, पुत्र युगल पहिचान ॥३०६॥
चन्द्र सूर दोउ चलत, चन्द्र होय बलवान।
गर्भवती के गर्भ में, सुता युगल पहिचान ॥३०७॥

अर्थ—अब गर्भ के विषय में स्वर विचार द्वारा फल कहते हैं यदि कोई आकर प्रश्न करे तो स्वर का विचार करके उस-उस प्रकार उत्तर देना चाहिये—२९०

नपुंसक, पुत्री अथवा पुत्र का जन्म होगा ? गर्भ स्थिर रहेगा अथवा गिर जायेगा ? सन्तान दीर्घायु वाली होगी अथवा अल्पायुवाली होगी ? इन सब बातों का उत्तर स्वरोदय विचार से वर्णन करते हैं—२९१

१. यदि चन्द्र स्वर चलता हो तथा चलते स्वर की तरफ आकर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री तो कह देना चाहिए कि पुत्री होगी—२९२

२. यदि सूर्य स्वर चलता हो तथा उसी चलते स्वर की तरफ आकर कोई प्रश्न करे कि गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा अथवा पुत्री ? तो कह देना चाहिए कि पुत्र होगा—२९३

३. यदि सुखमना स्वर चलता हो उस समय कोई आकर प्रश्न करे कि

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

गर्भवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री? तो कह देना चाहिए कि नपुंसक होगा—२९४

४. यदि अपना सूर्य स्वर चलता हो तथा उधर से ही आकर कोई गर्भ विषयक प्रश्न पूछे परन्तु पूछने वाले का चन्द्र स्वर चलता हो तो पुत्र का जन्म होगा परन्तु जीवेगा नहीं—२९५

५. यदि दोनों (अपना और पूछने वाले) के सूर्य स्वर चलते हों तो कह देना चाहिये कि पुत्र होगा उसकी दीर्घ आयु होगी एवं सुख देने वाला होगा—२९६

६. यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो और पूछने वाले का सूर्य स्वर चलता हो तो कह देना चाहिए कि पुत्री का जन्म होगा परन्तु जीवेगी नहीं—२९७

७. यदि दोनों (अपने और पूछने वाले) के चन्द्र स्वर चलते हों तो कह देना चाहिए कि कन्या का जन्म होगा और उसकी दीर्घ आयु होगी—२९८

८. यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो और उस समय कोई गर्भ संबंधी प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि पुत्र जन्म होगा वह रूपवान राजमान्य तथा सुखी होगा—२९९

९. यदि सूर्य स्वर में जल तत्त्व चलता हो और उस समय गर्भ सम्बन्धी प्रश्न पूछे तो कह देना चाहिए कि पुत्र का जन्म होगा वह सुखी, धनवान और छः रसों का भोगी होगा—३००

१०. यदि सूर्य स्वर में पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो तो पुत्र जन्म, और यदि ये दोनों तत्त्व चन्द्र स्वर में चलते हों तो कन्या का जन्म होगा, और वह सुखी, धनवती, रूपवती तथा छः रसों को भोगने वाली होगी—३०१

११. यदि गर्भ सम्बन्धी प्रश्न करते समय स्वरों में अग्नि तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि गर्भ गिर जायेगा अथवा यदि सन्तान हो भी जायेगी तो तुम्हारे पापोदय के कारण यह सन्तान जीवेगी नहीं—३०२

१२. यदि गर्भावस्था सम्बन्धी प्रश्न करने पर स्वरों में वायु तत्त्व चलता हो तो कह देना चाहिए कि पिण्डाकृति बनी है वह गिर जायेगी अथवा गर्भ ही गल जायेगी—३०३

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१३. यदि सूर्य स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो तो प्रश्न कर्त्ता को कह देना चाहिए कि नपुंसक का जन्म होगा। यदि चन्द्र स्वर में आकाश तत्त्व चलता होगा तो बांझ कन्या का जन्म होगा—३०४

१४. यदि दोनों (अपने और प्रश्न कर्त्ता) के सुखमना स्वर चलते हों तो कह देना चाहिए कि दो कन्याओं का जन्म होगा—३०५

१५. चन्द्र सूर्य दोनों स्वर चलते समय गर्भ सम्बन्धी प्रश्न करे और उस समय यदि सूर्य स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिए कि दो पुत्रों का जन्म होगा—३०६

१६. कोई दोनों स्वर चलते समय गर्भ विषयक प्रश्न करे और उस समय यदि चन्द्र स्वर तेज़ चलता हो तो कह देना चाहिए कि दो कन्याओं का जन्म होगा—३०७

तत्त्वों में स्त्री के गर्भ धारण[63] तथा सन्तान जन्म सम्बन्धी

दोहा—जौन तत में नारी कुं, रहे गर्भ अवधान।
अथवा जन्मे तेहनो, फल अनुक्रम पहिचान ॥३०८॥

६३—शिव स्वरोदय में लिखा है कि—

शंखवल्लीं गवां दुग्धे पृथ्व्यापो बहते यदा।
भर्तु रेव वदे वाक्यं गर्भं देहि त्रिभिर्वचः ॥२८७॥

अर्थ—जिस समय स्वर में पृथ्वी अथवा जल तत्त्व बहता हो उस समय स्त्री को गौ के दूध में शंखावली को पिलावे फिर स्त्री अपने भर्ता को तीन बार भोग की प्रार्थना करे—२८७

ऋतुस्नाता पिवेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत्।
रूपलावण्यसम्पन्नो नरसिंहः प्रसूयते ॥२८८॥

अर्थ—जब स्त्री ऋतु स्नान के अनन्तर उक्त औषध को पीले तब पुरुष ऋतुदान दे तो रूपवान, लावण्ययुक्त, (सुन्दर), पराक्रमी और पुरुषों में सिंह समान बालक पैदा होता है—२८८

सुषुम्ना सूर्यवाहेन ऋतु योजयेत्।
अंगहीनः पुमान यस्तु, जायते त्रासविग्रहः ॥२८९॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

राजमान सुखिया महा, अथवा आपहु भूप।
रहे गर्भ धरणी चलत, होवे काम सरूप ॥३०९॥
धनवन्ता भोगी सुखी, चतुर विचक्षण तेह।
नीतिवंत नारी गरभ, जल चलतां रहे जेह ॥३१०॥
रहे गर्भ पावक चलत, अल्प उमर ते जान।
जीवे तो दुखिया हुवे, जनमत माता हान ॥३११॥
दुखी देश भ्रमण करे, विकल चित्त बुद्धि हीन।
रहे गर्भ जो वायु में, इम जानो परवीन ॥३१२॥
रहे गर्भ नभ चालतां, गर्भ तणी होय हान।
जन्म तेण फल तत्त्व में, इम ही अनुक्रम जान ॥३१३॥
सुत पृथ्वी जल में सुता, चलत प्रभंजन जान।
गर्भ पतन पावक विषय, क्लीव गगन मन आन ॥३१४॥
अपने अपने स्वर विषय, है परधान विचार।
तत पक्ष अवलोकतां, यह दूजा निरधार ॥३१५॥
संक्रम अवसर आयके, प्रश्न करे जो कोय।
अथवा गर्भ रहे तदा, नाश अवश्य तस होय ॥३१६॥
कह्या एम संक्षेप से, गर्भ तणा अधिकार।

अर्थ—जिस तत्त्व में नारी को गर्भ रहता है अथवा सन्तान का जन्म होता है, उसका फल हम अनुक्रम से कहते हैं उसे समझ कर निश्चय करें—३०८

अर्थ—जो पुरुष सूर्य स्वर के प्रवाह के संग सुषुम्ना स्वर के बहने के समय ऋतुदान देता है उसको अंगहीन और कुरूप पुत्र उत्पन्न होता है—२८९

ऋत्वारम्भे रविः पुंसां शुक्रान्ते वा सुधाकरः।
अनेन क्रम-योगेन नादत्ते दैव दारुकम् ॥२९२॥

अर्थ—यदि स्त्री को ऋतुदान देने के प्रारम्भ में पुरुष का सूर्य स्वर चले और वीर्यपात के अनन्तर चन्द्र स्वर बहने लगे तो इस क्रम योग में स्त्री गर्भ धारण नहीं करती है—२९२

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(१) यदि स्त्री को पृथ्वी तत्त्व में गर्भ रहे तो उस समय जो जीव गर्भ में आवेगा वह जन्म लेने पर राज्यमान्य, महान् सुखी, अथवा स्वयं ही राजा हो और कामदेव के समान रूप लावण्य युक्त होगा—३०९

(२) यदि स्त्री को जल तत्त्व में गर्भ रहे तो उस समय जो जीव उसके गर्भ में आवेगा वह जन्म लेने पर धनवान, भोगी, सुखी, चतुर, विचक्षण, नीतिवान होगा—३१०

(३) यदि नारी को अग्नि तत्त्व में गर्भ रहे तो उस जीव की उल्पायु होगी। यदि जीवित रहेगा तो अति दुखिया होगा और उसके जन्म लेने पर उसकी माता मर जायेगी—३११

(४) यदि नारी को वायु तत्त्व में गर्भ रहे तो वह जीव जन्म लेने पर दु:खी, देश भ्रमण करने वाला, विकल चित्त वाला, और मूर्ख होगा। यह बात बुद्धिमानों को नि:सन्देह जाननी चाहिए—३१२

(५) यदि आकाश तत्त्व में गर्भ रहे तो गर्भ गिर जायेगा।

तथा इन उपर्युक्त तत्त्वों में जो फल बतलाया गया है यदि इन तत्त्वों में सन्तान का जन्म हो तो भी वैसा ही फल समझ लेना चाहिए—३१३

(६) पृथ्वी तत्त्व में पुत्र, जल तत्त्व में पुत्री का जन्म हो। वायु तत्त्व में गर्भ चल जायेगा अर्थात् जो पिण्डाकृति बनी है वह गल जायेगी। अग्नि तत्त्व में गर्भ गिर जायेगा तथा आकाश तत्त्व में नपुंसक का जन्म होगा—३१४

(७) अपने अपने स्वरों में इसका प्रधान विचार है, तत्त्व का विचार करना यह दूसरा आधार है—३१५

(८) स्वर के संक्रम समय यदि कोई आकर गर्भ सम्बन्धी प्रश्न करे अथवा उस समय यदि गर्भ रहे तो उसके गर्भ का अवश्य नाश हो जायेगा—३१६

इस प्रकार हमने यहां पर संक्षेप से गर्भ सम्बन्धी विवेचन किया है।[६४]

६४—स्वरोदय में कुछ विशेष ज्ञातव्य प्रश्न जो कि इस ग्रन्थ में नहीं दिये गये यहां संक्षेप से लिखते हैं।

(१) वर्षा सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर स्वरोदय के मत से :—

वर्षा सम्बन्धी प्रश्न पृथ्वी तत्त्व में किया जावे तो वर्षा बरसेगी। जल

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

परदेश गमन समय स्वरों में तत्वों का विचार

दोहा—करत गवन परदेश में, ताका कहूं विचार ।।३१७।।
दक्षिण पश्चिम दिशि विषय, चन्द्र योग में जाय ।
गमन रहे परदेश में, सुख विलसे घर आय ।।३१८।।

तत्त्व में प्रश्न किया जावे तो मन इच्छित वर्षा हो। पवन मंडल में बादलों से दूर्दिन हो (बादल तो घिरें किन्तु वर्षा न हो) अग्नि तत्त्व में थोड़ी-सी वृष्टि हो।

ज्ञानार्णव प्र० २६ में कहा है कि :—

वर्षति भौमे मघवा वरुणेऽभिमतो मतस्तथाजस्रम् ।
दुर्दिन घनाश्च पवने, वन्हौ वृष्टिः कियन्मात्रा ।।५८।।

अर्थ—पृथ्वी तत्त्व में मेघ बरसना कहे। जल तत्त्व में मनोवांछित वर्षा निरन्तर होगी ऐसा कहे। वायु तत्व में दुर्दिन होगा, बादल होगा पर बरसेगा नहीं तथा अग्नि तत्त्व में किंचिन्मात्र वृष्टि होना कहे—५८

(२) धान्य प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रश्न—

धान्य प्राप्ति के सम्बन्ध में जल तत्त्व में प्रश्न करे तो धान्य प्राप्त हो। पृथ्वी तत्त्व में बहुत सरस धान्य प्राप्त हो। पवन तत्त्व में किसी स्थान में धान्य हो किसी स्थान में न हो। अग्नि तत्त्व में थोड़ा भी अन्न न हो।

ज्ञानार्णव प्र० २६ में कहा है कि—

सस्यानां निष्पत्तिः स्याद्वरुणे पार्थिव च सुश्लाघ्या ।
स्वल्पापि न चाग्नेये वायवाकाशे तु मध्यस्था ।।५६।।

अर्थ—कोई मनुष्य अनाज उत्पन्न होने का प्रश्न करे तो पृथ्वी तत्त्व और जल तत्त्व में धान्य की उत्पत्ति अच्छी होगी। अग्नि तत्त्व में स्वल्प अनाज भी न हो। वायु तत्त्व और आकाश तत्त्व में मध्यस्थ हो—५६

(३) विपरीत पवन बहने के विषय में—

ज्ञानार्णव प्र० २६ में कहा है कि—

व्यस्तः प्रथमे दिवसे चित्तोद्वेगाय जायते पवनः ।
धन हानिकृद् द्वितीये प्रवासदः स्यात्तृतीयेऽन्हि ।।४१।।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

पूरब उत्तर दिशि विषय, भानु जोग बलवन्त।
वंछितदायक कहत है, जो स्वरवेदी सन्त॥ ३१६॥

विदिशि अपनी-अपनी, अपने घर में लीन।
शुभ अरु इतर उभय विषय, समझ लेहु परवीन॥ ३२०॥

चलत चन्द नवि जाइये, पूरब उत्तर देश।
गया न पीछे बाहुड़े, अथवा लहे क्लेश॥ ३२१॥

दक्षिण पश्चिम मत चलो, भानु जोग में कोय।

इष्टार्थनाशविभ्रमस्वपद भ्रंशास्तथा महायुद्धम्।
दुःखं च पञ्चदिवसैः क्रमशः संजायते त्वपरैः॥४२॥

अर्थ—पवन प्रथम दिवस में विपरीत बहे तो चित्त को उद्वेग होता है और दूसरे दिन विपरीत बहे तो धन की हानि को सूचित करता है। तीसरे दिन विपरीत बहे तो परदेश गमन कराता है—४१

यदि पांच दिन तक विपरीत चले तो क्रम से इष्ट प्रयोजन का नाश, विभ्रम, अपने पद से भ्रष्ट होना, महायुद्ध और दुःख ये पांच फल होते हैं तथा इसी प्रकार अगले पांच-पांच दिन का फल विपरीत अर्थात् अशुभ जानना—४२

४—भूतादि सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर स्वरोदय से—

भूतादिगृहीतानां रोगार्त्तानां च सर्प-द्रंष्टानाम्।
पूर्वोक्त एव च विधिर्बोद्धव्यो मान्त्रिकावश्यम॥ ५०॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—यदि मंत्रवादी को दूत आकर पूछे कि अमुक भूतादि से गृहीत है तथा अमुक रोग से पीड़ित है, सर्प ने काटा है तो पूर्वोक्त विधि ही जाननी। यह आवश्यक है कि सम अक्षर वाले का बाईं नाड़ी के चलते हुए पूछना शुभ है और विषमाक्षर वाले का दाहिनी बहती हुई नाड़ी में पूछना शुभ है—५०

५—ग्राम, पुर, युद्ध, देश, गृह प्रवेश में तथा राजकुलादि में प्रवेश समय अथवा निकलते समय जिस तरफ के नासिका छिद्र में से पवन बहता हो उस तरफ के पग को आगे रखकर चलने से इच्छित फल की प्राप्ति होती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मरे न तौहु मरण सम, कष्ट अवश्य तस होय ॥ ३२२ ॥
दूर गमन में सर्वदा, प्रबल योग चितधार ।
निकट पंथ में मंदवह, जानिजे सुखकार ॥ ३२३ ॥

६—कार्य सिद्धि की इच्छा रखने वाले मनुष्य को चाहिये कि गुरु, बन्धु, राजा, प्रधान तथा दूसरे भी जो अपने को इच्छित वस्तु देने वाले हों उनको अपने पूर्णाङ्ग [चलते स्वर की तरफ रखना चाहिए। अर्थात् अपने बहते स्वर] की तरफ रखकर स्वयं बैठें।

७—आसन तथा शयन के समय अपने चलते स्वर की तरफ बैठाई हुई स्त्री अपने अधीन हो जाती है। इसके समान दूसरा कोई कार्मण नहीं है।

८—अपना अन्नदाता, गुरु आदि मालिक, अथवा मुरब्बी (बुजुर्ग) किसी भूल पर क्रोधित होकर दण्ड अथवा सज़ा देने को बुलावे तो जाने के समय जो स्वर चलता हो उस तरफ का पग प्रथम उठाकर चले और मालिक आदि के सामने पहुंचे, वहां पहुंच कर फिर अपना स्वर देखे। यदि अपना चन्द्र स्वर चलता हो तो मालिक की दाहिनी ओर खड़ा हो। यदि सूर्य स्वर चले तो मालिक की बांई ओर खड़ा होकर उनके प्रश्नों का उत्तर दे। ऐसा करने से निःसन्देह कुशलता पूर्वक विदा हो आवे और स्वामी आदि अधिकाधिक प्यार करें।

९—शत्रु के शस्त्र प्रहार करते समय का विचार—

रिपु शस्त्रसंप्रहारे रक्षति यः पूर्णगात्रभूभागम् ।
बलिभिरपि वैरिवर्गैर्न भेद्यते तस्य सामर्थ्यम् ॥ ६३ ॥ (ज्ञानार्णव)

अर्थ—शत्रु के शस्त्र प्रहार होते समय अपना जो स्वर भरा हो उस स्वर की तरफ वैरी रहे तो उस पुरुष की सामर्थ्य बलवान शत्रु से भी भेदी नहीं जा सकती अर्थात् वैरी के साथ लड़ाई होते वैरी की तरफ अपना भरा स्वर हो वही रखने से अपनी जीत होती है।

१०—छिपी वस्तु के विषय में प्रश्न निर्णय—

पवनप्रवेशकाले जीव इति प्रोच्यते महामतिभिः ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तत्त्व युगल शुभ है सुधी, करत प्रश्न परियाण।
नाम तेह नुं चित्त में, मही उदक मन आन ।। ३२४ ।।
उर्ध्व दिशापति चन्द्र है, अधो दिशापति भान।
क्रूर सौम्य कारज लखी, गमन भाव पहिचान ।। ३२५ ।।
सुखमन चलत न कीजिये, सुधि परदेश पयाण।
जावे तो जीवे नहीं, कारज हानि पिछान ।। ३२६ ।।
तत्त्व पंच के गमन में, होत भंग पचवीस[६५]।
देशिक ग्रंथ करि सदा, बीतत जान जोतीष ।। ३२७ ।।

अर्थ—(१) यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशा में गमन करने से खूब सुख भोग कर घर वापिस लौट आयेगा – ३१८

निष्क्रमणे निर्जीवः फलमपि च तयोस्तथा ज्ञेयम् ।। ७२ ।।

(ज्ञानार्णवे)

अर्थ—किसी छिपी वस्तु के विषय में पवन के प्रवेश काल में प्रश्न करे तो जीव है ऐसा कहना चाहिये और पवन के निकलते हुए काल में प्रश्न करे तो निर्जीव है ऐसा बड़े बुद्धिमान पुरुषों ने कहा है। तथा इनका फल भी वैसा ही कहा जाता है।

जीवे जीवति विश्वं मृते मृतं सूरिभि समुद्दिष्टम्।
सुख-दुःख-जय-पराजय-लाभालाभादि मार्गोऽयम् ।। ७३ ।।

(ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जो पवन के प्रवेश काल में जीव कहा सो जीते हुए समस्त वस्तु भी जीवित कहना, पवन के निकलते हुए मृतक कहा तो समस्त वस्तु निर्जीव ही कहना चाहिये। तथा सुख-दुःख, जय-पराजय, लाभ-अलाभ आदि का भी यही मार्ग है—७३

६५—पांच तत्त्वों में पच्चीस भेदों के लिए देखें फुटनोट ४६ यानि पृथ्वी तत्त्व में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पांचों तत्त्व क्रमशः भुगतते हैं। इसी प्रकार जल आदि तत्त्वों में भी पांच-पांच तत्त्व भुगतते हैं। इस प्रकार पांचों तत्त्वों में पच्चीस तत्त्व भुगतते हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(२) सूर्य स्वर चल रहा हो तो पूर्व और उत्तर दिशा में गमन करने से मन की इच्छा पूरी होगी, ऐसा स्वर विज्ञान के जानकारों का कहना है—३१९

(३) विदिशाओं में अपनी-अपनी नाड़ी के अनुसार जाने से ही कार्य की सिद्धि होगी। नाड़ी के विपरीत विदिशाओं में जाने से कार्य की सिद्धि कदापि नहीं होगी—३२०

(४) चन्द्र स्वर चलता हो तो पूरब और उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए जो जायगा वह या तो परदेश में ही मर जायेगा अथवा भारी कष्ट पायेगा—३२१

(५) यदि सूर्य स्वर चलता हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशा की तरफ नहीं जाना चाहिए यदि जायेगा तो उसकी मृत्यु होगी और यदि मौत से बच भी जायेगा तो मृत्यु तुल्य कष्ट को भोगना पड़ेगा—३२२

(६) दूर गमन के लिए हमेशा प्रबल योग में प्रयाण करना चाहिये और निकट में जाने के लिए मध्यम योग में भी प्रस्थान कर सकते हैं—३२३

(७) कोई परदेश जाने के लिए प्रश्न पूछे, यदि पृथ्वी तत्त्व अथवा जल तत्त्व चलता हो तो शुभ है—३२४

(८) ऊर्ध्व दिशा का स्वामी चन्द्र है, अधो दिशा का स्वामी सूर्य है। क्रूर और सौम्य कार्यों के विचार के साथ दिशा का विचार करके परदेश गमन करते समय तत्त्व को देखकर शुभ फलदाता तत्त्व में जाना चाहिये—३२५

(९) सुखमना स्वर में कभी भी परदेश नहीं जाना चाहिये यदि जायेगा तो कार्य में हानि तथा मरण होगा—३२६

(१०) पांच तत्त्वों में एक-एक के पांच भंग होने से कुल पच्चीस भंग होते हैं। इनका स्वरूप बड़े ग्रन्थों से ज्योतिषी को जानना चाहिये—३२७

[६६]परदेश गये हुए के लिये प्रश्न विचार

दोहा—जो नर वसत विदेश में, ताकी पूछे बात।
सुखी है अथवा दुःखी, ता थी एम कहात ॥ ३२८ ॥

६६—आयाति गतो वरुणे भौमे तत्रैव तिष्ठति सुखेन।
यात्यन्यत्र श्वसने मृत इति वह्नौ समादेश्यम् ॥ ५५ ॥ (ज्ञानार्णवे)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उदक तत्त्व जो होय तो, कहो तास धरी नेह।
सुख सिद्ध कारज करी, वेगे आवे तेह ॥ ३२९ ॥
होय मही सुर में उदय, पूछे प्रश्न तिवार।
तो निश्चय से भाखिये, दुःख नहीं तास लगार ॥ ३३० ॥
पर वासी निज थान तजि, गया दूसरे थान।
कछु चिन्ता चित्त तेह ने, चलत वायु कहो आन ॥ ३३१ ॥
रोग पीड़ तन में महा, पावक चलत बखान।
नभ परकाश विदेश में, मरण अवश तस जान ॥ ३३२ ॥

अर्थ—यदि कोई आकर परदेश गये हुए मनुष्य के विषय में प्रश्न पूछे कि यह सुखी है अथवा दुःखी है तो उस समय निम्न प्रकार से तत्त्वों का विचार कर उत्तर देना चाहिए—३२८

(१) यदि स्वर में जल तत्त्व हो तो प्रश्न पूछने वाले को प्रेमपूर्वक कहो कि परदेश गया मनुष्य सब कार्यों को सिद्ध कर शीघ्र घर वापिस लौट आयेगा—३२९

(२) यदि स्वर में पृथ्वी तत्त्व चलता हो उस समय विदेश गये हुए के लिए प्रश्न करे तो निश्चय पूर्वक कह देना चाहिये कि परदेश गया व्यक्ति आनन्दपूर्वक है उसे किसी प्रकार का दुःख अथवा कष्ट नहीं है—३३०

(३) यदि स्वर में वायु तत्त्व चलता हो उस समय कोई परदेश गये व्यक्ति के लिए आकर पूछे तो कहना चाहिए कि वह व्यक्ति अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को चला गया है और उसके मन में कुछ चिन्ता है—३३१

(४) यदि स्वर में अग्नि तत्त्व चलता हो उस समय कोई परदेश गये व्यक्ति के लिए आकर पूछे तो कहना चाहिए कि परदेश गये व्यक्ति के शरीर में महान

अर्थ—कोई परदेश गये हुए का प्रश्न करे तो इस प्रकार उत्तर देना चाहिए। प्रश्न करने वाला यदि जल तत्त्व में प्रश्न करे तो गया हुआ मनुष्य आता है। पृथ्वी तत्त्व में प्रश्न करे तो वहां ही सुखपूर्वक रहता है। पवन तत्त्व में पूछे तो जहां रहता था वहां से कहीं अन्यत्र गया है। यदि अग्नि तत्त्व हो तो मरण को प्राप्त हुआ है। ऐसा कहे—५५

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

रोग और पीड़ा है।

(५) यदि स्वर में आकाश तत्त्व चलता हो उस समय परदेश गये व्यक्ति के लिए कोई आकर पूछे तो कह देना चाहिए कि उसकी परदेश में मृत्यु हो गई है—३३२

परदेश गमन समय का विचार

दोहा—भानु विषम शशि मांहि सम, पगला भरतां मीत।
वार तिथि इन विधि करत, होवे सुन तस रीत॥ ३३३॥
चन्द चलत आगल घरी, डाबा पगला चार।
गमन करत तिन अवसरे, होय उदधिसुत वार॥ ३३४॥
सुर सूरज में जीमणा, पग आगल धरे तीन।
चलत गमन में होत है, दिनकर वार प्रवीन॥ ३३५॥
सुर विचार कारज करत, सफल होय तत्काल।
तत्वज्ञान एहना कह्या, चमत्कार चित्त भाल॥ ३३६॥
तिथि वार नक्षत्र फुनि, करण जोग दिगशूल।
लक्षण पात होरा लिए, दग्ध तिथि अरु मूल॥ ३३७॥
विष्टि काल कुलिका लगन, व्यतिपात स्वर भान।
शुक्र अस्त अरु चोवड़ी, यम घंटादिक जान॥ ३३८॥
इत्यादिक अपयोग को, या में नहीं विचार।
ऐसो ये सुरज्ञान नित, गुरुगम थी चित्त धार[६७]॥ ३३९॥

अर्थ—१. परदेश गमन समय यदि सूर्य स्वर में प्रयाण करना हो तो विषम पग से आगे चलना चाहिए तथा चन्द्र स्वर में गमन करना हो तो सम पग से आगे चलना चाहिए। यानि सूर्य स्वर में एक तीन, पांच, सात इत्यादि कदम आगे

६७—चरणदास कृत स्वरोदय ज्ञान में स्वर के विषय में इस प्रकार कहा है—
धरनि टरै गिरिवर टरै, ध्रुव टरै सुन मीत।
वचन स्वरोदय न टरै, कहे दास रणजीत॥

अर्थ—रणजीतदास (चरणदास) कहते हैं कि धरती, मेरु पर्वत, ध्रुव तारा, चाहे अपने स्थान से भ्रष्ट हो जावे परन्तु स्वरोदय का वचन नहीं टल सकता।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चलना चाहिए तथा यदि चन्द्र स्वर चलता हो तो दो, चार, छः आठ आदि कदम आगे धरना चाहिए। एवं वार और तिथि का भी स्वर के साथ मेल का विचार करना चाहिए—३३३

जैसे कि चन्द्र स्वर में प्रयाण करते समय बांयें पग से चार कदम आगे बढ़ना चाहिए तथा उस समय वार एवं तिथियों में से चन्द्र स्वर के अनुकूल होने चाहिए। जैसे कि सोम, बुध, वृहस्पति अथवा शुक्रवार में से कोई वार हो तथा तिथि का विचार भी पहले लिख आए हैं सो भी चंद्र की तिथि हो ऐसे योग में प्रस्थान करने से सब प्रकार की मनोकामनाएं प्राप्त होती है—३३४

यदि सूर्य स्वर में प्रयाण करना हो तो दाहिने पग से तीन कदम आगे बढ़ना चाहिए तथा उस दिन वार और तिथि भी सूर्य की होनी चाहिए। ऐसा योग मिलने से परदेश जाने वाले की सब प्रकार की मनोकामनाएं सिद्ध होती है—३३५

जो व्यक्ति स्वर का विचार करके कार्य करता है उसे तत्काल ही सफलता प्राप्त होती है। इसका तत्वज्ञान जो हमने यहां वर्णन किया है उसके चमत्कार का अनुभव करें—३३६

इस स्वरोदय के अनुसार विचार करके प्रस्थान करने वाले के लिए तिथि, वार, नक्षत्र, करण, योग, दिशाशूल, लक्षणपात, होरा, दग्ध तिथि तथा मूल—३३७

विष्टिकाल, कुलिका, लग्न, व्यतिपात, शुक्र अस्त, चौघड़िया, यमघट आदि ज्योतिष के कुयोगों का कोई विचार नहीं है क्योंकि स्वरोदय रूपी सूर्य के सामने सब हतप्रभ हो जाते हैं—३३८

अतः उपर्युक्त अपयोगों का स्वरोदय में कोई विचार नहीं है। ऐसे यह स्वरोदय ज्ञान किसी इस विषय के जानकार गुरु से प्राप्त करके सदा चिन्तन तथा मनन करते रहना चाहिए—३३९

स्वरोदय ज्ञान बिना ज्योतिषी

दोहा—विगत उदक सर हंस बिन काया तरु बिन पात।
देव रहित देवल यथा, चंद्र बिना जिम रात ॥ ३४० ॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

शोभित नहीं तप बिन मुनि, जिम तप समता टार।
तिम सुर ज्ञान बिना गणक, शोभत नहीं लगार।। ३४१ ।।
साधन बिन सुर ज्ञान को, लहे न पूरण भेद।
चिदानन्द गुरुगम बिना, साधन हु तन खेद।। ३४२।।

अर्थ—जिस प्रकार जल बिना तालाब प्यास को बुझाने में साधन रूप नहीं। जिस प्रकार आत्मा के बिना का शरीर मुर्दा हो जाता है, जिस प्रकार पत्तों के बिना वृक्ष शोभा नहीं पाता। जिस प्रकार देव मूर्ति के बिना मंदिर की कोई शोभा नहीं होती; जिस प्रकार चंद्रमा के बिना रात में अन्धेरा ही अन्धेरा सर्वत्र भरा रहता है अर्थात् चन्द्र बिना रात शोभा नहीं पाती—३४०

जिस प्रकार तपस्या बिना मुनि सुशोभित नहीं होता; जिस प्रकार समता बिना का तप आत्मा का कल्याण करने में असमर्थ रहता है; वैसे ही स्वरोदय ज्ञान के बिना ज्योतिषी की किंचिन्मात्र भी शोभा नहीं होती—३४१

क्योंकि स्वरोदय ज्ञान को साधन किये बिना ज्योतिषी वास्तविक तथा पूर्ण भेद को नहीं जान सकता। अतः प्रत्येक गणितज्ञ ज्योतिषी को इस स्वरोदय ज्ञान को किसी स्वरोदय ज्ञान के जानकार सुयोग्य गुरु के पास रहकर सीखना चाहिए। चिदानन्द जी कहते हैं कि सुयोग्य गुरु से इसका ज्ञान प्राप्त किये बिना मात्र काय क्लेश ही है—३४२

स्वर में तत्त्वों के अनुसार आरोग्य प्राप्ति

दोहा—दक्षिण स्वर भोजन करे, डाबे पीवे नीर।
डाबे करवट सोवतां, होय निरोग सरीर ।। ३४३ ।।
चलत चंद्र भोजन करे, अथवा नारी भोग।
जल पीवे सूरज विषय, तो तन आवे रोग ।। ३४४ ।।
होय अपच भोजन करत, भोग करत बल हीन।
जल पीवत विपरीत इम, नेत्रादिक बल क्षीण।। ३४५ ।।
पांच सात दिन इनि परे, चले रीत विपरीत।
होय पीड़ तन में कछु, जानो धरि परतीत।। ३४६ ।।
बहिर भूमि इंगला चलत, पिंगला में लघुनीत।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

शयन दिसा सूरज विषय, करिये निस दिन मीत ।। ३४७ ।।
दिवस चंद सुर संचरे, निशा चलावे सूर ।
स्वर अभ्यास ऐसो करत, होय उमर भरपूर ।। ३४८ ।।

अर्थ—दाहिने [सूर्य] स्वर में भोजन करना चाहिए, बांयें [चंद्र] स्वर में पानी पीना चाहिए। तथा बांई करवट सोना चाहिए। ऐसा करने से शरीर निरोग रहता है—३४३

चंद्र स्वर में भोजन करने से अथवा नारी को ऋतुदान देने से, सूर्य स्वर में पानी पीने से शरीर में रोगों की उत्पत्ति होती है—३४४

चंद्र स्वर में भोजन करने से अपच [बदहज़मी] हो जाती है। तथा चंद्र स्वर में स्त्री से संभोग करने से शरीर का बल क्षीरण हो जाता है एवं विपरीत [सूर्य] स्वर में पानी पीने से नेत्रों आदि का बल क्षीरण हो जाता है—३४५

यदि पांच सात दिन तक इसी प्रकार विपरीत स्वरों में उपर्युक्त कार्य करोगे तो यह बात निश्चित है कि शरीर में अवश्य ही कोई रोग अथवा पीड़ा हो जायेंगे—३४६

इंगला [चंद्र] स्वर में बड़ी नीति [टट्टी] जाना चाहिए। पिंगला [सूर्य] स्वर में पेशाव करना तथा सोना चाहिए, उपर्युक्त आचरण सदा करते रहो—३४७

दिन में चन्द्र स्वर चले, रात को सूर्य स्वर चले इस प्रकार के अभ्यास करने से आयु लम्बी होती है अर्थात् चंद्र स्वर में दिन का उदय हो तथा सूर्य स्वर में रात्रि का उदय हो तो उसकी आयु लम्बी होगी—३४८

स्वरों[६८] का समय

दोहा—कथित भाव विपरीत जो, सुर चाले तन मांहि ।
मरण निकट तस जानजो, यामें संशय नांहि ।। ३४९ ।।

---

६८. स्वरों सम्बन्धी कुछ आवश्यकीय ज्ञातव्य—

(१) वायु जब मंडल में प्रवेश करती है तो उसको जीव कहते हैं। जब मंडल में से निकलती है तब उसको मृत्यु कहते हैं। इसलिए इन दोनों का फल-ज्ञानी पुरुषों ने वैसा ही कहा है। यथा-ज्ञानार्णव में—

यस्मिन्न सति म्रियते जीवति सति भवति चेतना कलितः ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सार्ध युगल घटिका चले, चन्द सूर सुर वाय।
श्वास त्रयोदश सुखमन, जानो चित्त लगाय ।। ३५० ।।

जीवस्तदेव तत्त्वं विरला जानन्ति तत्त्वविदः ।। ७६ ।।

(२) चन्द्र नासिका में प्रवेश करते हुए वायु में पृथ्वी और जल तत्त्व सर्व सिद्धि को देने वाले हैं और सूर्य स्वर से निकलते हुए तथा प्रवेश करते हुए वायु में पृथ्वी तथा जल तत्त्व मध्यम फलदाता हैं। यथा—ज्ञानावर्णवे:—

नेष्ट घटने समर्था राहु-ग्रह-काल-चन्द्र-सूर्याद्याः।
क्षिति-वरुणौ त्वमृतगतौ समस्त कल्याणदौ ।। ४६ ।।

(३) शरीर के सर्व भाग में मानों निरन्तर अमृत बरसाती हो वैसे अभिष्ट (मन वांछित) कार्य को सूचित करने वाली बांई नाड़ी (चन्द्र स्वर) को अमृतमय माना हुआ है। वैसे ही दाई नाड़ी (सूर्य स्वर) चलती हुई शांति कार्यों को नष्ट करने वाली तथा अनिष्ट सूचक है। तथा ज्ञानार्णवे

अमृते प्रवहति नूनं केचित्प्रवदन्ति सूरयोऽत्यर्धम्।
जीवन्ति विषासक्ता म्रियते च तथान्यथा भूते ।। १ ।।

अर्थ—अमृत जो चन्द्रमा की नाड़ी चलती हो तो निश्चय से विष से आसक्त पुरुष भी जीता है और अन्य प्रकार जो सूर्य की नाड़ी चले तो मरता है। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने अधिकता से कहा है।

(४) सुखमना नाड़ी अनिमा और महान सिद्धियां तथा मोक्ष फल रूप कार्य करने के लिए है।

(५) सर्गुण में जो कार्य किया जाता है उसमें बड़ा लाभ है जैसे दीपक में तेल भर कर वत्ती जलावें तो वह दीपक सन्ध्या से सवेरे तक जलता रहता है। ऐसे ही जब कहीं आग लगे तो एक लोटा जल का मंगवा कर आग की तरफ मुंह करके एकदम में नाक के द्वारा सर्गुण से साथ चढ़ावें तो अग्नि आगे नहीं बढ़े, जहां की तहां शीतल हो जावे। [देखें टिप्पणी ५६]

(६) तथा किसी वैरी से मिलाप करने की इच्छा हो तो बरतन में जल लेकर सामने नासिका के रास्ते सर्गुण में चढ़ाये जाया करें तो थोड़े ही दिनों में बैरी के चित्त से वैर भाव जाता रहे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि'' ऊपर कहे हुए से विपरीत स्वर चले तो जानना चाहिए कि मृत्यु समीप है। इसमें संशय नहीं है—३४६

लाभालाभ प्रश्न

(७) वरुणे त्वरितो लाभश्चिरेण भौमे तदार्थिने वाच्यम्।
तुच्छतरः पवनाख्ये सिद्धोऽपि विनश्यते वह्नौ॥ ५४॥ (ज्ञानार्णवे)

अर्थ—जल तत्त्व के होने पर तुरत ही लाभ कहे तथा पृथ्वी तत्त्व हो तो देरी से लाभ कहे। पवन तत्त्व हो तो बहुत थोड़ा लाभ कहे। यदि अग्नि तत्त्व हो तो सिद्ध हुआ लाभ भी नाश को प्राप्त होता है—५४

(८) नाड़ी बदलना हो तो—ज्ञानार्णव प्र० २६ में—
दक्षिणामथवा वामां यो निषद्धुं समीप्सति।
तदङ्गं पीडयेदन्यां नासा-नाडी समाश्रयेत्॥ ६६॥

अर्थ—दाईं अथवा बाईं नाड़ी को बदलना चाहें तो उस नाड़ी की नासिका को पीडें तथा दाबें तो नाड़ी बदल जावेगी अर्थात् बांईं से दाहिनी तथा दाहिनी से बांईं नाड़ी हो जावेगी।

(६) नाड़ी का संक्रमन—यथा ज्ञानार्णव प्र० २६ में
संचरति यदा वायुस्तत्त्वात्तत्वान्तरं तदा ज्ञेयम्।
यत्त्यजति तद्धि रिक्तं तत्पूर्णं यत्र संक्रमति॥ ७४॥

अर्थ—जिस समय पवन एक तत्त्व से दूसरे तत्त्व में संचरती-बदलती हो उस समय जिसको छोड़े सो रिक्त पवन कहा जाता है। जिसमें संचरे उसे पूर्ण पवन कहा जाता है—७४

६६. यहां पर शिव स्वरोदय से वशीकरण लिखते हैं—जिससे गृह कलह शान्त होकर पति-पत्नी परस्पर प्रेम-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें इसी लिए यह प्रकरण दिया जाता है।

चन्द्र सूर्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीव-मंडले।
आजन्मवशगा रामा कथिते यं तपोधनैः॥ २७६॥

अर्थ—स्त्री के चन्द्र स्वर को अपने सूर्य स्वर से आकर्षण करके अपने जीव स्वर के मंडल में टिकावे तो स्त्री जन्म भर अपने वश में होती

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है यह योगी पुरुषों का कहना है—२७६

जीवेन गृह्यते जीवो-जीवो जीवस्य दीयते।
जीवस्थाने गतो जीवो बाला जीवान्त कारकः॥ २७७ ॥

अर्थ—पुरुष अपने जीव स्वर में स्त्री के जीव स्वर को पकड़े और स्त्री के जीव स्वर से इस प्रकार जीव के स्थान में गया हुआ जीव जिसको हो ऐसा पुरुष जन्म भर उस स्त्री के वश में रहता है—२७७

राघ्यन्तयाम वेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने।
ब्रह्मजीवं पिवेद्यस्तु बाला प्राणहरो नरा॥ २७८ ॥

अर्थ—रात्री के पिछले पहर जब स्त्री सोई रहती है उस समय जो पुरुष ब्रह्मा जीव (सुखमना स्वर) को पीता है वह पुरुष स्त्री के प्राणों को वश में करता है—२७८

अष्टाक्षरं जपित्वा तु तस्मिन् काले गते सति।
तत्क्षणं दीयते चन्द्रो मोहमायाति कामिनी॥ २७९ ॥

अर्थ—उस काल के व्यतीत होने पर अष्टाक्षर मत्र को जप कर जो पुरुष अपना चन्द्र स्वर स्त्री को देता है तो वह कामिनी उसी क्षण मोह को प्राप्त होती है—२७९

अथ अष्टाक्षर मंत्रः—ॐ नमो अरिहंताणं।

शयने वा प्रसंगे वा युवत्यालिंगनेऽपि वा।
यः सूर्येण पिवेच्चन्द्रं स भवेन्मकरध्वजः॥ २८० ॥

अर्थ—सोते समय अथवा स्त्री संग करते समय अथवा आलिगन करते समय जो पुरुष अपने सूर्य स्वर से स्त्री के चन्द्र स्वर को पीता है वह पुरुष कामदेव के समान मोह करने वाला होता है—२८०

शिव आलिंग्यते शक्तया प्रसंगे दक्षिणेऽपि वा।
तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तु मोह्येत्कामिनी शतम्॥ २८१ ॥

अर्थ—पुरुष यदि अपने सूर्य स्वर में स्त्री के चन्द्र स्वर से स्त्री संग के समय मिल जाय अथवा स्त्री के सूर्य स्वर में अपना चन्द्र स्वर स्त्री को

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तथा तेरह श्वास तक सुखमन स्वर चलता है—३५०

दे दे तो वह पुरुष सौ कामिनियों को मोह सकता है—२८१

सप्त-नव-त्रयः पंचवारान् संगस्तु सूर्य भे।
चन्द्रे द्वि-तुर्य-षट् कृत्वा वश्या भवति कामिनी ॥ २८२ ॥

अर्थ—स्त्री के चन्द्र स्वर चलता हो तथा पुरुष का सूर्य स्वर चलता हो इन दोनों स्वरों के मेल से सात, नव, तीन, पांच वार संगम हो जाय अथवा स्त्री से चन्द्र स्वर में अपना सूर्य स्वर हो तो दो, चार, छः बार मिल जाय तो वह कामिनी वश में होती है—२८२

सूर्य-चन्द्रौ समाकृष्य सर्पाक्रान्त्याऽधरोष्ठयोः।
महापद्म मुखं स्पृष्ट्व वारं वारमिदं चरेत् ॥ २८३ ॥

अर्थ—अपने सूर्य और चन्द्र स्वर को सर्प की गति से खींच कर अधरोष्ठों पर स्त्री के मुख से अपना मुख स्पर्श करके वारम्वार पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्र और सूर्य का मेल करे—२८३

आप्राणमिति पद्मस्य यावन्निद्रावशं गता।
पश्चाज्जागृति वेलायां चोष्येते गल चक्षुषी ॥ २८४ ॥

अर्थ—जब तक स्त्री निद्रा के वश रहे तब तक पूर्वोक्त प्रकार से स्त्री मुख कमल का पान करे पीछे जागने के समय गले और नेत्रों का चुनम्ब करे—२८४

ज्ञानार्णव प्र० २९ से वशीकरण लिखते हैं—

नृपति-गुरु-बन्धु वृद्धा अपरेऽप्यभिलषित स्त्रीलोकः।
पूर्णांगे कर्त्तव्या विदुषा वीत—प्रपञ्चेन ॥ ६० ॥

अर्थ—यहां वशीकरण प्रयोग है—सो राजा, गुरु, बंधु, वृद्धपुरुष तथा अन्य लोगों से भी अपने वांछित को प्राप्त करना चाहते हों तो प्रपंच रहित पंडित पुरुषों को चाहिए कि वशीकरण प्रयोग करे अर्थात् भरे स्वर की तरफ उन्हें बिठा कर वार्तालाप करने से वे अपने अनुकुल हो जायेंगे—६०

शयनासनेषु दक्षैः पूर्णांगनिवेशितासु योषासु।
ह्रियते चेतस्त्वरितं नातोऽन्यद्वश्य—विज्ञानम् ॥ ६१ ॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कालज्ञान[७०]

अष्ट पहर जो भान घर, चले निरन्तर वाय ।
तीन बरस का जीवना, अधकी रहे न काय ।। ३५१ ।।
चले निरन्तर पिंगला, सोल पहर परमाण ।
दोय बरस काया रहे, पीछे जावे प्राण ।। ३५२ ।।
भान निरन्तर जो चले. रात दिवस दिन तीन ।
बरस एक ही होय फुनि, दीरघ निद्रा लीन ।। ३५३ ।।

प्रवीण पुरुषों के द्वारा भरे स्वर में निवेशित स्त्रियों के चित्त त्वरित ही हरे जाते हैं । इससे अन्य वश करने का कोई भी उत्तम विज्ञान नहीं है—६१

अरि-ऋणिक-चौर-दुष्टा अपरेप्युपसर्ग-विग्रहाद्याश्च ।
रिक्तांगे कर्त्तव्या जय-लाभ-सुखार्थिभिः पुरुषैः ।। ६२ ।।

अर्थ—शत्रु, ऋण वाला, चोर, दुष्ट पुरुष तथा अन्य भी ऐसे लोग वश करने के लिए तथा उपसर्ग, युद्ध इत्यादि कार्य जय लाभ सुख के अर्थियों को रीते (खाली) स्वर में करने चाहिए—६२

७०—अन्य रीति से काल ज्ञान इस टिप्पणी में लिख रहे हैं सो ज्ञात करें—

(क) १. स्वर द्वारा आयुष्य ज्ञान
(कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य कृत योग शास्त्रे)

(१) विपरीत वायु चले तो उसका फल—

यदि तीन पक्षों तक (१५ दिनों का पक्ष) वायु विपरीत उदय हो (अर्थात् सूर्य के बदले चन्द्र का और चन्द्र के बदले सूर्य का उदय हो) तो उस मनुष्य की छः मास में मृत्यु हो । दो पक्ष विपरीत स्वर चले तो प्रिय बन्धुको विपदा आवे । एक पक्ष तक यदि वायु विपरीत चले तो भयंकर व्याधि उत्पन्न हो । यदि दो तीन दिन विपरीत चले तो क्लेशादि पैदा हो ।

(२) यदि चन्द्र नाड़ी में तीन दिन रात वायु चले तो रोग पैदा हो ।

(३) एक महीने तक चंद्र नाड़ी में ही पवन चले तो रोग पैदा हो ।

(४) यदि दस दिन निरन्तर चन्द्र नाड़ी में ही पवन चले तो उद्वेग तथा

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—(१) यदि आठ पहर तक (दिन-रात—चौबीस घंटे) सूर्य स्वर ही चलता रहे बीच में बिल्कुल न बदले तो तीन वर्ष की आयु जाननी चाहिए—३५१

रोग हो।

(५) यदि सूर्य चन्द्र एक-एक नाड़ी में वारी-वारी डेढ़-डेढ़ घण्टा वायु चले तो लाभ और पूजा आदि फल हो।

(६) विषुवत्[1] समय में जिसकी आंखें फरकें तो वह एक दिन रात में मृत्यु पावे। वायु के विकार से फरके तो उसका ऐसा फल नहीं। पर स्वाभाविक फरकें तो उसका फल होता है।

(७) दिन में पांच संक्रांति[2] बीतने के बाद यदि वायु मुख से चले तो मित्र हानि, धन की हानि, निस्तेज आदि सब अनर्थों को प्राप्त करे, मृत्यु के बिना।

(८) तेरह स्वर सक्रांतियों के बाद वायु यदि बांई (डावी) नासिका में से चले तो वह रोग और उद्वेगादि होने की सूचना है।

(९) मगसिर सक्रांति काल से लेकर यदि एक ही नाड़ी में पांच दिन तक निरन्तर पवन चलता रहे तो उस दिन से अठारहवें वर्ष मृत्यु होगी। (१०) शरद् सक्रांति (आसोज मास की सक्रांति) से एक ही नाड़ी में पांच दिन तक पवन चले तो उस दिन से पन्द्रहवें वर्ष में मृत्यु हो। (११) श्रावण सक्रांति से पांच दिन एक ही नाड़ी में पवन चले तो बारहवें वर्ष मृत्यु हो। (१२) जेठ महीने की सक्रांति के दिन से दस दिनों तक पवन एक ही नाड़ी में चले तो नवें वर्ष मृत्यु हो। (१३) चैत्र मास की सक्रांति[3] से पांच दिन एक ही नाड़ी में पवन चले तो छठे वर्ष मृत्यु हो। (१४) माघ सक्रांति पांच दिन तक एक ही नासिका में से पवन चले तो तीन वर्ष के अन्त में मृत्यु हो।

नोट १—बारह घण्टों का दिन और बारह घण्टों की रात हो तो वह विषुवत् समय कहलाता है। कोई विषुवत् काल का ऐसा अर्थ करते हैं कि सूर्य और चन्द्र नाड़ी एक साथ दोनों चलें तो वह विषुवत काल है।

नोट २—एक नाड़ी से दूसरी नाड़ी में पवन जाय उसे स्वर सक्रांति कहते हैं।

नोट ३–शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से स्वरोदय में मास की सक्रांति होती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(२) जिस मनुष्य का सूर्य स्वर सोलह पहर (दो दिन-रात—४८ घंटे) तक बराबर चलता रहे बीच में बिल्कुल न बदले तो उसकी दो वर्ष में मृत्यु होगी—३५२

---

(१५) उपर्युक्त महीनों की सक्रांति से यदि दो-तीन-चार दिनों तक एक नासिका में से पवन चले तब जितने वर्षों में मृत्यु कही है उसको पांच से भाग देकर जो उत्तर आवे उसको उतने वर्षों से गुणा करके जो उत्तर आवे उतने वर्ष की आयु जानें।

२. पौष्ण काल द्वारा मृत्यु निर्णय

सूर्य नाड़ी में पवन

पौष्णकाल में यदि आधे दिन तक सूर्य नाड़ी में पवन चले तो चौदहवें वर्ष में मृत्यु हो। यदि सारा दिन सूर्य नाड़ी में पवन चले तो १२ वर्षों में मृत्यु हो। यदि दिन रात (चौबीस घण्टे सूर्य नाड़ी में पवन चले तो दसवें वर्ष में मृत्यु हो। यदि चार दिन रात सूर्य नाड़ी में वायु चले तो चौथे वर्ष में मृत्यु हो, पांच दिन चले तो तीन वर्ष में मृत्यु हो।

पौष्ण काल में यदि छह दिन पवन सूर्य नाड़ी में चले तो १०५६ दिन, सात दिन से १००८ दिन, आठ दिन से ९३६ दिन, दस दिन से ७२० दिन, ग्यारह दिन से ६९६ दिन, बारह दिन से ६४८ दिन, तेरह दिन से ५७६ दिन, चौदह दिन से ४८० दिन, पंद्रह दिन से ३६० दिन, सोलह दिन से ३४८ दिन, सत्तरह दिन से ३२४ दिन, अठारह दिन से २८८ दिन, उन्नीस दिन से २४० दिन, बीस दिन से १८० दिन, इक्कीस दिन से १७४ दिन, बाईस दिन से १६२ दिन, तेईस दिन से १४४ दिन, चौबीस दिन से १२० दिन, पच्चीस दिन से ९० दिन, छब्बीस दिन से ६० दिन, सत्ताईस दिन से ३० दिन, अट्ठाईस दिन से १५ दिन, उनत्तीस दिन से १० दिन, तीस दिन से ५ दिन, इकत्तीस दिन से ३ दिन, बत्तीस दिन से २ दिन, तेतीस दिन से १ दिन में मृत्यु होती है। पौष्ण काल में यह सूर्य नाड़ी में पवन चलने का मृत्यु सम्बन्धी जानकारी (निर्णय)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(३) जिस मनुष्य को तीन रात दिन बराबर सूर्य स्वर चलता रहे बीच

दिया है ।

पौष्ण[4] काल में चन्द्र नाड़ी में पवन

पौष्ण काल में यदि उपर्युक्त दिनों में चन्द्र नाड़ी में पवन चले तो उतने समय के हिसाब से मृत्यु के बदले-व्याधि, मित्र विनाश, महाभय, परदेश गमन, धन विनाश, पुत्र विनाश तथा दुर्भिक्ष आदि उत्पन्न हों ।

इस प्रकार शरीर में रहे हुए चन्द्र सूर्य सम्बन्धी प्रत्येक वायु का अभ्यास कर आयुष्य का निर्णय जानना चाहिये । कदाचित व्याधि अथवा रोग होने से भी शरीर सम्बन्धी वायु का विपर्यास हो जाता है इसलिए कालज्ञान निश्चय करने के लिए आयुष्य जानने के लिए बाह्य कारणों को भी कहते हैं ।

रोग के कारण से कई बार एक नाड़ी अधिक समय चलती रहती है दूसरी नाड़ी चलती नहीं । ऐसा होने से आयुष्य निर्णय करने के लिए दूसरे लक्षण बतलाते हैं । यह भी प्रयोग के साथ विचार करने से काल का निश्चित निर्णय करने में सहयोगी हो सकते हैं ।

नेत्र, श्रोत (कान) तथा मस्तक के भेद से तीन प्रकार के लक्षणों को बतलाने वाले इस बाह्य काल को सूर्य के आलम्बन से देखें । तथा इस तीन प्रकार से अन्य काल के भेद को अपनी इच्छानुसार देखें ।

३—नेत्र लक्षण द्वारा कालज्ञान

बांयें (डाबे) चक्षु में सोलह पंखड़ियों वाला चन्द्र सम्बन्धी कमल है । ऐसा सोचें तथा दाहिने (जीमने) नेत्र में बारह पंखड़ियों वाला सूर्य सम्बन्धी कमल है ऐसा सोचें ।

नोट ४—पौष्ण काल का लक्षण—जन्म नक्षत्र में चन्द्रमा हो और अपनी राशी से सातवीं राशी में सूर्य हो तथा जितनी चन्द्रमा ने जन्म राशी भोगी हो उतनी ही सूर्य ने सातवीं राशी भोगी हो तब पौष्ण नाम का काल होता है । यह पौष्ण काल मृत्यु निर्णय करने में कारणभूत है । अर्थात् इस काल में मृत्यु का निर्णय किया जा सकता है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

में बिल्कुल न बदले तो उसकी एक वर्ष में मृत्यु जाननी चाहिए—३५३

गुरु द्वारा बतलाई हुई विधि से अपनी अंगुली से आंख के अमुक भाग को दबाने से प्रत्येक कमल की चार पंखड़िया कांति के समान जगमगाहट करती हुई दिखलाई देंगी; उनको देखना।

(१) चन्द्र सम्बन्धी कमल में उन चार पांखड़ियों में से जो नीचे की पांखड़ी न दिखाई दे तो छः मास में मृत्यु हो। भ्रकुटी के पास की पांखड़ी दिखलाई न दे तो तीन मास में मृत्यु हो। आंख के कोने की तरफ की पांखड़ी न दिखलाई दे तो दो मास में मृत्यु हो। नासिका की तरफ की पांखड़ी न दिखलाई दे तो एक मास में मृत्यु हो।

(२) दाहिनी आंख को अंगुली से दबाने से सूर्य सम्बन्धी बारह पांखड़ियों वाला कमल दिखलाई देगा। इन बारह में से चार पांखडियां खद्योत (जुगनुं) के समान देदीप्यमान दिखलाई देंगी। इनमें से यदि नीचे की पांखड़ी दिखलाई न दे तो दस दिनों में मृत्यु हो। ऊपर की भ्रकुटी की तरफ की पांखड़ी दिखलाई न दे तो पांच दिन में मृत्यु हो। कान तरफ की—आंख के कोने की तरफ की पांखड़ी दिखलाई न दे तो तीन दिन में मृत्यु हो। यदि नाक की तरफ की पांखड़ी दिखलाई न दे तो दो दिन में मृत्यु हो।

(३) अंगुली से आंखों को दबाये बिना जो दोनों आंखों के कमलों की पांखड़ियां दिखलाई देवें तो सौ दिन में मृत्यु हो।

४—कान द्वारा आयु ज्ञान

(१) हृदय में आठ पांखड़ी वाले कमल का ध्यान करके फिर एक-एक हाथ की तर्जनी (अंगूठे के पास वाली) अंगुली एक-एक कान में (अर्थात् एक हाथ की तर्जनी एक कान में तथा दूसरे हाथ की तर्जनी दूसरे कान में) दोनों कानों के छेदों में डालकर ज़ोर से दबावें। तब ज़ोर से जलती हुई अग्नि के समान गड़गड़ाहट जैसा शब्द सुनाई देगा।

यदि ऐसा शब्द पांच दिन तक सुनाई न दे तो ५ वर्ष आयु बाकी समझें। इस प्रकार हम यहां जितने दिन गड़गड़ाहट शब्द सुनाई न दे उसकी आयु का

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सोलह दिन जो भान घर, चले रात दिन श्वास ।
चिदानन्द निश्चय करी, जीवे ते इक मास ।। ३५४ ।।

समय लिखते हैं—

दिन	आयु			दिन	आयु		
गड़गड़ाहट सुनाई न दे	वर्ष	मास	दिन	गड़गड़ाहट सुनाई न दे	वर्ष	मास	दिन
५ दिन	५	०	०	१८ दिन	२	७	६
६ दिन	४	११	६	१९ दिन	२	४	०
७ दिन	४	९	१८	२० दिन	२	०	०
८ दिन	४	७	६	२१ दिन	१	११	६
९ दिन	४	४	०	२२ दिन	१	९	१८
१० दिन	४	०	०	२३ दिन	१	७	६
११ दिन	३	११	६	२४ दिन	१	४	०
१२ दिन	३	९	१८	२५ दिन	१	०	०
१३ दिन	३	७	६	२६ दिन	०	११	६
१४ दिन	३	४	०	२७ दिन	०	९	१८
१५ दिन	३	०	०	२८ दिन	०	७	६
१६ दिन	२	११	६	२९ दिन	०	४	०
१७ दिन	२	९	१८	३० दिन	०	०	०

५—मस्तक द्वारा आयुष्य ज्ञान

ब्रह्मद्वार में फैलने वाली धुएं की श्रेणी यदि पांच दिन तक न दिखलाई दे तो तीन वर्षों में मृत्यु होगी ।

यह धुएं की श्रेणी ब्रह्मद्वार में कैसे जाती हैं यह गुरुगम से जान लेनी चाहिये ।

६—दोनों हाथों द्वारा मृत्यु ज्ञान

(१) काल चक्र जानने के लिए शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन पवित्र होकर अपने दाहिने (जीमने) हाथ को शुक्ल पक्ष की कल्पना करें । कनिष्टा अंगुली के नीचे के पर्व (पोरे) में एकम, बीच के पोरे में छठ तथा उपर के पोरे में एकादशी की कल्पणा करें । अंगूठे के निचले पर्व में पंचमी, बीच के पर्व में

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—(४) यदि सोलह दिनों तक निरन्तर सूर्य स्वर ही चलता रहे तो उस मनुष्य की एक महीने में मृत्यु जाननी चाहिए—३५४

दशमी, ऊपर के पर्व में पूर्णमासी की कल्पणा करें। अनामिका अंगुली में क्रमश: दूज, सप्तमी, द्वादशी; मध्यमा में तीज, अष्टमी, त्रयोदशी; तथा तर्जनी में क्रमश: चौथ, नवमी, चौदस की तिथियों की कल्पणा करें।

(२) कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (एकम) के दिन बायें (डावे) हाथ को कृष्ण पक्ष की कल्पना करें तथा (शुक्ल पक्ष के हाथ के अनुसार) तिथियों की कल्पना करें[5] फिर जहां पर मनुष्यों का आवागमन न हो उस स्थान पर जाकर पद्मासन में बैठकर मन की प्रसन्नतापूर्वक उज्जवल ध्यान कर दोनों हाथों को कमल के डोडे के समान आकार बनाकर हाथों के अन्दर काले वर्ण के एक बिन्दु की कल्पना करें।

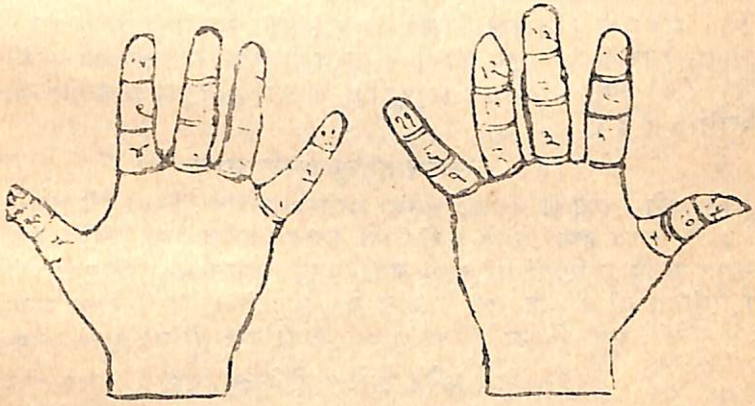

(३) तत्पश्चात् हाथों को खोलते हुए अंगुलियों के अन्दर कल्पित शुक्ल कृष्ण पक्षों की तिथियों में जहां काला बिन्दु पड़ा हुआ दिखलाई दे उसी शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की तिथि के दिन मृत्यु होगी।

७—आयुष्य निर्णय का दूसरा उपाय

जिस मनुष्य के छींक, विष्टा, वीर्यस्राव तथा मूत्र ये चारों एक साथ हो जावें तो एक वर्ष के बाद उसी महीने और उसी पक्ष और उसी तिथि में मृत्यु हो।

नोट ५—तिथियों की तथा शुक्ल-कृष्ण पक्षों की कल्पना के लिए देखें ऊपर दिये हुए दोनों हाथों के चित्र।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मास एक अह निस वहे, सूरज सुर मन मांहि ।
दोय दिनों का जीवना, या में संशय नांहि ॥ ३५५ ॥

अर्थ—(५) यदि एक मास तक निरन्तर सूर्य स्वर ही चलता रहे तो दो दिन की आयु जाननी चाहिए । (योगशास्त्र हेमचन्द्राचार्य कृत में) एक दिन की आयु कही है—३५५

८—अन्य उपाय से आयुष्य निर्णय

(१) रोहिणी नक्षत्र, (२) चन्द्रमा का लांछन, (३) छाया पुरुष, (४) अरुंधती (सप्त ऋषि तारों के समीप दूसरा छोटा तारा), (५) ध्रुव तारा ये पांच अथवा इनमें से एकाद कोई भी देखने में न आवे तो एक वर्ष में मृत्यु हो ।

९—अन्य आचार्यों के मत से आयुष्य ज्ञान

(१) अरुंधती (जिह्वा), (२) ध्रुव (नासा का अग्रभाग), (३) विष्णु पद (तारा–दूसरे के आंख की कीकी में देखने से अपनी आंख की कीकी दिखलाई दे), (४) तथा मातृमंडल (भृकुटी) ये चार आयुष्य क्षय होने वाली हो तो दिखलाई न दें ।

१०—स्वप्न द्वारा मृत्यु ज्ञान

(१) यदि स्वप्न में गिद्ध, कौआ तथा निशाचर (रात को चलने वाले) प्राणी द्वारा स्वप्न दृष्टा अपने शरीर को भक्षण करता हुआ देखें, अथवा गधा, ऊंट, सूअर आदि प्राणियों पर स्वयं सवारी करे अथवा वे स्वप्न दृष्टा को खेंचते अथवा घसीटते हों तो एक वर्ष के अन्त में मृत्यु हो । (२) रोगी मनुष्य यदि स्वप्न में उल्टी, मूत्र, विष्टा, सोना अथवा चांदी देखे तो नव मास जीवे ।

११—सूर्य और अग्नि से मृत्यु ज्ञान

यदि सूर्य मंडल को किरणों के बिना तथा अग्नि को किरणों सहित जाग्रत अवस्था में देखे तो वह मनुष्य ११ मास में मृत्यु पावे ।

१२—पिशाचादि देखने से मृत्यु ज्ञान

यदि किसी स्थान पर वृक्ष के अग्र भाग पर गन्धर्व नगर देखे अथवा प्रेत पिशादि को देखे तो दसवें महीने मृत्यु हो ।

१३—अकस्मात परिवर्तन से काल ज्ञान

जो मनुष्य अकस्मात् बिना कारण के एकदम मोटा हो जावे, अकस्मात् कृष (दुर्बला) हो जावे, शांत प्रकृति वाला अकस्मात् क्रोधी स्वभाव वाला हो जावे, अकस्मात् भय पाए (डरे) तो आठ महीने की आयु शेष समझे ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चले निरन्तर सुखमना, पांच घड़ी सुर भाल।
पांच घड़ी सुखमन चलत, मरण होय ततकाल ॥ ३५६ ॥

१४—धूल-कीचड़ द्वारा आयुष्य ज्ञान

धूल अथवा कीचड़ में पूरा पग पड़ा हो तो भी वह अधूरा दिखलाई दे तो सात महीने जीवे।

१५—शरीर विकृति द्वारा काल ज्ञान

यदि आंख की कीकी काली अंजन जैसी दिखलाई दे, रोग बिना अकस्मात् होंठ और तालु सूख जावें, मुंह खोलने पर ऊपर और नीचे के दांतों के बीच अन्तर में अपनी तीन अंगुलियां न समावें, गिद्ध, कौआ, कबूतर, और दूसरा कोई मांस भक्षण करने वाला पक्षी सिर पर बैठे तो छः महीने के बाद मृत्यु हो।

१६—छः मास में मृत्यु

(१) बादल बिना के दिन में मुख में पानी भरकर आकाश के सामने फुतकार करके पानी को बाहर ऊंचे उछालें। इस प्रकार कई दिनों तक करें और उस उछलते हुए पानी में कई दिनों तक देखने से इन्द्रधनुष जैसा आकार दिखलाई न दे तो छः मास में मृत्यु होगी।

(२) दूसरे मनुष्य की आंख की कीकी में यदि अपना शरीर दिखलाई न दे तो भी छः मास में मृत्यु हो।

(३) दोनों घुटनों (जानू-गोड़ों) पर दोनों कोहनियों को स्थापन करें और हाथ के दोनों पंजे मस्तक पर स्थापन करें। उन दोनों हाथों के अन्तर में केले के डोडे के आकार जैसी छाया में यदि डोडे का एक पत्र विकसित (खिला हुआ) दिखलाई दे तो जिस दिन ऐसा स्वयं देखे उसी दिन से छः मास के अन्त में उसी तिथि में मृत्यु हो।

(४) बादल बिना के स्वच्छ दिनों में इन्द्रनील रत्न के समान कांति वाले, बांके-टेढ़े हज़ारों मोतियों के अलंकार वाले, सूक्ष्म आकृति वाले सर्प आकाश सन्मुख आते हुए दिखलाई देते हैं। जब ऐसे सांप बिल्कुल न दिखलाई दें तब छः महीनों के अन्त में मृत्यु हो।

(५) जो मनुष्य स्वप्न में अपना सिर मुंडा हुआ, तैल से मालिश किया हुआ, लाल पदार्थ से शरीर लिप्त, गले में लाल माला पहने हुए और लाल कपड़े पहन कर गधे पर बैठ कर अपने आपको दक्षिण दिशा पर जाते हुए देखे तो छः महीने आयु शेष समझें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—(६) यदि निरन्तर सुखमना स्वर पांच घड़ी चले और पांच घड़ी श्वास ठहर जाय, फिर पांच घड़ी सुखमना चले तो तत्काल मृत्यु हो—३५६

नहीं चन्द सूरज नहीं, सुखमन फुनि नहीं होय ।
मुख सेती स्वासा चलत, चार घड़ी थिति जोय ।। ३५७ ।।

१७—पांच मास में मृत्यु

(१) विषय सेवन (स्त्री-पुरुष समागम) करने के बाद शरीर में घंटे के नाद के समान नाद सुनाई दे तो पांच महीनों के अन्त में निश्चय से मृत्यु हो ।

(२) सरठ (गिरगट-किरला) वेग (झड़प) से सिर पर चढ़कर चला जाए और जाते-जाते यदि शरीर की चेष्टाएं तीन प्रकार की करे तो पांच महीनों के अन्त में मृत्यु हो ।

१८—चार मास से एक मास के अन्त में मृत्यु

(१) **चार मास के अन्त में मृत्यु**—यदि नासिका टेढ़ी हो जावे, आंखें गोल हो जावें और कान अपने स्थान से ढीले पड़ जावें तो चार मास में मृत्यु हो ।

(२) **तीन मास के अन्त में मृत्यु**—यदि स्वप्न में काले वर्ण वाला, काले परिवार वाला तथा लोहे के दण्ड को धारण करने वाला मनुष्य दिखलाई दे तो तीन मास में मृत्यु हो ।

(३) **दो मास के अन्त में मृत्यु**—यदि चन्द्र को गरम, सूर्य को ठंडा, ज़मीन और सूर्य मंडल में छिद्र, जीभ काली, चेहरे को लाल कमल के समान देखे, तालु कांपे, मन में शोक हो, शरीर में अनेक प्रकार के वर्ण बदला करें, तथा नाभी से अकस्मात् हिचकी (हेड़की) उत्पन्न हो तो ऐसे लक्षणों वाले की दो मास में मृत्यु हो ।

(४) **एक मास के अन्त में मृत्यु**—जीभ स्वाद को न जान सके, बोलते हुए बार-बार स्खलना हो, कान शब्द न सुनें, नासिका गन्ध न जान सके, निरन्तर नेत्र फरका करें, देखी हुई वस्तु में भी भ्रम हो, रात को इन्द्रधनुष दिखलाई दे, दर्पण में अथवा पानी में अपनी आकृति न दिखलाई दे, बादल बिना की बिजली देखे, बिना कारण सिर जला करे, हंस, कौए अथवा मोर को

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—(७) यदि चन्द्र, सूर्य और सुखमना ये तीनों ही स्वर न चलें और मुख से श्वास लेना पड़े तो चार घड़ी में मृत्यु हो—३५७

मैथुन करते देखे, सर्द-गरम, खुरदरा-मुलायम स्पर्श को जान न सके। इन सब लक्षणों में से कोई भी एक लक्षण मनुष्य को दिखलाई दे तो उस मनुष्य की मृत्यु एक महीने में हो। इसमें संशय नहीं।

१६—दस दिन से एक दिन तक मृत्यु

(१) **दस दिनों में मृत्यु**—हकार अक्षर बोलते हुए यदि श्वास ठण्डा हो, फुत्कार करते हुए श्वास बाहर निकालते हुए गरम हो, स्मरण (याद) शक्ति बिल्कुल न रहे, चलने-फिरने की गति क्षीण हो जाए तथा शरीर के पांचों अंग ठण्डे हो जावें तो दस दिनों में मृत्यु हो।

(२) **सप्ताह (सात दिनों) के अन्त में मृत्यु**—शरीर आधा गरम और आधा ठण्डा हो जावे तथा बिना कारण के अकस्मात् शरीर में ज्वाला जला करे तो सात दिनों में मृत्यु हो।

(३) **छः दिनों के अन्त में मृत्यु**—यदि स्नान करने के बाद तुरन्त हृदय और चरण सूख जावे तो छटे दिन मृत्यु हो।

(४) **तीसरे दिन मृत्यु**—कड़कड़ करते दांत घिसें, शरीर में से मुर्दे के समान महा दुर्गन्ध निकला करे तथा शरीर के वर्ण में विकृति हो तो तीसरे दिन मृत्यु हो।

(५) **दूसरे दिन मृत्यु**—यदि मनुष्य अपनी नाक, जीभ, ग्रह, नक्षत्र, तारे, निर्मल दिशा तथा आकाश में रहे हुए सप्त ऋषियों के तारों को न देख सके तो उसकी दो दिन में मृत्यु हो।

२०—छाया पुरुष द्वारा मृत्यु आदि ज्ञान

सुबह, सायं अथवा प्रकाश वाली रात को प्रकाश में खड़े रहकर अपने हाथ लम्बे (काउसग्ग मुद्रा के समान) रखकर अपने शरीर की छाया के सामने खुली आंखों से कुछ समय तक देखा करे। तत्पश्चात धीरे-धीरे आंखों को छाया पर से हटाकर खुली आंखों से ऊंचे या सामने आकाश में देखें, तो पुरुष के समान सफेद आकृति आकाश में रही हुई दिखलाई देगी। यदि इस आकृति का सिर

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

दिन में तो शशि स्वर चले, निशा भानु परकाश।
चिदानन्द निश्चय अति, दीरघ आयुष तास ॥ ३५८ ॥

अर्थ—(८) यदि सारे दिन में चन्द्र स्वर चले और सारी रात में सूर्य स्वर चले तो बड़ी आयु जाननी चाहिए—३५८

दिखलाई न दे तो अपनी मृत्यु हो। यदि बांयी भुजा दिखलाई न दे तो पुत्र अथवा स्त्री की मृत्यु हो। यदि दाहिनी [जिमनी] भुजा दिखलाई न दे तो भाई की मृत्यु हो। हृदय न दिखलाई दे तो अपनी मृत्यु हो। पेट का भाग दिखलाई न दे तो धन का नाश हो। गुह्य स्थान दिखलाई न दे तो अपने पिता की मृत्यु हो। दोनों उरु न दिखलाई दें तो व्याधि हो। पग न दिखलाई दें तो विदेश जाना पड़े। यदि सारा शरीर न दिखलाई दे तो तत्काल अपनी मृत्यु हो।

२१—विद्या द्वारा काल आदि का ज्ञान

(१) विद्या द्वारा दर्पण, अंगूठे के नख अथवा भींत (दीवाल) आदि में उतारे हुए देवता द्वारा विधि पूर्वक पूछने से आयु आदि अनेक प्रश्नों का निर्णय प्राप्त हो जाता है।

(२) अथ विद्या—"ॐ नरवीरे ठः ठः स्वाहा" ॥ (३) साधन विधि—सूर्य ग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण में इस विद्या का १००८ बार जाप करके सिद्ध करे। (४) पश्चात् कार्य पड़ने पर १००८ बार इस विद्या को जप कर दर्पणादि में देवता को उतारें। फिर इस दर्पणादि को एक क्वारी कन्या को दिखलावे। (५) उसमें वह कन्या देवता का रूप देखे तब उसके द्वारा आयुष्य का निर्णय पूछे, वह कन्या सब बतला देगी। (६) इसी प्रकार अन्य प्रश्नों का निर्णय भी पा सकते हैं। (७) अथवा उत्तम साधक के गुण से आकर्षित वह देवता अपने आप निर्णयात्मक तथा संशय रहित त्रिकाल सम्बन्धी आयुष्य ज्ञान बतलावे। अथवा अन्य प्रश्नों का भी समाधान करे।

२२—निरोगी मनुष्य के लिए शकुन द्वारा काल ज्ञान

रोगी हो अथवा निरोगी, अपने से अथवा पर से, घर में अथवा बाहर शकुन से शुभाशुभ का निर्णय जानें। (१) सांप, बिच्छू, कृमी, चूहे, छपकलियां, (गिरोली) कीड़िया (च्युंटियां), जुएं, खटमल (माकन), लुता, दीमक (उदही)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

दिवानाथ हो दिवस में, निशा निशाकर श्वास।
चिदानन्द षट् मास तक, जीवितव्य की आस॥ ३५६॥

अर्थ—(६) यदि दिन भर सूर्य स्वर चले और रात भर चन्द्र स्वर चले तो छः महीने की आयु जानना चाहिए—३५६

के घर, घीमेल तथा भ्रमरियां एकदम विशेष संख्या में दिखलाई दें तो उद्वेग, क्लेश, व्याधि अथवा मृत्यु हो। (२) जूते, हाथी, घोड़ा आदि वाहन, छत्र, शस्त्र, शरीर और केश (सिर के बाल) इनमें से किसी को कौआ चोंच से स्पर्श करे तो समझ लें कि मृत्यु समीप है। (३) आंखों से आंसू बहाती गाय बहुत ज़ोर से अपने खुर से पृथ्वी को खोदे तो गाय के स्वामी की रोग से मृत्यु हो।

२३—रोगी मनुष्य के लिए शकुन द्वारा काल ज्ञान

(१) रोगी जब अपनी आयुष्य सम्बन्धी शकुन देखता हो तब यदि कुत्ता दक्षिण दिशा सन्मुख जाकर अपनी गुदा को चाटे तो एक दिन में मृत्यु हो। (२) यदि कुत्ता अपना हृदय चाटे तो दो दिनों में रोगी मरे। (३) यदि कुत्ता अपनी पूंछ चाटे तो रोगी तीन दिन में मरे। यदि कुत्ता अपना सारा शरीर संकुचित करके सोवे अथवा कानों को फड़फड़ावे और शरीर को धुंजावे तो रोगी की मृत्यु हो। (५) यदि कुत्ता मुंह ढीला करके लाल टपकावे और आंखें मीचकर शरीर को संकुचित करके सोवे तो रोगी की निश्चय मृत्यु हो।

२४—कौए के शकुन द्वारा आयुष्य ज्ञान

(१) यदि रोगी के घर पर प्रातः, दोपहर और सायं तीन काल कौओं का समुदाय (टोले) मिलकर कोलाहल करें तो रोगी की निश्चय मृत्यु हो। (२) रोगी के रसोईघर पर, शयनागार (सोने के घर) पर कौए चमड़ा, हड्डी, रस्सी-रस्सा, केश (सिर के बाल) लाकर फैंके तो रोगी की मृत्यु नज़दीक है।

२५—उपश्रुति द्वारा काल ज्ञान

उपश्रुति द्वारा आयुष्य निर्णय करने की विधि बतलाते हैं—(१) भद्रादि अपयोग न हों ऐसे उत्तम दिन, रात को सोने के समय (तीन घंटे रात बीतने के बाद) पूर्व, उत्तर अथवा पश्चिम दिशा की तरफ जावें। जाने से पहले नवकार मंत्र से अथवा सूरि मंत्र से कान पवित्र (मंत्रित) करें तत्पश्चात् घर से निकलें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चार आठ द्वादश दिवस सोलस वीस विचार।
चलत चन्द नितमेव इम, आयु दीरघ धार ।। ३६० ।।

अर्थ—(१०) यदि चार आठ, बारह, सोलह अथवा बीस दिन रात निरंतर चन्द्र स्वर चलता रहे तो दीर्घ आयु जाननी चाहिए—३६०

रास्ते में किसी के शब्द कानों में न आवे इस प्रकार कानों को ढांक कर शिल्पियों के घर की तरफ अथवा बाजार में पहले कही हुई तीनों दिशाओं में से किसी एक दिशा की तरफ जावें। वहां जाकर भूमि को चन्दन द्वारा पूजन करके उस पर गंध-अक्षत (बरास-चावल) डालकर सावधान होकर किसी भी मनुष्य का शब्द होता हो तो कानों को खोलकर सुने। उनको सुनकर आयुष्य का निर्णय जाने।

(२) उपश्रुति के शब्द दो प्रकार के हैं—अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति और स्वरूप-उपश्रुति। अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति अर्थात् जो शब्द सुनाई दें उसका कोई दूसरा अर्थ हो। स्वरूप उपश्रुति अर्थात् जैसा शब्द सुनाई दे वैसा ही अर्थ हो। अथवा वैसा ही अर्थ ग्रहण करना। पहली अर्थांतरापदेश्य उपश्रुति विचार से जानी जाती है और दूसरी स्वरूप उपश्रुति अर्थ से जानी जाती है। अर्थांतरा-पदेश्य उपश्रुति बतलाती है जैसे कि इस घर का स्तम्भ पांच-छः दिनों में अथवा पांच-छः पक्षों; महीनों; वर्षों में टूट जायेगा अथवा नहीं टूटेगा। वह बहुत मजबूत था पर जल्दी टूट जावेगा इत्यादि। इस पर से अपनी आयुष्य का वैसा ही निर्णय कर लेना कि इतने दिनों, पक्षों, महीनों अथवा वर्षों में मृत्यु होगी।

दूसरी स्वरूप उपश्रुति कहती है कि—(१) यह पुरुष अथवा स्त्री इस स्थान से नहीं जावेगा, हम इसे जाने भी नहीं देंगे और वह जाना भी नहीं चाहता। (२) जाने की इच्छा करता है, मैं भी उसे भेजना चाहता हूं, इसलिए अब वह यहां से जल्दी जायेगा। इससे समझ लेना चाहिये कि यदि जाने का सुने तो मृत्यु समीप है और यदि रहने का सुने तो अभी मृत्यु नहीं है।

इस प्रकार कान खोलकर अपने द्वारा सुनी हुई उपश्रुति द्वारा कुशल समझ-दार व्यक्ति समीप या दूर अपनी आयुष्य का निर्णय जान सकता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

रात दिवस जो तीन दिन, चले तत्त्व आकाश।
बरस दिवस काया स्थिति, तस उपरांत विनाश ।। ३६१ ।।

अर्थ – (१) यदि तीन दिन रात निरन्तर आकाश तत्त्व चलता रहे तो एक वर्ष की आयु जाननी चाहिए—३६१

२६—शनिश्चर पुरुषाकृति द्वारा काल ज्ञान

(१) शनिश्चर की पुरुष जैसी आकृति बनाकर निमित्त देखने के अवसर पर जिस नक्षत्र में शनि हो, वह नक्षत्र मुख में लिखें तत्पश्चात् क्रमशः चार नक्षत्र दाहिने हाथ में, दायें-बायें पैरों में क्रमश: तीन-तीन नक्षत्र, बायें हाथ में चार नक्षत्र, पांच नक्षत्र छाती में, तीन नक्षत्र सिर में, दो-दो नक्षत्र दोनों नेत्रों में, एक नक्षत्र गुह्य स्थान (जननेन्द्रिय) में लिखे। इस प्रकार आकृति (चित्र) तैयार करें।

(२) निमित्त देखने के समय स्थापना के अनुक्रम से जन्म नक्षत्र अथवा नाम नक्षत्र यदि गुह्य भाग में आया हो तथा दुष्टग्रहों की उस पर दृष्टि पड़ती हो अथवा उसके साथ मिलाप होता हो, वह मनुष्य निरोगी हो अथवा रोगी हो तो भी उसकी मृत्यु हो।

२७—पृच्छा लग्न के अनुसार काल ज्ञान

(१) आयुष्य सम्बन्धी प्रश्न पूछते समय जो चालू लग्न हो यदि उसका तत्काल अस्त हो जाये तथा क्रूर ग्रह चौथे, सातवें अथवा दसवें हों एवं चन्द्रमा छठा अथवा आठवां हो तो उसकी मृत्यु हो। (२) आयुष्य सम्बन्धी प्रश्न पूछते समय यदि लग्नाधिपति मेषादि राशि में कुज, शुक्रादि हो अथवा चालू लगन का अधिपति ग्रह का अस्त हो गया हो तो मृत्यु हो। (३) प्रश्न करते समय यदि चन्द्रमा लग्न में हो, बारहवें शनि हो, नवमे मंगल हो, आठवें सूर्य हो, और गुरु बलवान न हो तो मृत्यु हो। (४) प्रश्न पूछते समय छठा अथवा तीसरा सूर्य हो और चन्द्रमा दसवें हो तो तीसरे दिन मृत्यु हो। (५) प्रश्न पूछते समय यदि लग्न से पाप ग्रह चौथे अथवा बारहवें हों तो उसकी तीसरे दिन मृत्यु हो। (६) प्रश्न समय चालू लग्न में अथवा पांचमें यदि क्रूर ग्रह हों तो आठ अथवा दस दिनों में मृत्यु हो। (७) प्रश्न समय अथवा वर्ष फल में सातमें

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अहोरात दिन चार जो, चले तत्त्व आकाश ।
थिरता तन की जानजो, उत्कृष्टि षट् मास ।। ३६२ ।।

अर्थ—(१२) यदि चार दिन रात तक बराबर आकाश तत्त्व चलता रहे तो अधिक से अधिक छः महीने की आयु जाननी चाहिए—३६२

धन राशि और मिथुन राशि में जो अशुभ ग्रह आये हों तो व्याधि अथवा मृत्यु हो ।

२८—यंत्र द्वारा काल का स्वरूप

(१) यंत्र विधि—पहले ॐ कार करना, इस ॐ कार के अन्दर अपना अथवा जिसकी आयु पूछना हो उसका नाम लिखे । यह ॐ कार छः कोण वाले यंत्र में लिखें । इस यंत्र के कोणों में छः "र" कार लिखना । "अं आं इं ईं उं ऊं" ये छः स्वर इन कोणों के पास बाहर लिखना, कोणों के बाहर छः "साथिया" लिखें । साथिये और स्वरों के बीच में अन्तर में छः "स्वा" लिखना । चारों तरफ "य:" लिखना । "यकार" के ऊपर चारों तरफ वायु के पूर से आवृत संलग्न चार रेखाएं करना । ऐसा यंत्र बनाकर उसे पैरों में हृदय में, सिर में सन्धियों में स्थापन करें ।

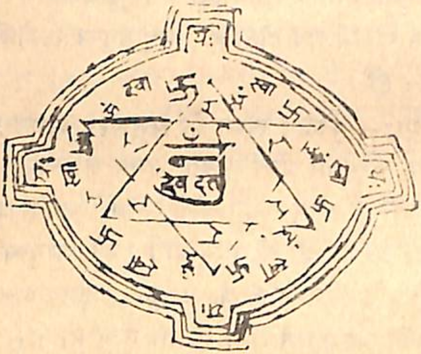

(२) फिर सूर्योदय समय सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम दिशा में बैठ कर अपनी अथवा पर की आयुष्य का निर्णय करने के लिये यदि स्वयं के लिए पूछना हो तो स्वयं अथवा दूसरे के लिए पूछना हो तो उसे बिठला कर उसकी छाया को उसे दिखलावें यदि छाया पूर्ण दिखलाई दे तो एक वर्ष तक मृत्यु नहीं है और रोग रहित सुख में वर्ष व्यतीत करेगा । यदि कान न दिखाई दे तो बारह वर्षों के अन्त में मृत्यु होगी । यदि हाथ न दिखलाई दे तो दस वर्ष, अंगुलियां न दिखलाई दें तो आठ वर्ष; कन्धे न दिखलाई दें तो सात वर्ष, केश (बाल)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अरुंधति ध्रुव बालिका, मातृ मंडले जोय।
ये चारों न लखी सके, आयु हीन नर सोय॥ ३६३॥

अर्थ—(१३) अरुन्धती, ध्रुव, बालिका, तथा मातृका मंडल ये चारों जिस पुरुष को न दीख पड़ें, उसकी आयु अत्यल्प जाननी चाहिए—३६३

न दिखलाई दें तो पांच वर्ष, पार्श्व (पड़खे) न दिखलाई दें तो तीन वर्ष, यदि नाक न दिखलाई दे तो एक वर्ष में मृत्यु हो। यदि सिर अथवा चिबुक (ठोड़ी) न दिखलाई दे तो छः मास, यदि ग्रीवा (गर्दन) दिखलाई न दे तो एक मास, यदि आंखें न दिखलाई दें तो ग्यारह दिन, हृदय में छिद्र दिखलाई दे तो सात दिन में, यदि दो छाया दिखलाई दें तो तत्काल मृत्यु हो।

२६—विद्या द्वारा काल ज्ञान

(१) पहले चोटी में "स्वा" शब्द; मस्तक में "ॐ" शब्द; नेत्र में "क्षि" शब्द; हृदय में "पं" शब्द; नाभि कमल में "हा" शब्द स्थापन करें।

(२) **विद्या**—ॐ जुंसः ॐ मृत्युंजयाय ॐ वज्रपाणिने शूलपाणिने हर हर दह दह स्वरूपं दर्शय दर्शय हुं फुट्।

(३) **विधि**—उपर्युक्त विद्या से एक सौ आठ (१०८) बार दोनों नेत्र तथा अपनी छाया को मन्त्रित करके सूर्योदय समय सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम दिशा तरफ मुख करके दूसरे के लिए दूसरे की छाया और अपने लिए अपनी छाया देखें।

(४) यदि सम्पूर्ण छाया दिखलाई दे तो चालू सम्पूर्ण वर्ष में मृत्यु न हो। पग, जांघें, घुटने न दिखलाई दें तो क्रमशः तीन, दो, एक वर्ष के अन्त में मृत्यु हो। (५) उरु न दिखलाई दे तो दस मास, कमर दिखलाई न दे तो आठ अथवा नव मास, पेट दिखलाई न दे तो पांच मास के अन्त में मृत्यु हो। (६) गर्दन न दिखलाई दे तो चार, तीन, दो अथवा एक मास में मृत्यु हो। कक्षा (बगल) न दिखलाई दे तो पन्द्रह दिन, भुजा न दिखलाई दे तो दस दिन में मृत्यु हो। (७) छाया में कन्धे न दिखलाई दें तो आठ दिन, हृदय न दिखलाई दे तो चार पहर (आधा दिन), सिर न दिखलाई दे तो दो पहर, यदि सर्वथा शरीर न दिखलाई दे तो तत्काल मृत्यु हो।

अन्य आचार्यों के मत से

(ख) यदि दूत किसी वैद्य को रोगी के लिये बुलाने जावे अथवा किसी ज्योतिषी से रोगी सम्बन्धी प्रश्न पूछने जावे तब उसके मार्ग में खाली घड़ा अथवा तैली आदि अशुभ शकुन सामने पड़ जावें तो ऐसा रोगी प्रायः मर ही जाया करता है।

(ग) जिस रोगी के घर वाले तथा सम्बन्धी लोग भोजन करने बैठें और

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जिह्वा नासा अग्रे फुनि, भ्रू को मध्य विचार ।
सुर जोयन कीकी कही, अणुक्रम थी चित्त धार ।। ३६४ ।।

अर्थ—इस श्लोक का पद्य नं० ३६३ से सम्बन्ध है अर्थात् जिह्वा को अरुन्धती, नासिका के अग्रभाग को ध्रुव तारा, आंख की कीकी को बालिका तथा भ्रकुटी को मातृमंडल कहा है—३६४

रसना शशि, दिवस स्थिति, घ्रान हुताशन जान ।
बालिका नव तारका, पंच काल पहिचान ।। ३६५ ।।

उनकी भोजन में रुचि न हो अथवा खाया न जावे या खा कर वमन कर दे तो बहुधा वह रोगी मर जाता है।

(घ) जो मनुष्य सुखमना स्वर में बीमार होता है वह बहुधा स्वस्थ नहीं होता ।

(ङ) रोगोत्पत्ति काल में जिस मनुष्य का प्रथम सुषुम्ना स्वर चलता हो और आकाश तत्त्व का प्रवाह हो तो वह रोगी शीघ्र मरेगा ।

(च) दाहिने हाथ की मुट्ठी बांध कर मस्तक पर लगा कर देखे तो छः मास आयु बाकी रहने पर मुट्ठी और हाथ न्यारे-न्यारे दिखलाई पड़ेंगे ।

(छ) यदि दूत किसी वैद्य या ज्योतिषी के घर बुलाने या प्रश्न पूछने को जावे और उस समय वैद्य तथा दूत अथवा दूत तथा ज्योतिषी का सुषुम्ना (दोनों नथनों वाला) स्वर चले तो उस रोगी का बचना बड़ा कठिन है ।

(ज) हाथ की मध्यमा अंगुली को मोड़ कर अंगूठे की जड़ में लगा कर बाकी अंगुलियों को धरती पर जमावें । फिर एक अंगुली उठावें फिर जहां की तहां स्थित करें । यदि केवल अनामिका ही उठे तो समझना कि दोपहर में मृत्यु हो जायगी ।

(झ) जो पुरुष स्वप्न में काले और लाल रंग के वस्त्र पहने हुए तथा लाल और काले रंग के पदार्थों से विलेपन किये हुए स्त्री को आलिंगन करे तो उसकी मृत्यु होगी । जो मनुष्य स्वप्न में डरावना, विकार वाला मुंह, काला और नग्न पिंजर वाला अथवा हंसता दीख पड़े तो उसकी मृत्यु होती है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—(१४) यदि जिह्वा न दीखे तो एक दिन में, नासिका का अग्र भाग न दीखे तो तीन दिनों में, तारा (दूसरे की आंख की कीकी में अपनी आंख की कीकी) न दीखे तो पांच दिनों में तथा भ्रकुटी न दीखे तो नव दिनों में मृत्यु जानना चाहिए—३६५

(ञ) तिलक देखने के लिये या मांगलिक के हेतु कांच में देखना चाहिये। यदि सिर रहित धड़ दिखलाई पड़े तो १५ दिनों में मृत्यु समझें।

(ट) ॐ ऐं श्रीं मर्त्य मर्त्यांगुले नमः ।। प्रथम मन्त्र ।।

ॐ श्रीं ऐं क्लीं मर्त्य मर्त्यांगुले नमः ।। दूसरा मन्त्र ।।

इस मन्त्र का प्रातःकाल उठ कर प्रत्येक दिन पाठ करें। जब पाठ (मन्त्र) विसर जाय तो ६ महीने आयु बाकी समझना चाहिये।

(ठ) "ॐ नमो प्रतिचक्रे कुटिवचत्ताय नमः स्वाहाः ।।" इस मन्त्र को १०८ बार पढ़ कर—कपूर, काली मिर्च, भीमसेती नाभ की जड़ इन तीनों को घिस कर आंख में अंजन करें आंसू आवें तो जीवे, आंसू न आवें तो मरे।

(ड) दोपहर के समय पानी से थाली को भर कर धूप में रखे और उसमें सूर्य के प्रतिबिम्ब को देखे। यदि दक्षिण दिशा से खंडित दिखलाई देवे तो छः मास आयु समझें। यदि पश्चिम दिशा से खंडित दीख पड़े तो दो मास आयु समझें। यदि प्रतिबिम्ब में छिद्र दिखलाई देवें (एक अथवा अनेक) तो दस दिन जीवे। यदि उत्तर दिशा में खंडित दीख पड़े तो **तीन मास की आयु** समझें। यदि पूर्व दिशा से खंडित दिखलाइ देवे तो **एक मास की आयु** समझें। यदि सूर्य का प्रतिबिम्ब धूएं में व्याप्त दिखलाई देवे तो **उसी दिन मृत्यु** समझें। यदि पूर्ण बिम्ब दिखलाई दे तो एक वर्ष बाद फिर देखे।

जब सूर्य सिर पर आवे तब थाली मांज कर पानी भर कर देखें। यदि प्रतिबिम्ब छिद्र वाला दीख पड़े तो **एक दिन जीवे**।

(ढ) निम्नलिखित यन्त्र को आयु का निर्णय करने के लिये प्रभात काल में देखें—

इस यन्त्र को—चन्दन, कपूर, कस्तूरी, केसर आदि सुगन्धित पदार्थों से कांसी की थाली में लिख कर प्रातः काल प्रभात समय "ॐ नमो भगवते वासु-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लघुनीति बड़ीनीति फुनि, वायुश्रव समकाल ।
होय दिवस दस तेहनी, काय स्थिति बुध भाल ।। ३६६ ।।

पूज्याय" का १०८ बार जाप करे तत्पश्चात् यन्त्र को देखे—

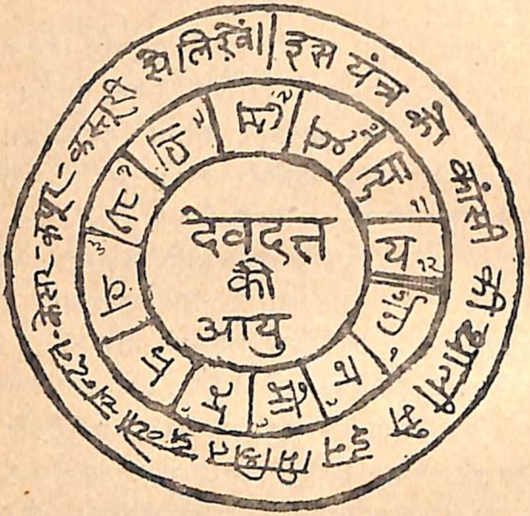

(१) यदि इस यन्त्र का प्रथम अक्षर 'ॐ' दिखलाई न पड़े तो मार्गशिर सुदि ४ अथवा मार्गशिर शुक्ल पक्ष के बुधवार को मृत्यु होगी।

(२) यदि इस यन्त्र का द्वितीय अक्षर 'न' दिखलाई न पड़े तो पोष सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(३) यदि इस यन्त्र का तीसरा अक्षर 'मो' दिखलाई न पड़े तो माघ सुदि ५ अथवा माघ सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(४) यदि इस यन्त्र का चौथा अक्षर 'भ' दिखलाई न दे तो फाल्गुण सुदि ९ अथवा फाल्गुण सुदि शुक्रवार को मृत्यु होगी।

(५) यदि इस यन्त्र का पांचवां अक्षर 'ग' दिखलाई न दे तो चैत्र सुदि १४ अथवा मंगलवार को मृत्यु होगी।

(६) यदि इस यन्त्र का छटा अक्षर 'व' दिखलाई न दे तो वैसाख सुदि १३ अथवा गुरुवार को मृत्यु होगी।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—लघुनीति(पेशाब)बड़ीनीति (पाखाना) तथा वायु का सरना ये तीनों बातें समकाल में हों तो जान लेना चाहिए कि दस दिन की आयु बाकी रह गई है—३६६

(७) यदि इस यन्त्र का सातवां अक्षर 'ते' दिखलाई न दे तो जेठ सुदि १४ अथवा शनिवार को मृत्यु होगी।

(८) यदि इस यन्त्र का आठवां अक्षर 'वा' दिखलाई न दे तो आषाढ़ सुदि बुधवार को मृत्यु होगी।

(९) यदि इस यन्त्र का नवां अक्षर 'सु' दिखलाई न दे तो श्रावण सुदि मंगलवार को मृत्यु होगी।

(१०) यदि इस यन्त्र का दसवां अक्षर 'पू' दिखलाई न दे तो भादों सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(११) यदि इस यन्त्र का ग्यारहवां अक्षर 'ज्या' दिखलाई न दे तो आश्विन सुदि रविवार को मृत्यु होगी।

(१२) यदि इस यन्त्र का बारहवां अक्षर 'य' दिखलाई न दे तो कार्तिक सुदि को अतिसार रोग से मृत्यु होगी।

(ण) घृत—तैल—दर्पण इन तीनों में से किसी एक में अपने शरीर को देखें—सिर न दिखलाई दे तो **एक मास में मृत्यु हो**। (इसी रहस्य से भारतवर्ष के विद्वानों ने विवाह के समय वर और कन्या का घी में से चेहरा दिखलाने की प्रथा चलाई हैं।) शरीर दुबला दिखलाई दे अथवा शक्तिहीन दिखलाई दे, अथवा सांस लेने से पैरों के तलवे जलें तो **एक मास में मृत्यु हो**। यदि लघुनीति (पैशाब) करने पर सीधी धार न पड़े तो **सातवें दिन मृत्यु हो**। यदि सारा शरीर कांपे-ध्रूजे—शरीर का रंग पलटे तो **एक वर्ष जीवे**। यदि आंख की विरौनी, नासिका, जीभ न दिखलाई दे तो **तत्काल मरे**। (अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं० ३६५)। जीभ काली हो मुख लाल हो तो तत्काल मरे। सूर्य चन्द्रमा के समान दीख पड़े तो **१५ दिनों में मृत्यु हो**।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

गाज बीज दोऊ नहीं, मेघ न खंचे धार।
काग वास आवास तस, हंसा गमन विचार।। ३६७ ।।

(त) जिस मनुष्य की शीघ्र मृत्यु होने वाली है उसे छ: मास पूर्व ध्रुवतारा तथा अरुन्धती का तारा (अनुसंधान के लिये देखें पद्य नं० ३६४ में तरिकाओं का) न दिखलाई देने से समीप मृत्यु कही है। (इसी रहस्य से भारतवर्ष के विद्वानों ने विवाह के समय वर और कन्या के लिये ध्रुव तारा के दर्शन का विधान किया है।) यदि विवाह के समय वर या कन्या में से किसी एक को अथवा दोनों को ही उपर्युक्त तारों के दर्शन न हों तो कदापि विवाह की शेष (बाकी) क्रिया नहीं करानी चाहिये।

(थ) यदि रोगी के विषय में प्रश्न करने वाला दूत काले अथवा भगवे वस्त्र धारण करके अथवा उस दूत के दांतों में घाव हो, या मुंडन कराये हो अथवा तैल लगाये हो, हाथ में रस्सी लिये हो, उत्तर देने में समर्थ हो और भस्म, अंगार, कपाल, मूसल ये हाथ में लिए हुए हो यदि सूर्यास्त समय आवे और वह पैरों में कुछ न पहने हुए हो। इतने प्रकार का दूत पूछने वाला आवे तो रोगी काल रूपी अग्नि से आहत होता है अर्थात् मर जाता है।

(द) जिस मनुष्य के हाथ के तलुवे पर, जिह्वा के मूल में रुधिर काला हो जाय और जिसके शरीर को नोचने से दु:ख न हो वह मनुष्य सात मास जीवेगा।

(ध) जिस मनुष्य की बीच की तीन अंगुली न मुड़ें, रोग के बिना ही कण्ठ सूख जाय, और जिसको बार-बार पूछने से जड़ता हो अर्थात् पूर्वापर का अनुसंधान न रहे वह मनुष्य छ: महीने में मृत्यु पाता है।

(न) जिस मनुष्य के स्तनों का चाम बधिर हो जाय वह मनुष्य पांचवें महीने में मरेगा। जिस मनुष्य के नेत्रों की ज्योति प्रकाशित न हो और दोनों नेत्रों में पीड़ा हो उसकी मृत्यु चौथे मास में अवश्य होती है। जिस मनुष्य के दांत और अण्डकोशों को दबाने से पीड़ा कुछ भी न हो उसकी तीसरे महीने में मृत्यु होगी।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि बादलों के बिना ही बिजली दिखाई दे तथा उसके घर पर कौए आकर कोलाहल करें तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु समीप है—३६७

अधिक चन्द्र सुख भाल जस, चलत काय में जान ।
चन्द सूर दोऊ गया, मरण समो पहिचान ॥ ३६८ ॥

(प) आयुर्वेद के मतानुसार काल ज्ञान—

जब देखे निज वरण कर, हीन आपको आप ।
जान आयु की हीनता, निश्चय तन संताप ॥१॥

अर्थ—जिस समय अपने शरीर के वर्ण को हीन (क्षीण) होता देखे तो समझना चाहिये कि आयु अल्प है ।

जीव न छंडे निज प्रकृति, तौलौं दीर्घ आऊ ।
प्रकृति विकार भजै जबै, तब ही आयु घाऊ ॥२॥

अर्थ—जब तक जीव का स्वभाव (प्रकृति) नहीं बदलता तब तक उसकी आयु दीर्घ समझना चाहिये । जब उसकी प्रकृति में विकार आ जाय तो समझ लेना चाहिये कि इसकी अल्प आयु है ।

हृदय नाभि अरु नासिका, पाणि चरण युग सीत ।
सिर शीतल याको रहे, ता को मृत्यु की भीत ॥३॥

अर्थ—हृदय, नाभि, नाक, दोनों हाथ तथा दोनों पग एवं सिर जिसके ठण्डे हो जावें उसकी मृत्यु समीप समझनी चाहिए ।

उष्ण होय उसास जसु शीतल होय निसास ।
महातीव्र तनु ताप होय, ताको यमपुर वास ॥४॥

अर्थ—जिसका श्वास गरम हो तथा निश्वास ठण्डा हो एवं शरीर में बहुत जोरों का ज्वर हो तो उसकी मृत्यु होने वाली है । ऐसा समझना चाहिये ।

अंग कम्प गति भंग होय, वर्ण परावर्त होय ।
गन्ध स्वाद जाने नहीं, ताकी मृत्यु ज होय ॥५॥

अर्थ—जिसका सिर कांपे, गति (चाल) लड़खड़ाये, वर्ण परिवर्तन हो जाय, गन्ध तथा स्वाद का ज्ञान करने की शक्ति न रहे अर्थात् इन्द्रियां अपने-अपने

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि चन्द्र स्वर चले तो शरीर में अधिक सुख की प्राप्ति होती है। और यदि चन्द्र स्वर तथा सूर्य स्वर दोनों ही न चलें तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु का समय समीप आ गया है—३६८

एक पक्ष विपरीत स्वर, चलत रोग तन थाय।
दोऊ पक्ष सज्जन अरि, तीजे मरण कहाय॥ ३६९॥

विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जांय तो वह व्यक्ति अवश्य मरे। ५

मस्तक होय प्रस्वेद जसु, मुख से बहे जु वायु।
नाडी की निर्वाह नहीं, नष्ट होय तसु आयु॥६॥

अर्थ—जिसके मस्तक पर पसीना हो तथा मुख से श्वास ले, नाड़ी अपनी गति छोड़ गई हो तो समझ लेना चाहिये कि उसकी आयु समाप्त होने वाली है। ६

श्यामा होय जिह्वा संकुचे, मुख आरक्त कछु न रुचे।
ऐसे जाके लक्षण होय, निश्चय सु यम ग्रहि है सोय॥७॥

अर्थ—जिसकी जीभ काली हो कर सिकुड़ गई हो और मुंह लाल हो गया हो तथा कोई वस्तु रुचिकर न हो। इस प्रकार के लक्षण वाले की अवश्य मृत्यु होती है॥७॥

नाभि कुण्डली बीच हो पीड़, वीर्य बन्धु की हो बहु भीड़।
अरुचि आहार हृदय में रहे, वर्ष मांहि सो नर मृत्यु लहे॥८॥

अर्थ—नाभि में पीड़ा हो, वीर्य का अभाव हो जाय, खाने पीने की मन में रुचि न रहे तो उस व्यक्ति की एक वर्ष में मृत्यु हो।८

मूत्रधार थमे नहीं, गिरे महीतल बूंद।
सो रोगी त्रय मास में, परि हैं यम के फंद॥
वर्णहीन होय तासु तन, कामहीन होय गात।
स्वादहीन रसना हुए, तीन मास में घात॥९॥

अर्थ—पैशाब रुके नहीं, अपने आप उसकी बूंदें टपकती रहें। ऐसा रोगी तीन मास में मर जायगा। जिसका शरीर कांतिहीन हो जाय, शरीर में काम करने की शक्ति न रहे, जीभ स्वाद का अनुभव करने में असमर्थ हो जाय तो उसकी मृत्यु तीन मास में हो। ९

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि एक पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो शरीर में रोग हो, दो पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो मित्र शत्रु बने तथा तीन पक्ष तक विपरीत स्वर चले तो अपनी मृत्यु समीप जाननी चाहिए—३६९

होय असमर्थ काम जब, पांडु वर्ण होय श्वास।
हो तस कल बल हीनता, एक मास तस नास ॥१०॥

अर्थ—शरीर में काम की शक्ति न रहे, शरीर का रंग सफ़ेद हो जाय, शरीर शक्ति तथा गति हीन हो जाय तो उसकी एक मास में मृत्यु हो।१०

उदर वह्नी जस उपसमे, मुख की अग्नि जु होय।
बन्ध खिरो मेहन झरे, मरे पंच दिन सोय ॥११॥

अर्थ—मुख की भूख तो हो किन्तु खाया न जाय, सदा दस्त लगें और पेशाब टपकता रहे तो रोगी की मृत्यु पांच दिनों में हो।११

नीला वरण होठ होय दोय, कफ जु जम्बूफल सरिखो होय।
रोगी रोग जीते सो जान, मरण कह्यो तसु तव काल ज्ञान ॥१२

अर्थ—जिसके दोनों होंठ नीले हो जायें, जिसका थूक जामुन के रंग समान हो जाय तो समझ लेना चाहिए कि उस रोगी को रोग ने जीत लिया है। अर्थात् उसकी मृत्यु तत्काल होगी।१२

ये दोनों तब कहे असाध्य, इनको लगी मरण की व्याध।
नारी वदन सोफ जब चढ़े, पगे सोफ जब नर के बढ़े ॥१३॥

अर्थ—स्त्री के मुख पर तथा पुरुष के पैरों पर जब सूजन आ जावे तो इन दोनों के रोग को असाध्य समझना चाहिए। अर्थात् इनकी मृत्यु अवश्य हो।१३

भरणी मघा पूर्वा ये तीन, हस्त शतभिषा आद्रा कीन।
इन नक्षत्रों में उपजे रोग, तो जानिये काल संजोग ॥१४॥

अथ—भरणी, मघा, तीनों पूर्वा, हस्त, शतभिष, आद्रा इन नक्षत्रों में यदि रोग हो तो रोगी की अवश्य मृत्यु हो।१४

आद्रा शताभिष अरु अश्लेष, पूर्वा तीन धनिष्टा लेख।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अग्नि बाण बिन्दु लखन, इत्यादिक बहु रीत।

काल परीक्षा की सहु, जानो गुरुगम मीत ॥ ३७० ॥

कृतिका भरणी विशाखा धार, मंगल सूर्य शनीश्चर वार ॥१५॥

तिथि नवमी षष्टि द्वादशी, चौथ अष्टमी अमावसी।

रोग उपजे ऐसे जोग, तो जानहु यम को पुर भोग ॥१६॥

अर्थ—आर्द्रा, शतभिष, अश्लेष, पूर्वा तीन (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपद) धनिष्टा, कृतिका, भरणी, विशाखा नक्षत्र, मंगल, रवि तथा शनिवार। नवमी, छठ, बारस, चौथ, अष्टमी, अमावस तिथियां, इन योगों में रोग हो तो रोगी की मृत्यु हो।१५-१६

(फ) (१) यदि नाक का भाग बाईं ओर झुक जाय तो उसकी मृत्यु शुक्ल पक्ष में होती है। यदि नाक दाईं ओर को टेढ़ी हो जाय तो कृष्ण पक्ष में मृत्यु अवश्यम्भावी है।

(२) सप्त ऋषि मंडल में अरुन्धती (सबसे छोटा तारा) तथा ध्रुव तारा यदि दिखलाई न दे तो समझ लेना कि आयुष्य समाप्त होने जा रही है।

(३) मृत्यु समीप होने पर आंखों से नाक का अग्रभाग, ऊपर की ओर देखने पर भोहों के बीच का भाग तथा जीभ का अग्रभाग दिखलाई नहीं दे तो—

(४) भोहों के न दिखलाई पड़ने पर नौ दिन की; कानों में अंगुली लगा लेने पर यदि भीतर की ध्वनि सुनाई न पड़े तो सात दिन में; अरुन्धती तारा न दिखलाई पड़ने पर पांच दिन में, नाक का अग्रभाग न दिखलाई पड़ने पर तीन दिन में और जीभ का अग्रभाग न दिखलाई पड़ने पर एक दिन में मृत्यु अवश्यम्भावी है।

(५) जिसके दांतों और अण्डकोश को दबाने पर भी दर्द न हो उसकी आयु केवल तीन मास बाकी है।

(६) जिसकी दृष्टि तिलमिलाती है और देखने में पीड़ा का अनुभव हो वह चार महीने तक जीता है।

(७) जिसके भोहों के ऊपर (मस्तक) की चमड़ी सुन्न पड़ जाती है और उस में सूई आदि की नोक चुभाने पर भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता, उसकी

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—यदि अग्नि बाण, बिन्दु दिखलाई पड़ें तो भी मृत्यु समीप समझनी चाहिए। इस प्रकार काल ज्ञान की परीक्षा बहुत प्रकार से कह दी है। अतः सब प्रकार का काल परीक्षा सम्बन्धी ज्ञान किसी योगी गुरु से जान लेना चाहिए—३७०

आयु पांच महीने है।

(८) जिस व्यक्ति के दोनों हाथों की अथवा किसी एक हाथ की कनिष्टा (सब से छोटीं) अंगुली तथा अंगूठे के बीच की तीन अंगुलियां मोड़ने से न मुड़ें, कण्ठ सूखता सा प्रतीत हो, थोड़ी-थोड़ी देर में प्यास का अनुभव हो उसकी आयु छः महीने की होती है।

(९) जिसके हाथों की हथेली (गदेली) और जीभ की जड़ में पीड़ा का अनुभव हो, खून का रंग बदल कर काला या मटमैला हो जाय अथवा शरीर में कांटा या सूई आदि के चुभने से पीड़ा का अनुभव न हो उसकी मृत्यु सात महीने में अवश्यम्भावी है।

(१०) जिसको दीपक की लौ कभी चमकती हुई और कभी काले रंग की दिखलाई पड़े अथवा जिसे संसार के सभी पदार्थों के रूप विकृत प्रतीत हों, उसकी मृत्यु नौ महीने के अन्दर हो जाती है।

(११) नाक टेढ़ी होना या कान छोटे बड़े हो जाना। अथवा बायें नेत्र से बिना रोग के ही आंसू बहते रहना—

(१२) मुंह गरम और नाभी का यकायक शीतल हो जाना अथवा अपने सफेद वस्त्र काले या लाल रंग के दिखाई पड़ना—

(१३) जिसे सूर्य अथवा चन्द्रमा की बढ़ती हुई किरणों का अनुभव न हो और दहकती हुई अग्नि का ताप भी प्रतीत न होता हो, उसकी आयु ग्यारह महीने तक की होती है।

(१४) जिसे स्वच्छ आकाश भी कुहरे से भरे हुए के समान दिखलाई देता हो अथवा चन्द्रमा के मध्य का श्याम रंग स्पष्ट न दिखलाई देता हो अथवा शुक्र तारा छोटा और साधारण तारा गणों की तरह प्रतीत होता हो तो उसकी मृत्यु साल भर में हो जाती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अवसर निकट मरण तणो, जब जाने बुध लोय।
तब विशेष साधन करे, सावधान अति होय ॥ ३७१ ॥

अर्थ—जब बुद्धिमान नर अपना मृत्यु समय निकट समझे तब विशेष रूप से सावधान होकर आत्म कल्याण के मार्ग में लग जावे—३७१

---

(१५) बिना धूली के ही धूल वर्षा का अनुभव हो अथवा अपनी छाया खंडित या विकृत दिखलाई पड़े तो आयु चार पांच महीने की होती है।

दाहिने हाथ की मुट्ठी बन्द करके नासाग्र भाग पर अर्थात् नाक के बराबर सीध में माथे पर रख कर नीचे की तरफ उस हाथ की कोहनी तक देखने से भुजा का अग्रभाग बहुत ही पतला, सूखा दिखाई देगा। इस प्रकार नित्य प्रति देखने से जिस दिन अपने हाथ की कलाई दिखलाई न दे और मुट्ठी कलाई से एक दम अलग दिखलाई दे तो उस दिन से लेकर छः मास के अन्दर मृत्यु होगी ही, यह निश्चित है अथवा उस दिन से व्यक्ति की आयु अधिक से अधिक छः मास की समझें।

दोनों नेत्र बन्द करके दोनों हाथों की तर्जनी (अंगूठे के पास की) अंगुलियों से दोनों आंखों के कानों के तरफ के किनारे दबाने से आंखों के अन्दर चमकते हुए सितारे दिखलाई देंगे जिस दिन तारे दिखलाई देना बन्द हो जावें उस दिन से लेकर केवल १० दिन की आयुष्य समझें।

स्वप्न में बन्दर अथवा भालू (रीछ) पर बैठ कर गाता हुआ दक्षिण की ओर जायें तो अल्पायु समझे।

स्वप्न में अपने आपको सिर से पैर तक कीचड़ में डूबे हुए दिखाई पड़ना, अल्पायु समझें स्वप्न में आग या जल में प्रवेश कर उसमें से फिर न निकलना अल्पायु समझें। स्वभाव अथवा प्रकृति का एकदम उल्टा हो जाना, अल्पायु समझें। यह स्वप्न अपने लिए देखे तो अपने को, यदि दूसरे के लिये देखे तो दूसरे को फल होता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चार पुरुषार्थ

धर्म अर्थ अरु काम शिव, साधन जग में चार।
व्यवहारे व्यवहार लख, निहचे निजगुण धार ॥३७२॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार साधन जगत में हैं। बहिर्दृष्टि लोग इनका जगत के व्यवहार में आने वाली प्रवृत्तियों का अर्थ लगाते हैं। तथा अन्तर्दृष्टि महात्मा इन चारों का निज गुणों का अर्थ धारण करते हैं—३७२

मूरख कुल आचार को, जानत धर्म सदीव।
वस्तु सुभाव धर्म सुधी, कहत अनुभवी जीव ॥३७३॥

अर्थ—अज्ञानी लोग धर्म का अर्थ कुलाचार करते हैं किन्तु बुद्धिमान और अनुभवी लोग धर्म का अर्थ वस्तु स्वभाव ("वत्थु सहावो धम्मो") करते हैं।

खेह खजाना को अर्थ, कहत अज्ञानी जीव।
कहत द्रव्य दरसाव को, अर्थ सुज्ञानी भीव ॥३७४॥

अर्थ—अज्ञानी लोग धन दौलत को अर्थ कहते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष द्रव्य के स्वरूप के समझने को अर्थ कहते हैं--३७४

दम्पति रति क्रीड़ा प्रत्ये, कहत दुर्मति काम।
काम चित्त अभिलाष को, कहत सुमति गुण धाम ॥३७५॥

अर्थ—अज्ञानी लोग विषय सेवन—रति क्रीड़ा को काम कहते हैं, किन्तु ज्ञानी लोग चित्त की अभिलाषा को काम कहते हैं—३७५

इन्द्रलोक को कहत शिव, जो आगम दृग हीन।
बन्ध अभाव अचल गति, भाषत नित परवीन ॥३७६॥

अर्थ—अज्ञानी लोग इन्द्रलोक को शिव कहते हैं परन्तु ज्ञानी महात्मा कर्म बन्धन से सर्वथा छूट जाने से स्थिर गति अर्थात् जहां जन्म-मरण का सर्वथा अभाव है ऐसे मोक्ष को शिव कहते हैं—६७६

इम अध्यातम पद लखी, करत साधना जेह।
चिदानन्द निज धर्म नो, अनुभव पावे तेह ॥३७७॥

अर्थ—इस प्रकार अध्यात्म पद को जान कर जो प्राणी साधना करते हैं वे आत्मा के अनन्त आनन्द रूप निज धर्म का अनुभव प्राप्त करते हैं—३७७

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

धर्माधर्म विवेक

समय मात्र प्रमाद नित, धर्म साधना मांहि ।
अथिर रूप संसार लख, रे नर करिये नाहिं ।।३७८।।

अर्थ—हे मानव । इस संसार को अस्थिर जानकर—धर्म साधना के लिए सदा तत्पर रहो, एक समय मात्र भी प्रमाद में मत जाने दो—३७८

छीजत छिन-छिन आऊखो, अंजली जल जिम मीत ।
काल - चक्र माथे भ्रमत, सोवत कहा अभीत ।।३७६।।

अर्थ—हे मित्र ! जिस प्रकार अंजली में लिया हुआ जल क्षण-क्षण में सदा छीजता रहता है उसी प्रकार तुम्हारी आयु भी क्षण-क्षण में क्षय होती रहती है । काल का चक्र हर समय तुम्हारे मस्तक पर घूम रहा है अतः तू निर्भय होकर क्यों सो रहा है—३७६

तन धन जोवन कारिमा, संध्या राग समान ।
सकल पदारथ जगत में, सुपन सरूप चित्त धार ।।३८०।।

अर्थ—यह तुम्हारा शरीर, धन दौलत तथा जवानी संध्या समय की लालिमा के समान अस्थिर हैं । जगत में जितने भी पदार्थ हैं वे सब स्वप्न के समान नाशवान हैं—३८०

मेरा मेरा मत करे, तेरा है नहि कोय ।
चिदानन्द परिवार का, मेला है दिन दोय ।।३८१।।

अर्थ—रे जीव ! तू मेरा मेरा मत कर, जगत में तेरा कोई नहीं है । संसार में जिसे तू अपना परिवार मान रहा है वे सब स्वार्थ के साथी हैं । अन्त समय में तेरी इनसे रक्षा न होगी । तू इन्हें दो दिन का साथी समझकर अपनी आत्मा का कल्याण कर—३८१

ऐसा भाव निहारि नित, कीजे ज्ञान विचार ।
मिटे न ज्ञान विचार बिन, अन्तर भाव विचार ।।३८२।।

अर्थ—मन में इस संसार को असार समझ कर सदा ज्ञान का विचार करना चाहिए क्योंकि ज्ञान के बिना आत्मा के अन्तर भाव का विकार नहीं मिट सकता—३८२

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ज्ञान रवि वैराग्य जस, हिरदे चंद्र समान।
तास निकट कहो किम रहे? मिथ्या तम दुख खान ॥३८३॥

अर्थ—जिसके हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश द्वारा वैराग्य रूपी चंद्रमा का उदय हुआ है उसके निकट दुःखों की खान रूप जो मिथ्यात्व है वह कैसे रह सकता है? अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होने से मिथ्यात्व रूपी अन्धकार का स्वयमेव नाश हो जाता है—३८३

आप अपने रूप में, मगन ममत मल खोय।
रहे निरन्तर समरसी, तास बन्ध नवि कोय ॥३८४॥

अर्थ—जो व्यक्ति मोह का त्याग कर अपने निज स्वभाव में लीन होकर राग-द्वेष का त्याग कर समता भाव में रहता है उसे कर्म का बन्ध नहीं होता—३८४

पर परिणति परसंग सुं, उपजत विणसत जीव।
मिट्यो मोह परभाव का, अचल अबाधित शिव ॥३८५॥

अर्थ—पर परिणति (आत्मा के सिवाय दूसरे पदार्थों में ममत्व भाव) से जीव इस संसार में अनादि काल से जन्म मरण प्राप्त कर रहा है। आत्मा के सब प्रकार के पर पदार्थों पर से ममत्व भाव के हट जाने से उसे अक्षय (कभी नाश न होने वाला) तथा संक्लेश रहित (शाश्वत सुख सहित) मोक्ष की प्राप्ति होती है—३८५

जैसे कंचुक त्याग थी, विणसत नहीं भुजंग।
देह त्याग थी जीव पिण, तैसे रहत अभंग ॥३८६॥

अर्थ—जैसे कांचली छोड़ देने से सर्प का नाश नहीं होता उसी प्रकार मोक्ष अवस्था प्राप्त कर (आत्मा) शरीर रहित होकर भी अनन्त काल तक मौजूद रहता है—३८६

जो उपजे सो तू नहीं, विणसत ते पिण नांहि।
छोटा मोटा तू नहीं, समझ देख दिल मांहि ॥३८७॥
वरण भांति तो में नहीं, जात-पांत कुल रेख।
राव रंक तू है नहीं, नहीं बाबा नहीं भेख ॥३८८॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

तू सहु में सहु थी सदा—न्यारा अलख सरूप।
अकथ कथा तेरी महा, चिदानन्द चिद रूप ॥३८६॥
जनम मरण जहां है नहीं, ईति भीति लवलेश।
नहीं सिर आन नरिंद की, सो ही अपना देश ॥३६०॥

अर्थ—हे जीव ! न तू जन्म लेता है न मरता है, न छोटा है न बड़ा है, तुम में न कोई वर्ण है न जात-पांत है, तू न राजा है न रंक है, न साधु है न वेष है, तू सब में है और सबसे न्यारा अलख स्वरूप भी है, तेरा स्वरूप कोई भी वर्णन करने मे समर्थ नहीं है, तू तो अनन्त आनन्दमय तथा शुद्ध स्वरूप है, जहां पर न जन्म है न मौत है, जहां पर किंचित मात्र भी न भय है न कष्ट है, जहां पर न किसी राजा के शासन का भय है; ऐसे दुःख, भय तथा परतन्त्रता रहित जो अनन्त आनन्द का स्थान मोक्ष है वही तेरा अपना देश है। हे जीव ! इस बात को तू सदा-हर समय अपने लक्ष में रख, इस बात को भूल मत—३८७ से ३६०

विनाशिक पुद्गल दशा, अविनाशी तू आप।
आपा आप विचारतां, मिटे पुण्य अरु पाप ॥३६१॥
बेड़ी लोह कनकमयी, पाप पुण्य युग जान।
दोऊ थी न्यारा सदा, निज स्वरूप पिछान ॥३६२॥

अर्थ—जीवात्मा अविनाशी है तथा कर्म मल रूप पुद्गल जो आत्मा से संलग्न है वह नाशवान है। इसलिए अपने शुद्ध स्वरूप का विचार करने से पाप और पुण्य कर्मों का नाश होता है। पुण्य को सोने की बेड़ी तथा पाप को लोहे की बेड़ी जानकर अपने आपको सदा इनसे भिन्न-न्यारा समझ कर निजस्वरूप को पहचानो—३६१-३६२

जुगल गति होय पुण्य सुं, इतर पाप सुं होय।
चारों गति सुं निवारिये, तब पंचम गति होय ॥३६३॥
पंचम गति बिन जीव को, सुख तिहु लोक मंझार।
चिदानन्द नवि जानजो, यह मोटो निरधार ॥३६४॥

अर्थ—चार गतियों में से देव और मनुष्य ये दो गतियां पुण्य के उदय से होती हैं। तथा तिर्यंच और नरक ये दोनों गतियां पाप के उदय से होती हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चारों गतियों के नाश से मोक्ष रूप पांचवीं गति प्राप्त होती है। पांचवी गति (मोक्ष) पाये बिना जीव को तीनों लोकों में शाश्वत सुख मिलना सम्भव नहीं है। यही निश्चित सत्य है—३९३-३९४

समाधि का स्वरूप

इम विचार हिरदय करत, ज्ञान ध्यान रस लीन।
निरविकल्प रस अनुभवी, विकलता होय छीन ॥३९५॥

अर्थ—इस प्रकार जो व्यक्ति मन में विचार करके ज्ञान और ध्यान के रस में लीन रहते हुए निर्विकल्प रस का अनुभव करता है वह सब प्रकार के विकल्पों से रहित हो जाता हैं—३९५

निरविकल्प उपयोग में, होय समाधि रूप।
अचल ज्योति झलके तिहां, पावे दरस अनूप ॥३९६॥

अर्थ—जब निर्विकल्प उपयोग में समाधि की प्राप्ति होती है। तब जिस आत्मा की उपमा के लिए जगत में एक भी पदार्थ नहीं है उसकी अनन्त ज्योति का प्राणी अपने में प्रकाश कर उसके दर्शन पाता है—३९६

देख दरस अद्‌भुत महां, काल त्रास मिट जाय।
ज्ञान योग उत्तम दशा, सद्‌गुरु दिए बताय ॥३९७॥

अर्थ—उस अद्‌भुत-अनूपम ज्योति का दर्शन पाने से मृत्यु का महात्रास मिट जाता है ज्ञान योग की ऐसी उत्तम दशा सद्‌गुरु ने बतलाई है—३९७

ज्ञानालम्ब दृग ग्रही, निरालम्बता भाव।
चिदानन्द नित आदरो, एहिज मोक्ष उपाव।३९८॥

अर्थ—बाकी के सब प्रकार के आलम्बनों को छोड़कर ज्ञान का सदा आलम्बन करते हुए वैराग्य रस का अमृतपान करना ही मोक्ष प्राप्ति का एक-मात्र उपाय है अतः आत्मा को निज स्वभाव में रमण करने के उपायों को सदा ग्रहण करो—३९८

थोड़े से में जानजो, कारज रूप विचार।
कहत सुनत श्रुतज्ञान का, कबहु न आवे पार ॥३९९॥

अर्थ—थोड़े में ही अपने कर्तव्य को समझ कर उसका अपने कल्याण के

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लिए आचरण करो। हम कहां तक वर्णन करें, कहने और सुनने मात्र से श्रुत ज्ञान का कभी पार नहीं पा सकते—३९९

मैं मेरा इस जीव को, बन्धन मोटा जाना।
मैं मेरा जाकुं नहीं, सो ही मोक्ष पिछान ॥४००॥

अर्थ—मैं और मेरे पन का ममत्व भाव ही इस जीव को बन्धन का सबसे बड़ा कारण है। जिसमें मैं और मेरे पन का ममत्व भाव मिट गया है ऐसे निर्मोही (मोहनीय कर्म से रहित) ने ही मोक्ष को पहिचाना है—४००

मैं मेरा इह भाव थी, बंध राग अरु रोष।
राग रोष जौलों हिए, तौलों मिटे न दोष ॥४०१॥

अर्थ—मैं और मेरे इस भाव से राग और द्वेष का बन्ध होता है। जब तक मन में राग और द्वेष है तब तक दोष नहीं मिट सकते—४०१

राग द्वेष जाकुं नहीं, ताकुं काल न खाय।
काल जीत जग में रहे, मोटा बिरुद धराय ॥४०२॥

अर्थ—जिसमें राग द्वेष नहीं हे, उसे काल नहीं खा सकता अर्थात् वह जन्म और मृत्यु से रहित होकर अजर अमर हो जाता है सर्वथा[७१] दोष रहित होकर बहुत बड़ी पदवी पाकर जगत में वास करता है—४०२

७१—यह जीवात्मा राग द्वेष को जीतकर चार घातिया कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान पाता है, जीवन मुक्त हो जाता है। उस समय इसके अठारह दोष सर्वथा नाश हो जाते हैं। मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से 'अज्ञान' दोष का नाश होता है। दर्शनावरणीयकर्म के नाश से 'निद्रा' दोष नाश होता है। अन्तराय कर्म के नाश होने से दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यातराय इन पांच दोषों का नाश हो जाता है। तथा मोहनीय कर्म के नाश होने से मिथ्यात्व, अविरत, काम, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुर्गंच्छा; ये ग्यारह दोष नाश हो जाते हैं। कुल मिलाकर अठारह दोषों से रहित श्री अरिहंत प्रभु के सिवाय अन्य कोई नहीं होता। उपर्युक्त लक्षण युक्त समाधि को प्राप्त करने से ही वीतराग भाव उत्पन्न होकर यह जीव मोक्ष प्राप्ति कर

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चिदानन्द नित कीजिए, समरण श्वासोश्वास।
वृथा अमूलक जात है, श्वास खबर नहीं तास ॥४०३॥

अर्थ—इसलिए हे चिदानन्द ! सदा श्वासोश्वास का ख्याल रख। इन अमूल्य श्वासोश्वास रूप आयु को व्यर्थ में मत खो। यह मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलेगा, इसलिए इस जीवन का एक क्षण भी प्रमाद में मत जाने दे। न जाने ये श्वासोश्वास कब समाप्त हो जाएंगे और तेरी मृत्यु हो जावेगी-४०३

श्वासोश्वास की गति

एक महूर्त मांहि नर, सुर में श्वास विचार।
तिहुतर अधिका सात सौ, चालत तीन हजार ॥४०४॥
एक दिवस में एक लख, सहस त्रयोदश धार।
एक शत नव्वे जात है, श्वासोश्वास विचार ॥४०५॥
सात शत सहस पचानवे भाख तेत्रीस लाख।
एक मास में श्वास इम, ऐसी प्रवचन साख ॥४०६॥
चउ शत अडताली सहस, सप्त लक्ष सुर माहिं।
चार क्रोड़ इक बरस में, चालत संशय नांहि ॥४०७॥
चार अबज क्रोडी सप्त, फुनि अड़ताली लाख।
स्वास सहस चाली सुधी, सौ बरसों में भाख ॥४०८॥

अर्थ—एक महूर्त (४८ मिनटों) में स्वस्थ मनुष्य ३७७३ श्वासोश्वास लेता है। एक दिन और रात (चौबीस घंटों) में स्वस्थ मनुष्य ११३१९० श्वासोश्वास लेता है। एक मास में (तीस दिन रात) में स्वस्थ मनुष्य ३३९५७०० श्वासोश्वास लेता है। एक वर्ष (बारह मास) में स्वस्थ मनुष्य ४०७४८४०० श्वासोश्वास लेता है। सौ वर्षों में स्वस्थ मनुष्य

सकता है। अतः शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए अजपा जाप "अर्हम्" का करना सर्वश्रेष्ठ है। अर्हम् शब्द अरिहत का पर्यायवाची है। जिन्होंने स्वयं योगातीत अवस्था प्राप्त कर सर्व कर्म बन्धनों से बन्धन मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त किया है योगाभ्यासी के लिए इनके सिवाय और कोई उत्तम आदर्श नहीं है। सोऽहं शब्द में भी अर्हम् का लक्ष्य ही होना चाहिए।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

४०७४८४०००० श्वासोश्वास लेता है—४०८

वर्त्तमान इह काल में, उत्कृष्टी स्थिति जोय।
इक शत सोलस वर्ष नी, अधिक न जीवे कोय ।।४०६।।

अर्थ—वर्त्तमान इस काल में मनुष्य की उत्कृष्ट आयु ११६ वर्ष की है इससे अधिक कोई नहीं जीवित रहता—४०४ से ४०६

सोपक्रम आयु कह्यो, पंचम काल मंझार।
सोपक्रम[७२] आयु विषय, घात अनेक विचार ।।४१०।।

अर्थ—तथापि इस पंचम काल में सोपक्रम आयु कही है। अनेक प्रकार के घातों में से किसी भी घात के होने से इस आयु का शीघ्र क्षय होना सम्भव है—४१०

मन्द स्वास सुर में चलत, अल्प उमर होय खीन।
अधिक स्वास चालत अधिक, हीन होत परवीन ।। ४११ ।।

अर्थ—स्वर में धीरे-धीरे श्वास चलने से अल्प (कम) आयु क्षय होती है अर्थात् दीर्घ श्वासोश्वास से आयु लम्बी होती है, तथा अधिक शीघ्रता से स्वर चलने से आयु जल्दी क्षीण होती है—४११

चार समाधि लीन नर, षट शुभ ध्यान मंझार।
तुष्णी भाव बैठा ज्युं दस, बोलत द्वादश धार ।। ४१२ ।।
चालत सोलस सोवतां, चलत स्वास बावीस।
नारी भोगत जानजो, घटत स्वास छतीस ।। ४१३ ।।

अर्थ—समाधि में लीन मनुष्य जितने समय में चार श्वासोश्वास लेता है

७२—शास्त्रों में आयु दो प्रकार की कही है। (१) अपवर्तनीय तथा (२) अनपर्वतनीय। अनपर्वतनीय आयु उसे कहते हैं जो बाहर के किसी भी आघात के कारण मृत्यु सम्भव न हो। अपनी आयु को पूरे समय भोगकर ही इस आयुवाले प्राणी की मृत्यु होती है। तथा दूसरी आयु अपवर्तनीय है। यह आयु विष के प्रयोग से अथवा अन्य शस्त्रास्त्र आदि के आघात लगने से आयु कर्म एकदम क्षय होकर मृत्यु हो जाती है। इसी आयु का दूसरा नाम सोपक्रम आयु है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उतने समय में शुभ ध्यान में लीन मनुष्य छः श्वासोश्वास, चुप बैठे हुए दस श्वासोश्वास, बोलते हुए बारह श्वासोश्वास, सोते हुए सोलह श्वासोश्वास, चलते समय बाईस श्वासोश्वास तथा नारी को भोगते हुए छत्तीस श्वासोश्वास लेता है—४१२-४१३

थोड़ी बेला मांहि जस, बहत अधिक सुर श्वास।
आयु छीजे बल घटे, रोग होय तन तास॥ ४१४॥

अर्थ—थोड़े समय में जिसके स्वर में अधिक श्वासोश्वास बहते हों उसकी आयु उतनी ही जल्दी क्षीण होती है तथा उतना ही बल घटता है—४१४

अधिका नांहि बोलीये, नहीं रहिये पड़ सोय।
अति शीघ्र नांहि चालिये, जो विवेक मन होय॥ ४१५॥

अर्थ—यदि तुम्हारे मन में विवेक है तो अधिक नहीं बोलना चाहिये, अधिक समय तक सोते भी नहीं रहना चाहिये तथा बहुत तेज़ी से चलना भी नहीं चाहिये—४१५

जान गति मन पवन की, करे स्वास थिर रूप।
सो ही प्राणायाम को, पावे भेद अनूप॥ ४१६॥

अर्थ - मन में पवन की गति को जानकर जो मनुष्य श्वास को स्थिर करता है वही व्यक्ति प्राणायाम के अनुपम भेद को पा सकता है—४१६

मेरु रुचक प्रदेश थी, सूरत डोर कुं पोय।
कमल बन्द छोड़या थकां, अजपा स्मरण होय॥ ४१७।

अर्थ—मेरु रूचक प्रदेश से सूरत डोर को पिरोकर कमल बन्ध को छोड़ने से अजपाजाप होता है—४१७

भमर गुफा में जायके, करे अनिल कुं पान।
पिछे हुताशन तेहने, मिले दसम[७३] अस्थान॥ ४१८॥

७३—इस शरीर में शिराओं के जाल रूप तार लगे हुए हैं। इन शिराओं अथवा नाड़ियों में इडा और पिंगला ये दो नाड़ियां मुख्य हैं। ये मेरुदण्ड के उभय पार्श्व में हैं। इनके अतिरिक्त एक भीतर से पोली नली और है जो सुषुम्ना कहलाती है और मेरुदण्ड के भीतर होकर गई है। इस नली के नीचे के सिरे

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—भ्रमर गुफा में जाकर वायु को अन्दर खेंच कर पूरक करने के बाद दसवें स्थान में दीप शिखा के समान ज्योति के दर्शन योगी को होते हैं—४१८

मारग में जातां थकां, जो जो अचरिज होय।
शांत दशा में वर्ततां, मुख से कही न जोय॥ ४१९॥

से लगा हुआ मूलाधार चक्र है जहां कुंडलिनी शक्ति निवास करती है और ऊपर के सिरे से सटा हुआ सहस्रार चक्र है। प्राण शक्ति सदा इड़ा और पिंगला नाड़ियों में से होकर प्रवाहित होती रहती है। योगी यदि किसी साधन विशेष से प्राण को सुषुम्ना को नाड़ी नीचे के द्वार में से निकाल ले जाये जो मुंदा हुआ है तो उसकी कुंडलिनी शक्ति जो सदा सोयी रहती है जागृत होकर धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता के साथ जीवन के ध्येय की ओर अग्रसर होती है और योगी सहस्रार में जाकर अग्नि शिखा के समान ज्योति के दर्शन करता है। इस स्थिति में साधक को बहुत से विचित्र अध्यात्मिक अनुभव होते हैं। इस परम ध्येय को प्राप्त करने के लिए योगी प्राणायाम का अभ्यास करता है जिसका प्रारम्भिक स्वरूप पूरक अर्थात् श्वास को भीतर ले जाना, कुंभक अर्थात् श्वास को रोकना और रेचक अर्थात् श्वास को बाहर निकालना है। क्रमशः श्वास नाड़ी और विचार के प्रवाह को संयत कर अन्त में सूक्ष्म प्राण को अधीन करने में समर्थ होता है और इस वश में किये हुए प्राण की सहायता से वह जगत के माया रूप भ्रम जाल को छिन्न-भिन्न कर देता है। परन्तु प्राणायाम के इस विशिष्ट साधन को प्रारम्भ करने के पूर्व साधक के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि वह योग के चार मुख्य अंगों की पूर्ति कर ले। यम तथा नियमों का पालन किसी योगी गुरु के तत्त्वावधान में रहना तथा आसन की दृढ़ता। इन प्रारम्भिक नियमों का पालन न होने पर साधक को भयंकर हानि उठानी पड़ती है, जो हृदोग, श्वास और इसी प्रकार के अन्य दुष्ट रोगों के रूप में प्रकट हो सकती है। प्राणायाम का विधिपूर्वक अभ्यास करने से तो कुंडिलनी शक्ति जागृत होती ही हैं किन्तु प्राणायाम के अतिरिक्त बहुत से अन्य उपाय भी हैं जो मनुष्य की सुप्त शक्ति को जगाने में निसर्गतः समर्थ है। दार्शनिकों की सूक्ष्म संकल्प शक्ति से तथा गुणस्थान क्रमारोह से उत्तम प्रकार से आत्मा का कल्याण होता है। (टिप्पणी नं० ११ में देखें)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—शांत[७४] दशा में रह कर समाधि मार्ग प्राप्त करने तक जो अनेकों सिद्धियां प्राप्त होकर आश्चर्य होते हैं उनका वर्णन नहीं किया जा सकता । वे तो अनुभवगम्य ही हैं—४१६

वधे भावना शांत में, तन मन वचन अतीत ॥
तिम तिम सुख सायर तणी, उठे लहर सुन मीत ॥ ४२० ॥

अर्थ—हे मित्र जैसे-जैसे उपशम (शांत) भावना बढ़ती जाती हैं तथा मन, वचन और काया के योग का निरोध होता जाता है । वैसे-वैसे आत्मा अनन्त सुख रूप समुद्र की लहरों में गोते खाने लगता है । अन्त में जीव योगातीत[७५]

७४—समाधि मार्ग में अनेकों विघ्न भी हैं । इसमें सबसे बड़ा विघ्न सिद्धियों की प्राप्ति है, जिनका लुभावना और चित्ताकर्षक रूप साधक को चौंधिया देता है सच्चे साधक को चाहिये कि वह इन सिद्धियों के जाल में न फंस जावे और अपने आध्यात्मिक जीवन की नौका को निर्वाण के सुखद एवं निरापद तीर पर ही ले जाकर विश्राम ले ।

७५—केवल उन ज्ञानी योगियों को जिन्हें जीवन मुक्त कहते हैं मोक्ष स्थिति प्राप्त करने के पूर्व मन, वाणी और शरीर को समस्त क्रियाओं का निरोध (संक्षय) करना पड़ता है यथा—

तत्रानिवृत्तिशब्दान्तं समुच्छिन्न क्रियात्मकम् ।
चतुर्थं भवति ध्यानमयागिपरमेष्ठिन: ॥ १०५ ॥
समुच्छिन्ना क्रिया यत्र सूक्ष्म योगात्मकापि च ।
समुच्छिन्न क्रियं प्रोक्तं तद् द्वारं मुक्तिवेश्मन: ॥ १०६ ॥

गुणस्थान क्रमारोह

सभी बाह्य पदार्थों का त्याग अर्थात् सर्व सन्यास करना पड़ता है । मोक्ष प्राप्त करने में जब पांच ह्रस्व अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) उच्चारण मात्र समय शेष रहता है उस समय का जो शुक्लध्यान है वही सच्चा मोक्ष साधन अर्थात् योग है । इस अवस्था में स्थित योगी ही सच्चा योगी है । उसके संकल्प विकल्प विलीन हो जाते हैं । उसके विचारों का रज, तम या सत्व गुण से भी स्पर्श नहीं होता । अन्त में वह योगातीत होकर मोक्ष प्राप्त करता है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अवस्था में पहुंच कर शाश्वत सुख रूप मोक्ष प्राप्त करता है—४२०

इन्द्र तणा सुख भोगतां, जो तृप्ति नहीं होय ।
तो सुख सुन छिन एक में, मिले ध्यान में जोय ।। ४२१ ।।

अर्थ—इन्द्र का सुख भोगते हुए भी जो तृप्ति नहीं अर्थात् इन्द्र का सुख भोगने के बाद फिर उस सुख का नाश है किन्तु ध्यान के योग में एक क्षण में शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है जिससे सदा के लिये तृप्ति प्राप्त हो जाती है—४२१

ध्यान बिना न लखी सके, मन कल्लोल स्वरूप ।
लख्या बिना किम उपशमे ? येहू भेद अनूप ।। ४२२ ।।

अर्थ—ध्यान के बिना मन की चंचलता को नहीं जान सकता और मन की चंचलता को जाने बिना उसका निरोध कैसे सम्भव हो सकता है ? मन का निरोध किये बिना शांति प्राप्त होना असम्भव है । इसलिए चित्त वृत्ति निरोध के लिये इस ध्यान के अनुपम स्वरूप को समझना चाहिए—४२२

ध्यान करने की विधि

आसन पद्म लगाय के, मूलबन्ध दृढ़ लाय ।
मेरुदण्ड सीधा करे, भेद द्वार कुं पाय ।। ४२३ ।।
करे श्वास संचार तब, विकल्प भाव निवार ।
जिम जिम स्थिरता उपजे, तिम तिम प्रेम वधार ।। ४२४ ।।

अर्थ—पद्मासन लगाकर मूलबन्ध को दृढ़ करें और मेरुदण्ड को सीधा करके नासाग्र दृष्टि रखकर निश्चल मन से बैठें तथा भेद द्वार को पाकर श्वास का संचार करें । सब प्रकार के विकल्प भावों का त्याग कर अपनी आतमा की स्थिरता को बढ़ाते जावें जैसे-जैसे स्थिरता बढ़ती जावे वैसे-वैसे निजात्म स्वभाव को प्रगट करने की तरफ प्रेम बढ़ाते जावें—४२३-४२४

प्रेम बिना नवि पाइये, करतां जतन अपार ।
प्रेम प्रतीते है निकट, चिदानन्द चित्तधार ।। ४२५ ।।

अर्थ—जब तक निजात्म स्वभाव को प्रकट करने के लिए प्रीति नहीं होगी तब तक अपार प्रयत्न (असंख्य उपाय) करने पर भी स्थिरता प्राप्त नहीं हो

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सकती। प्रेम करने से मन वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने के लिए निकटतम हो जाता है : यह बात निःसंदेह मन में समझो—४२५

जो रचना तिहुं लोक में, सो नर तन में जान।
अनुभव बिन होवे नहीं, अन्तर तास पिछान ॥ ४२६ ॥

अर्थ—तीन लोक में जितनी रचना है वह सब मनुष्य के शरीर में मौजूद हैं। अपने अन्तर में इसका अनुभव ज्ञान के बिना नहीं हो सकता—४२६

अन्तर भाव विचारतां, मन वायु थिर थाय।
तिम तिम नाभि कमल में, पूरक थई समाय ॥ ४२७ ॥

अर्थ—जैसे-जैसे अन्तर भाव में लीन होने से मन वायु स्थिर होती है वैसे-वैसे पूरक होकर वायु समाती जाती है—४२७

नाभि स्वास समाय के, उर्द्ध रेचसी होय।
अजप जाप तिहां होत है, विरला जाने कोय ॥ ४२८ ॥

अर्थ—पूरक द्वारा खींचा हुआ वायु नाभि में जाकर स्थिर होता है उसे कुम्भक कहते हैं फिर वहां से वायु ऊपर की तरफ होकर निश्वास रूप से बाहर निकलता है उसे रेचक कहते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचक करते समय अपने आप अजपाजाप[७६] होता है इस भेद को कोई बिरला ही जान सकता है।

हंकारे सुर उठत है, थई सकार समाय।
अजप जाप तिहां होत है, दीनों भेद बताय ॥ ४२९ ॥

अर्थ—श्वास लेते समय 'सो' का शब्द तथा निश्वास छोड़ते समय 'हं' का शब्द प्रगट होता है। इससे स्वयमेव ही अजपाजाप होता है। इसका भेद हम पहले बतला चुके हैं—४२९

ज्ञानार्णव थी जानजो, अधिक भाव चित्तलाय।
थाय ग्रंथ गौरव घणों, तामें कह्या न जाय ॥ ४३० ॥

७६—अजपाजाप का स्वरूप हम पहले बतला चुके हैं। सोऽहं के समान "अर्हम" का भी अजपाजाप होता है। श्वास लेते समय "अर्" का शब्द तथा श्वास छोड़ते समय हं" का शब्द इस प्रकार "अर्हम्" का शब्द स्वतः प्रगट होता है। ओम् का भी अजपाजाप होता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थ—विस्तारपूर्वक जानने के इच्छुक ज्ञानार्णव नामक ग्रन्थ से इसका स्वरूप जान सकते हैं। यहां पर विस्तारपूर्वक लिखने से बहुत बड़ा ग्रन्थ हो जायेगा। अत: हमने संक्षेप से ही वर्णन किया है—४३०

शरीर में नाड़ियां

देही मध्य नाड़ी तणो, बहु रूप विस्तार।
पिंड स्वरूप निहारवा, जानो तास विचार॥ ४३१॥
वट शाखा जिम विस्तरी, नाभि कन्द थी जेह।
भेद हुताशन जानजो, पान निसा तिम तेह॥ ४३२॥
है भुजंगाकार ते, वलइ अढाई तास।
जान कुंडली नाड़ी ते, नाभि मांहि निवास॥ ४३३॥

अर्थ—इस देह में नाड़ियों का खूब विस्तार है। देह का स्वरूप जानने के लिए उन नाड़ियों को जानना परमावश्यक है—४३१

नाभि के मूल में से वट शाखाओं के समान फैली हुई बहुत-सी नाड़ियों (७२००० नाड़ियों) को जानना चाहिये। उन नाड़ियों के मूल में सोई हुई अग्नि रूप शक्ति है—४३२

वह शक्ति नाभि में भुजंगाकार (सर्पाकार)[७७] कुंडलिनी नाम की नाड़ी है जो कि अढ़ाई आंटे देकर सोई हुई है। नाभि उसका निवास स्थान है—४३३

७७—कुंडलिनी सर्पाकार या वलयाकार शक्ति कही जाती है, क्योंकि इसकी गति वलयाकार सर्प की सी है। योगाभ्यासी यति के शरीर में यह चक्राकार चलती है और उसमें शक्ति बढ़ाती है। यह एक वैद्युत अग्निमय गुप्त शक्ति है। इस कुंडलिनी की गति प्रकाश की गति की अपेक्षा भी अधिक तेज है। मैडम ब्लैवेट्स्की ने कहा है—'Light travels at the rate of 185000 miles a second, Kundalini at 345000 miles a second.' अर्थात् प्रकाश १८५००० मील प्रति सेकिण्ड की गति से चलता है और कुंडलिनी ३४५००० मील प्रति सेकिण्ड की चाल से चलती है। पाश्चात्य लोग इस कुंडलिनी को Serpent-fire (सर्पवत् वलयान्विता अग्नि) कहते हैं। तथा Cosmic Electri-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उर्ध्वगामिनी तेह थी, नाड़ी दस तन मांहि।
अधो गामिनी दस सगुण, लघु गिनत कछु नांहि ॥ ४३४ ॥
दो दो तिरछी सहु मिली, चतुर्विंशति इम जान।
दस वायु प्रवाहिका, प्रधान ये मन आन ॥ ४३५ ॥

अर्थ—कुंडलिनी नाड़ी में से निकलकर दस बड़ी नाड़ियां ऊपर की ओर गयी हैं और दस बड़ी नाड़ियां इस कुंडलिनी में से निकल कर नीचे की ओर गई हैं। यहां पर छोटी नाड़ियों में से शाखा रूप निकली हुई हैं—४३४

दो-दो नाड़ियां इसी कुंडलिनी में से तिरछी (दो दांयीं तरफ और दो बांयी तरफ) निकली हुई हैं कुल मिलाकर चौबीस बड़ी नाड़ियां जाननी चाहिए। इन चौबीस नाड़ियों में से दस नाड़ियां वायु प्रवाहिका हैं—४३५

---

city (विश्व व्यापी विद्युत शक्ति) भी कहते हैं। प्रकृति के निगूढ़ विधान के अनुसार यह प्रचंड शक्ति शरीरस्थ मूलाधार चक्र में सोयी हुई रहती है। असंयमी साधकों को जो Passion proof (मनोविकार का प्रभाव जिस पर न पड़ता हो ऐसा) नहीं हुआ है—सावधानी के साथ तथा सद्गुरु का सानिध्य प्राप्त हुए बिना इस शक्ति को जागृत करने की चेष्टा न करनी चाहिए। इसलिए अष्टांग योग का प्रथम भाग यम नियम—सत्य, संयम, संतोष, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इत्यादि—रखा गया है। इस कुंडलिनी की प्रचंड शक्ति को जगाने का काम इस गुप्त विद्या के सद्गुरु के ही तत्वावधान में होना चाहिये। नहीं तो लाभ की बजाय हानि होना ही संभव है। मूलाधार चक्र इस कुंडलिनी का सुषुप्ति स्थान है। मनुष्य की पिंड देह में (जिसे Etheric body कहते हैं) स्थूल शरीर के विशेष-विशेष प्रत्यंगों से सम्बद्ध जो छः चक्राकर घूमने वाले शक्ति केन्द्र हैं, मूलाधार उन्हीं षट् चक्रों में से एक है। मूलाधार (मेरुदण्ड के निम्न भाग में अवस्थित है। उसी चक्र के अन्तः स्तल में सर्पाकार अग्नि—कुंडलिनी शक्ति ढाई वलयाकार में सुषुप्त रहती है। इस शक्ति को जागृत करने की विधि विस्तारभय से तथा सद्गुरु के तत्त्वावधान के बिना जागरित करने से हानि की संभावना से नहीं दी है। विशेष जानकारी के लिए सद्गुरु के पास जावे। अनुसंधान के लिए देखें टिप्पणी नं० ७३।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इंगला पिंगला सुखमना, गांधारी कहवाय।
हस्तिजिह्वा पंचमी सुधी, षष्टि पूषा बताय॥ ४३६॥
सप्तम जान यशस्विनी, मन अलम्बुषा धार॥
कुहू संखनी नारियां, दस के नाम विचार॥ ४३७॥

अर्थ—(१) इंगला, (२) पिंगला, (३) सुखमना, (४) गांधारी, (५) हस्तिजिह्वा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) अलम्बुषा, (९) कुहू, (१०) शंखिनी—ये नाम उपर्युक्त प्रधान दस नाड़ियों के हैं—४३६-४३७

मुख्य नाड़ियों के स्थान

वाम भाग से इंगला, पिंगला दक्षिण धार।
नासा पुट में संचरत, सुखमन मध्य निहार॥ ४३८॥
वाम चक्षु गंधारिका, दक्षिण नयन मंझार।
हस्तिजिह्वा पूषा सुधी, दक्षिण कान प्रचार॥ ४३९॥
वामे कान यशस्विनी, अलम्बुषा मुख थान।
कुहू लिंग अस्थान है, गुदा शंखिणी जान॥ ४४०॥

अर्थ—मेरुदण्ड से वाम (बायें) भाग में इंगला, दक्षिण (दाहिने) भाग में पिंगला, नासापुट (मध्य देश) में सुखमना, वाम नेत्र में गांधरी, दक्षिण नेत्र में हस्तिजिह्वा (हस्तिनी), बायें कान में यशस्विनी, दायें कान में पूषा, मुख में अलम्बुषा, लिंग में कुहू (किरकल) तथा गुदा में संखिनी का वास स्थान है। इस प्रकार शरीर के दस द्वारों में दस नाड़ियां है। योगाभ्यासियों के लिये इनका ज्ञान करना परमावश्यक है—४३८-४३९-४४०

दिग धमनी ये काय में, प्राणाश्रित नित जान।
वायु आश्रित जो रही, ते दस कहूं बखान॥ ४४१॥

अर्थ—इन उपर्युक्त दस नाड़ियों में किस-किस वायु का वास है अब उस दस प्रकार की वायु का वर्णन करते हैं—४४१

नाड़ियों में वायु

प्राण[७८] अपान समान जे, उदान व्यान विचार।

७८—इनका स्वरूप देखें पद्य नं० ६२-६३-६४ के अर्थ में।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ये प्रधान वायु धमन, पंच अनुक्रम धार ।। ४४२ ।।
नाग कूर्म अरु किरकिल, देवदत्त कहवाय ।
नाड़ी धनंजय पांचमीं, गवणि दीन बतलाय ।। ४४३ ।।

अर्थ—प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये दस वायु अनुक्रम से उपर्युक्त दस नाड़ियों के आश्रित हैं अर्थात् इंगला नाड़ी में प्राण वायु, पिंगला में अपान, सुखमना में समान, गांधारी में उदान, हस्तजिह्वा में व्यान, पूषा में नाग, यशस्विनी में कूर्म, अलम्बुषा में कृकल, कुहू में देवदत्त तथा शंखिनी में धनंजय वायु आश्रित हैं। हमने ये सब बतला दी हैं—४४२-४४३

दस प्रकार वायु का वास स्थान

हिया गुदा नाभि गला, तन संधि चित्त धार ।
प्राणादिक नी इणि परे, अनुक्रम वास विचार ।।४४४।।
नाग वायु प्रकाश थी, प्रगट होय उद्गार ।
कूर्म वायु नाड़ी उदय, उन्मीलन चित्त धार ।।४४५।।
छींक किरकला थी हुये, देवदत्त परकाश ।
जंभाई आवे सकल जान धनंजय वास ।।४४६।।
इत्यादिक नाड़ी तणो, कह्यो अल्प विचार ।
अधिक हिये में धारजो, गुरुगम थी ते विचार ।।४४७।।

अर्थ—प्राण वायु हृदय में, अपान वायु गुदा में, समान वायु नाभि में, उदान वायु गले में, व्यान वायु सब शरीर में रहता है। इन प्राणादि पांचों वायु का निवास स्थान अनुक्रम से जानना चाहिए—४४४

अब पांच प्रकार की नाग आदि वायु द्वारा जो-जो वस्तु प्रगट होती है उस का अनुक्रम से वर्णन करते हैं। नाग वायु के प्रकाश से डकार प्रगट होता है। नाड़ी में कूर्म वायु के उदय से आंखों का खोलना होता है। कृकल वायु से छींक प्रगट होती है। देवदत्त वायु से जंभाई आती है तथा धनंजय वायु का वास सारे शरीर में है—४४५-४४६

इत्यादि नाड़ियों के विषय में संक्षेप से वर्णन कर दिया है। इनके विशेष

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ज्ञान के अभिलाषी सद्गुरु से कर लेवें—४४७

जब सुर बाहिर कुं चले, तब कोई पूछे आय।
कोटि जतन सुं तेहनो, कारज सिद्धि न थाय ॥४४८॥
सुर[७९] भीतर कुं चालती, आवी पूछे कोय।
कोटि भांति करि तेहनो, कारज सिद्धि होय ॥४४९॥

अर्थ—सारांश यह है कि यह बात विशेष रूप से लक्ष्य में रखने की है कि जब स्वर बाहर को निकलता हो तो उस समय कोई प्रश्न पूछे, प्रयान करे अथवा कार्य प्रारम्भ करे तो क्रोड़ों प्रयत्न[८०] करने पर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होगी—४४८

और जब स्वर भीतर को जाता हो अर्थात् स्वर नाक में प्रवेश करता हो उस समय यदि कोई आकर प्रश्न आदि करे तो उसे अवश्य सिद्धि हो। किसी भी प्रकार की विघ्न बाधाएं उसके कार्य में बाधक नहीं हो सकती—४४९

पंचतत्त्व जो ये कहे, ते तो संज्ञा रूप।
इन ऊपर जे मन ग्रह्यो, ते तो मिथ्या कूप ॥४५०॥
आमनाय ये है सुधी, सुर विचार के काज।
सम्यग् दृग थी जो ग्रहे, सो लहे सुख समाज ॥४५१॥

अर्थ—ये जो पांच तत्त्व कहे हैं वे तो संज्ञा रूप हैं मात्र इन पर ही मन

७९—स्वर के बल से शत्रु से लड़े, मित्र से मिले, लक्ष्मी और कीर्ति की प्राप्ति करे। विवाह, राजा का दर्शन, देवता की सिद्धि और राजा अथवा राज्य कर्मचारियों को वश में करना ये सब कार्य स्वर के बल से होते हैं स्वर के बल से ही देश विदेश में घूमना होता है।

८० (क) जिस दिन प्रातःकाल से विपरीत स्वरों का उदय हो अर्थात् चन्द्रमा के स्थान में सूर्य और सूर्य के स्थान में चन्द्रमा बहे उस समय ये नीचे लिखे अनुसार फल जानना चाहिए—पहिले दिन में मन का उद्वेग, दूसरे में धन की हानि, तीसरे में गमन और चौथे में इष्ट का नाश होता है। पांचवें में राज्य का विध्वंस, छठे में सब अर्थों का नाश, सातवें में व्याधि और दुःख, आठवें में मृत्यु कहा है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लगाये रखना अध्यात्म दृष्टि से उपयोगी नहीं है। इसलिए उन अध्यात्म योगियों के लिए तो ये मिथ्या कुच के समान हैं—४५०

हे महानुभावो ! जैन आम्नाय ऐसी है कि मात्र स्वर विचार के लिए ही इसको सम्यग् प्रकार से ग्रहण करने अर्थात् स्वरों द्वारा शुभाशुभ फल को समझने के लिए और सम्यग् प्रकार से समझ कर उसके अनुसार कार्य करने से

(ख) प्रातःकाल, मध्यान्ह और सायंकाल इन तीनों कालों में यदि स्वरों का उदय पहले कहे हुए से उल्टा आठ दिन तक बराबर चले तो उससे दुष्ट फल कहा है।

(ग) जिस दिन प्रात:काल और मध्यान्ह में चंद्रमा का स्वर और सायंकाल से सूर्य का स्वर चले उस दिन जय और लाभ कहा है और यदि उल्टा चले तो शुभ काम करना छोड़ दे अर्थात् अनिष्ट फल होता है।

(घ) जिस अंग का स्वर चलता हो उसी अंग के हाथ की हथेली से सोकर उठा हुआ मनुष्य मुख का स्पर्श करे तो अपने अभिष्ट फल को पाता है।

(ङ) दूसरे को दान देने में, ग्रहण करने में, या घर से बाहर जाने में जिस अंग की नाड़ी चलती हो उसी हाथ या पांव को आगे करके वस्तु को ग्रहण करे तो इस प्रकार फल जानें। ऐसा करने से न हानि हो, न कलह हो, न कण्टक (शत्रु) से विधे और वह सुख पूर्वक सब उपद्रवों से बचकर घर लौट आवे गुरु, बन्धु, राजा, मंत्री, आदि मान्य लोगों से अपनी कार्य सिद्धि के लिए पूर्णांगों से मिलने से मनोरथ सिद्ध होता है।

(च) अग्नि का दाह, चोरी, अधर्म, घर्षण, वादि को निग्रह करना हो तो खाली नाड़ी की तरफ के हाथ से ही जय, लाभ और सुख की अभिलाषा मनुष्य करे।

जो जीव (पूर्ण) स्वर में शस्त्र को बांधे और जीव स्वर में ही शस्त्र को खोले उसी हाथ से शस्त्र को धारण करे, उसी हाथ से शस्त्र को फैंके वह मनुष्य युद्ध में हमेशा जीतता है।

(छ) प्राण वायु खींचते हुए यदि सवारी पर चढ़े और पवन को निकालते हुए उतरे तो वह सर्व कार्यों को सिद्ध करेगा। (शिवस्वरोदय)

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मनुष्य सब प्रकार के इसमें वर्णन किये गये सुखों को प्राप्त कर सकता है—४५१

कह्यो एह संक्षेपथी, ग्रन्थ सुरोदय सार।
भणे गुणे ते जीवकुं, चिदानन्द सुखकार ॥४५२॥

अर्थ—मैं (चिदानन्द) ने स्वरोदय सार ग्रन्थ संक्षेप से कहा है। इस ग्रन्थ को पढ़ने और समझने वाले मनुष्यों को यह सुख देने वाला है—४५२

कृष्णासाडी दसमी दिन शुक्रवार सुखकार।
निधि इंदु सर पूर्णता[८१] चिदानन्द चित्त धार ॥४५३॥

अर्थ—मिति आसाढ़ वदि दसमी शुक्रवार विक्रम संवत् १९०५को चिदानन्द ने इस ग्रन्थ की रचना की—४५३

नोट—जैन श्रावक पंडित हीरालाल दूगड़ ने विक्रम संवत् २०३० में स्वरोदय सार का अर्थ-विवेचन आदि कर दिल्ली में प्रकाशित किया।

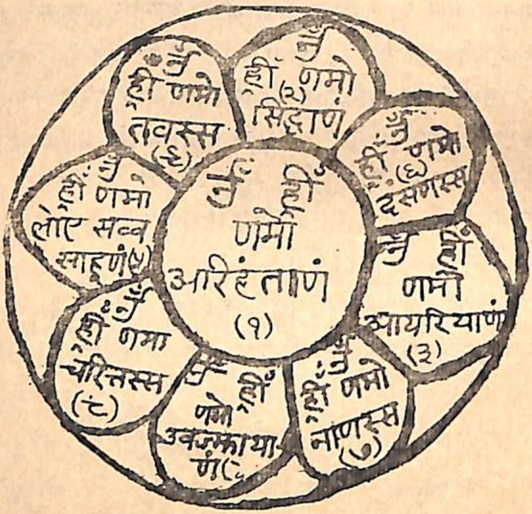

८१—संवतसर मुनि पूर्णता, नंद चन्द चित्तधार। अर्थात् संवत् १९०७ को यह ग्रन्थ समाप्त किया। ऐसा पाठांतर है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट

[चिदानन्द जी कृत "अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश" ग्रन्थ में से]

८२ योग शब्द का अर्थ

दो तीन वस्तु के मिलने का नाम योग है। वही दिखाते हैं कि, जैन धर्म में मन वचन और काया के व्यापार को योग कहते हैं। ज्ञान, दर्शन और चरित्र को भी योग कहते हैं। करना, कराना और अनुमोदन को भी योग कहते हैं। अथवा अष्टांग योग प्रसिद्ध ही है। जिस-जिस वस्तु की योजना की जाय उसे भी योग कहते हैं, इस प्रकार योग तो कई तरह के होते हैं; परन्तु इस जगह तो शास्त्र के अनुसार अथवा पातंजल योग के अनुसार योग का वर्णन करते हैं।

---

८२. प्रत्येक मनुष्य को नीचे की तीन बातें जानने की उत्कंठा रहती है और वे बातें इस शास्त्र द्वारा जानी जा सकती हैं।

१—बालारिष्ट—अर्थात् यह बालक १ से १० वर्ष तक जीवित रहेगा या नहीं ? इसका प्रथम निर्णय करना चाहिए क्योंकि यदि इस बात का निर्णय न किया हो तो अल्पायु होने से निमित्त शास्त्र से महान योगों का फल बतलाकर मूर्ख निमितज्ञ हंसी का पात्र बनता है।

तथा बालारिष्ट यदि सूक्ष्म रीति से देखना आता हो तो उसके साथ अरिष्ट-भंग के योग हैं या नहीं इसका भी निश्चय करना चाहिए। यदि अरिष्ट भंग हो तो उस बालक को योग्य रीति से शारीरिक स्वास्थ्य को सावधानी पूर्वक निरोगी और सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

२—मनुष्य की आयु कितने वर्षों की है उसका निर्णय करना चाहिए। आयु दो प्रकार की होती है—कर्मज और दोषज। कर्मज अर्थात् मनुष्य यदि

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

योग के भेद

योग तीन प्रकार का है—इच्छायोग, शास्त्रयोग, सामर्थ्य प्रतिज्ञायोग ।

इच्छायोग

अपने ज्ञानावरणादि कर्मों के तथाविध क्षयोपशम से सुने हुए शास्त्रों और उनके अर्थ से योग का ज्ञान हो जाने पर या ज्ञान प्राप्त न होने पर उसका ज्ञान प्राप्त करने की और उस योग को ग्रहण करने की इच्छा करनी, परन्तु प्रमाद से कार्य में उसको परिणत न करना ही इच्छायोग है ।

शास्त्रयोग

जो पुरुष योग का ज्ञान हो जाने पर यथार्थ स्वरूप में विकथादि का त्यागी, अप्रमादी, धर्म-व्यापार के योग्य, श्रद्धावान, तीव्र ज्ञान से संयुक्त होकर वचनों का वृथा भाषण न करे, और मोह के कम होने से सत्य प्रतीति वाला हो, तथा कालादि विकल्पनीय बाधाओं से अतिचारादि दोषों को भी जाने, परन्तु ठीक-ठीक उन अतिचारों का त्याग न कर सके इसे शास्त्र-योग कहते हैं ।

अपने जीवन का दुरुपयोग न करे तो उसमें रही हुई प्राणशक्ति उसे कितना पूर्ण आयुष्य देगी इसका निर्णय करना चाहिए । यदि इस बात का निर्णय कर लिया जावे तो उस मनुष्य को दोषज अर्थात अयोग्य दुर्व्यसनों से आयुष्य को जो हानि पहुंचे जैसे कि अकस्मात् रोग, अव्यवस्थित जीवन आदि संयोग जो आयु को घटाते हैं और पूर्णायु भोगने में कमी करते हैं । ऐसे संयोग कि जिनका प्रतिकार हो सकता हो उसके लिए योग्य उपाय करना चाहिए जिससे पूर्ण आयु भोगने के भाग्यशाली बनें ।

३—मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार अपना जीवन किन साधनों से प्राप्त करेगा, उसमें उसे सफलता मिलेगी, कीर्ति संपादन करेगा या प्रकृतिदत्त शक्ति का सदुपयोग किस प्रकार करेगा ? इन प्रश्नों का अच्छी तरह निर्णय कर सकता हो तो इसे जान कर वह मनुष्य उत्साहपूर्वक हिम्मत से तथा दृढ़ श्रद्धा से आगे बढ़कर अपने जीवन को उपयोगी और यशस्वी बना सकता है । इसलिए निमित्त शास्त्र यह दैवी शास्त्र मनुष्य का उपयोगी और उसके जीवन को सुन्दर बनाने वाला शास्त्र कहा हुआ है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सामर्थ्य प्रतिज्ञा योग

शास्त्र में जो-जो उपाय दिखाए हैं उनका अतिक्रम अर्थात् शक्ति की अधिकता से जो धर्म व्यापार-योग का स्वीकार किया जाय उसे सामर्थ्य प्रतिज्ञायोग कहते हैं। इसमें सिद्धपद प्राप्ति की बहुत सम्भावना है, इसका अतिक्रम न करना चाहिए, किन्तु शास्त्र से सम्पूर्ण अर्थों को जानना चाहिए, इसका दूसरा नाम सामर्थ्य योग भी है। यह सर्वज्ञ पद, सिद्धिपद, एवं सकल-प्रवचन-प्रज्ञा प्राप्ति आदि का हेतु है।

इसके दो भेद हैं—एक तो धर्म-संन्यास, दूसरा योग-संन्यास। मोहनीय के क्षयोपशम होने को धर्म संन्यास कहते हैं। कायादि व्यापार और कायोत्सर्ग आदि को योग-संन्यास कहते हैं। दोनों प्रकार के सामर्थ्ययोग समस्त लाभ के हेतु हैं और ये दोनों योगों का दूसरा अपूर्वकरण में समावेश होता है। इस जगह प्रथम अपूर्वकरण को यथाप्रवृत्तिकरण के साथ लिया है, इसलिए इसमें सामर्थ्ययोग नहीं हो सकता। क्योंकि इस जगह ग्रन्थिभेद नहीं है। इस लिए अनिवृत्तिकरण किये बाद यह धर्म-सामर्थ्ययोग होगा, क्योंकि अनादि काल से आत्मा के जो-जो अपूर्व शुभ और शुभतर परिणाम धर्मस्थानक के विषय में हैं, वही धर्म-संन्यास है। कारण यह है कि अनिवृत्तिकरण करने का फल है सम्यग्दर्शन, जिसके चिह्न हैं शम-संवेगादिरूप आत्मपरिणाम। शास्त्रों में कहा भी है कि—

"शम-संवेग-निर्वेदानुकम्पाऽऽस्तिक्यलक्षणैः।
पञ्चभिः पञ्चभिः सम्यक् सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ॥ १ ॥"

अर्थात् शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य इन पांचों लक्षणों से सम्यक्त्व पहचाना जा सकता है।

और जब यथार्थ सम्यग्दर्शन होने पर जीव तथाविध कर्मस्थिति को कम करता है, तब धर्म-संन्यास नाम का प्रथम सामर्थ्ययोग होता है। क्योंकि शास्त्र में कहा है कि—

"गंठित्ति सुदुब्भेओ, कक्खड-घण-रूढ़-गंठिव्व।
जीवस्स कम्म-जणिओ, घण-राग-दोस-परिणामो ॥१॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सम्मत्तम्मि उ लद्धे, पलियपहुत्तेण सावओ हुज्जा।
चरणोवसमखयाणं, सागरसंखंतया हुन्ति ॥२॥"

इस रीति से स्थिति-भेद करके ऊपर जैसे-जैसे बढ़े वैसे-वैसे ही आत्म-वीर्य में जो उल्लास पैदा होता है, इसे ही धर्म-संन्यास योग कहना चाहिए। यही योग पारमार्थिक है—तात्त्विक है, इसीलिए इसको पहले कहा है। परन्तु कोई समय दीक्षा-ग्रहण करने के समय इसको अतात्त्विक भी कहा है; क्योंकि उस समय दीक्षा सन्मुख होती है, किन्तु उसे अभी ग्रहण नहीं की है। इसलिए यहां ज्ञानरूप प्रतिपत्ति विशेष है, परन्तु धर्म-संन्यास सामर्थ्य का अधिकारी भव-विरत होना चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि दीक्षा का अधिकारी आर्य-देश में उत्पन्न हो, विशिष्ठ जाति और कुल की मर्यादा वाला हो, शुभ-कर्म करने की बुद्धि रखता हो और प्रपञ्च-शून्य हो। आत्म-परिणाम भी उसका ऐसा विचार करने वाला हो कि—मनुष्यपन मिलना दुर्लभ है, सम्पत्ति चंचल है, विषय दुःख के हेतु हैं और अन्त में विरस हैं जहां संयोग है वहां वियोग अवश्य है, शरीर मरण सहित है, और संसार का विपाक दारुण है। इस तरह संसार को गुण-शून्य और विरस विचारता हुआ सहज विरक्त हो जाय, जिससे क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्यादि स्वल्प हों, जो यौवन में भी निर्विकार हो, जो राजा या मुसद्दी आदि बहुमान्य हो, किसी से द्रोह न करने वाला हो, श्रद्धावान् हो, ज्ञान-योग का अधिकारी और प्रव्रज्या का आराधन करने वाला हो, ऐसा पुरुष धर्म-संन्यास के योग्य है। ऐसा व्यक्ति साधु बनने के लिये उपयुक्त है।

दूसरा योग संन्यास-सामर्थ्य एकान्त पारमार्थिक—तात्त्विक ही है, क्योंकि क्षपक-श्रेणि के प्रारम्भ से लेकर केवलज्ञान उत्पन्न होने तक तथा शैलेशी अवस्थागत योगनिरोध के समय तक योगी की अवस्था को योग-संन्यास-सामर्थ्य कहा जाता है।

इन तीनों ऊपर के कहे हुए योगों में से प्रथम योग भव्य मिथ्यादृष्टि को होता है और दूसरा योग ग्रन्थिभेदन करने के बाद सम्यग्दृष्टि, देशव्रती प्रमुख को होता है। और तीसरा योग दीक्षा के सन्मुख भव-विरक्त की अयो-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

गावस्था तक जानना चाहिए। इसको विस्तार से देखना हो तो "योगदृष्टि-समुच्चय" नाम का ग्रन्थ जो श्री हरिभद्रसूरि जी का निर्माण किया हुआ है। उसमें तथा योगविंशतिका, आदि योग ग्रंथों में देखना चाहिए।

यह हठ की प्रवृत्ति साधु को प्रथम ही होती है, श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर-स्वामी तक चौबीस तीर्थंकरों ने हर एक बात से मन, वचन, काया को रोका। क्योंकि इस मन, वचन, काया की तथा इन्द्रियों की अनादि काल से स्वतः प्रवृत्ति हो रही है। इनकी प्रवृत्ति न होने देना, और जबरदस्ती से वश में करना यह हठयोग ही तो हुआ, क्योंकि जैसे श्री नेमिनाथ स्वामी के पास से ढण्ढण मुनि ने अभिग्रह लिया कि मेरी लब्धि से आहार मिले तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं। जब ऐसा हठ किया तो अन्त-राय कर्म के ज़ोर से आहार का योग न मिला। तब एक दिन श्री कृष्ण महा-राज श्री नेमिनाथ जी को बन्दना करके पूछने लगे कि हे स्वामिन्! अठारह हजार मुनिराज हैं, उनमें कौन सा मुनि उत्कृष्ट है? तब श्री नेमिनाथ स्वामी कहने लगे कि ढण्ढण मुनिराज सबसे उत्कृष्ट है।

श्री कृष्ण महाराज को ढण्ढण ऋषि को वन्दना करने के लिए उत्कण्ठा हुई, भगवान् नेमिनाथ को वन्दना कर वहां से चल दिया और इधर से ढण्ढण ऋषि भी गोचरी की गवेषणा करते हुए श्री कृष्ण महाराज को रास्ते में मिले। तब श्री कृष्ण ने हाथी से उतरकर ढण्ढण ऋषि को तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया।

उस समय एक स्वभाव से कृपण धनवान् वणिक को श्री कृष्ण को ढण्ढण ऋषि को नमस्कार करते देखकर साधु को भिक्षा देने का (बहराने का) भाव उत्पन्न हुआ और ढण्ढण ऋषि जी को अपनेघर में लेजाकर मोदक भिक्षा में दिए। तब ढण्ढण ऋषि जी ने शुद्ध जानकर ग्रहण किए और नेमिनाथ स्वामी के पास आये, पूछने लगे कि हे भगवन्! यह आहार मेरी लब्धि से मिला है या नहीं? उस समय श्री नेमिनाथ स्वामी कहने लगे कि हे वत्स! यह तेरी लब्धि नहीं, यह लब्धि तो त्रिखण्डाधिपति वासुदेव की है। तब ढण्ढण ऋषि कहने लगे कि हे स्वामिन्! मुझे दूसरे की लब्धि का आहार न कल्पे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ऐसा कहकर पजावे पर जाकर मोदकों (लड्डुओं) का चूर्ण करते हुए शुद्ध भावना-बल से कर्मों को चूर्ण किया और केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

ऐसे ही श्री वर्धमान स्वामी ने भी अनेक तरह के मौनादि अभिग्रह लिए। सो श्री महावीर स्वामी का वर्णन श्री कल्पसूत्र अथवा इनके चारित्र से जानो यह हठयोग का शब्दार्थ कहा, अब कुछ साधन करने वाले के विषय में कहेंगे।

[८२]हठयोग का अधिकारी

हठयोग करने वाले को प्रथम-ब्रह्मचारी होना चाहिए। दूसरा—उसे क्षुद्र अर्थात् ओछी प्रकृति का न होना चाहिए। क्योंकि जब क्षुद्र प्रकृति का होगा तो सबके सामने गुरु की बताई रीति कहता फिरेगा और योग्य अयोग्य को न देखेगा, थोड़े ही में उसे अभिमान हो जाएगा, लोगों को चटक मटक दिखाने लगेगा। इसलिए गम्भीर आशय वाला होना चाहिए। क्योंकि गम्भीर आशय वाला होगा तो योग्य अयोग्य को देखेगा और किसी को अपना

---

८३. स्त्री-स्वरोदय शास्त्र

कई लोगों के मन में साधारणतया यह शंका उत्पन्न होती है कि इस स्वरोदय का विधान स्त्री-पुरुष दोनों के लिए एक ही प्रकार का है अथवा भिन्न-भिन्न? यह शंका होने का मूल कारण यह है कि स्त्री पुरुष की वामांगना कहलाती है और वास्तव में उसके वामांग को प्राधान्य भी है।

शरीर रचना की दृष्टि से विचार करें तो स्त्री-पुरुष से भिन्न है। परन्तु स्वरोदय की दृष्टि से स्त्री-पुरुष दोनों के लिए स्वर सम्बन्धी तमाम नियम समान रूप से ही लागू पड़ते हैं। अर्थात् उपर्युक्त सब नियम स्त्री-पुरुष के लिए एक समान ही समझने चाहिए। स्त्री-पुरुष का भेद स्वर की दृष्टि से नहीं परन्तु अमुक शारीरिक रचना के कारण से है। ऐसा समझकर सब काम करना चाहिए।

इस सृष्टि में पुरुष सूर्य का प्रतिनिधि तथा स्त्री चंद्र की प्रतिनिधि है। ऐसा स्वर शास्त्र में स्पष्ट दर्शाया गया है। इसलिए पुरुष में सूर्य प्रधान गुण वद्यमान हैं तथा स्त्री में चंद्र प्रधान गुण विद्यमान हैं। स्वरोदय विज्ञान

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हाल न कहेगा, गुरु की बताई हुई रीति को समझकर आत्मार्थी बनेगा। तीसरा—परिषह अर्थात् भूख, प्यास, निन्दा, स्तुति सुनकर सहन करे, कहने वाले को शापादि न दे; आलसी, क्रोधी, कपटी, लोभी, अहंकारी न हो। जितेन्द्रिय हो। क्योंकि जिसकी इन्द्रियां चपल होंगी वह योग में प्रवृत्त न हो सकेगा, योगमार्ग का अभिलाषी गुरु आज्ञाकारी, आत्मार्थी और मोक्षाभिलाषी हो, परिश्रम से थकने वाला न हो। इत्यादि ऊपर कथन किए हुए गुण जिसमें हों उसे योग का अधिकारी समझना चाहिए। और वही योग-साधन करने के लिए पात्र है।

हठयोग के साधक के लिए आहार विधि

योगी आहार इस प्रकार करे कि जो न न्यून हो और न अत्यन्त अधिक हो। न्यूनाधिक हो जाने से साधन ठीक नहीं बनता। क्योंकि अधिक खाने से तो प्रमाद वश होकर परिश्रम न कर सकेगा। इसलिए शास्त्रानुसार आहार को अंगीकार करे। जितनी उसकी भूख हो—मुझे इतना आहार चाहिए, ऐसा अनुमान करे और अनुमित आहार के चार भाग करे। उन

की दृष्टि से हम ऐसा कह सकते हैं कि जब पुरुष की चंद्र नाड़ी चलती हो और पुरुष में सूर्य प्रधान गुणों का प्रभाव चंद्र नाड़ी के प्रभाव से अमुक अंशों में हल्के (Mild) हो जाते हैं परन्तु जब सूर्य नाड़ी चालू होती है तब उसे पूर्ण बल मिलने से वह अधिक उग्र [Aggressive Form] स्वरूप धारण करता है। तथा बराबर इसी प्रकार की स्त्री की नाड़ियों की परिस्थिति है। जब स्त्री की चन्द्र नाड़ी चलती हो तब ज्ञात करेंगे कि उस समय स्त्री में स्त्रीत्व के गुण पूर्ण अवस्था में विद्यमान हैं और जब उसकी सूर्य नाड़ी चालू हो तब ज्ञात करेंगे कि उसके स्त्री सुलभ गुण कुछ-कुछ मंद अवस्था में हैं। स्वर विज्ञानियों ने इन्हीं बातों के आधार पर स्त्री पुरुषों के लिए करने योग्य बहुत कार्यों का निश्चय किया हुआ है। जैसा कि इच्छानुकूल पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करना। गर्भ धारण न करना आदि। इस संक्षिप्त आलोचना का खयाल पाठकों को अवश्य ध्यान में आया ही होगा। ऐसी मैं आशा रखता हूं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चार भागों में से दो भाग के अन्दाज गृहस्थ के यहां से आहार अर्थात् पका हुआ (रन्धा हुआ) अन्न लावे, और एक भाग जल लावे, सो उन तीनों हिस्सों से अपनी उदर-पूर्ति करे, एक भाग उदर का खाली रखे। खाली रखने का प्रयोजन एक तो वीतराग देव की आज्ञा है कि—आत्मार्थी साधु हमेशा ऊनोदरी तप करे, पशु की तरह ठूंस-ठूंसकर उदर को न भरे।

दूसरा प्रयोजन यह है कि पेट में एक भाग खाली रखने से श्वास उछ्वास की गति ठीक रहती है। क्योंकि यदि अन्न और जल से सम्पूर्ण पेट भर लेगा तो श्वासोछ्वास वायु का आना जाना कदापि ठीक न रह सकेगा, यह सर्वजन-अनुभूत है कि अन्न के कम खाने वालों का शरीर प्रफुल्लित और आलस्य-रहित रहता है और जो मनुष्य पेट भर लेते हैं उनको थोड़ी देर बाद ही आलस्य आ जाता है। जो लोग केवल अन्न अर्थात् आहार से ही पेट भरते हैं और पीछे से पानी पीते हैं उनका तो श्वासो-छ्वास बहुत तकलीफ से निकलता है, दूसरे लोग भी देखकर कहते हैं कि आज तो माल खूब खाया। अजीर्ण होने से स्वास्थ्य पर पानी फिर जाता है। जब गृहस्थों को भी मिताहारी होना चाहिये तब योगी के लिये विशेष क्या कहें। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार भोजन करना चाहिये—और जो योगाभ्यास करने वाले साधु हैं वे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार भिक्षा-वृत्ति के वास्ते एक बार गृहस्थ के घर जावें, अपनी उदर-पूर्त्ति के लिये शुद्ध आहार पानी लावें, परन्तु गृहस्थ के घर बारम्बार न जावें। क्योंकि जो मुनि बारम्बार जायेगा तो मांगने खाने में ही उसका काल पूरा हो जायगा; फिर योगाभ्यास किस समय करेगा? दूसरा वीतरागदेव ने भी कहा है कि वैयावृत्य—साधुओं की टहल सेवा—करने वाले के बिना नित्यभोजी साधु एक बार गृहस्थ के घर जाये। बारम्बार जाने वाला भगवदाज्ञा-विराधक है।

योगी के लिये हेयोपादेय वस्तु

अब योग साधनेवाला किस-किस वस्तु का त्याग करे, और किस-किस वस्तु को ग्रहण करे। जो वस्तु भोग में न आवे जैसे १—कडवी चीज

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

(नीम के पत्रादि) ग्रहण न करे। २—भांग, गांजा, तमाकू आदि कोई तरह का नशा अंगीकार न करे, क्योंकि जो नशा करनेवाला होगा, वह बकवृत्ति (बगुला वृत्ति) से लोगों को ध्यान दिखावेगा।

३—आम्ल—खटाई, इमली, कच्चा आम, जामुन, जमेरी, निम्बू, नारंगी आदि नाना प्रकार की खटाइयां हैं, इन्हें ग्रहण न करें, लाल मिरच भी बहुत न खाय, बहुत लवण भी न खाय, बहुत गरम भोजन न खाय क्योंकि ये रक्त-विकार द्वारा स्वास्थ्य को हानिकारक हैं। एवं ऐसी वनस्पतियां कन्दमूलादि अनन्तकाय जो इन्द्रियों को विकार पैदा करनेवाली हैं, न खानी चाहिये। इन्द्रियों को कंदमूल हरित—शाकादि पुष्ट करते हैं और पुष्टि विकार का हेतु है। इसे भी योगी को त्याज्य समझना चाहिये।

योगी तिल, सरसों, मधु (शहद), मदिरा, मांस, इन सबका त्याग करे छाछ, कुलथी, तिलपापड़ी, बासी अन्न, सीरा, सेकी हुई लापसी और कांजी आदि को भी अंगीकार न करे। शीघ्रता से गमनागमन (जाना आना), भागना, अग्नि का सेवन करना, और स्नानादि भी न करे। साधना के समय बहुत तपादि भी न करे, और बहुत मनुष्यों से परिचय भी न करे, बहुत बोलना भी न चाहिये।

योगी के काम में आने वाली वस्तुएं

गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरा, सांठी के चावल, मूंग की दाल, तुबर की दाल, उड़द की दाल, दूध, घृत, मीठा सभी ले सकता है, परन्तु मीठा नित्य न खाय, और लड्डू, जलेबी, सीरा, लापसी, घेबर, कलाकन्दादि इस योग साधनेवाले को बिल्कुल खाने के लिये निषिद्ध है। कारणवशात् सोंठ, पीपर, काली मिरच, जावत्री आदि अंगीकार कर सकता है और ऐसा आहार करे कि जो जल्दी पच जाय। बल्कि रोटी लूखी (खुश्क) खाय, जहां तक बने वहां तक भिक्षा में भी रोटी रूखी लावे, क्योंकि चुपड़ी हुई रोटी गरिष्ठ होती है, पचने में दुर्जर होती है और गरिष्ठ वस्तु के खाने से आलस्य भी आता है। ऊपर लिखी चीजों का संयोग भिक्षा में न मिले तो चना सेका

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हुआ लेकर अपना निर्वाह कर ले, अथवा आधे से भी थोड़ा आहार करे।

योगी के लिये स्थान

योगी के लिये स्थान कैसा होना चाहिये वह दिखाते हैं। एकान्त अर्थात् बस्ती से बाहर हो, और उस मकान में स्त्री, नपुंसक, तिर्यञ्च आदि का आना जाना न होना चाहिये। इसी वास्ते जैनधर्म में ब्रह्मचारी को नव वाडों से ब्रह्मचर्य पालन करना कहा है। उन नव वाडों का वर्णन शास्त्रों में है, ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से नहीं लिखते। अन्य मत में कई एक प्रकार मठादि के बताये हैं वे भी ग्रन्थ बढ़ने के भय से नहीं लिखते। परन्तु उस एकान्त स्थान में चूना-पत्थर आदि का मकान न हो। वह दूसरी रीति से योग साधनेवाले की पीठिका कही गई है।

आसन प्रतिष्ठा

योग साधने वाले को प्रथम आसन दृढ़ करना चाहिये। आसनों की संख्या चौरासी लक्ष है जिसमें चौरासी आसन प्रसिद्ध हैं। उनमें भी जो इस योग-साधना में बहुत उपयोगी हैं उन्हीं आसनों के कुछ गुणादि वर्णन करते हैं।

स्वस्तिक-आसन

यह समस्त आसनों में सुगम है, और मंगल रूप भी है, इसीलिये इसको प्रथम कहा है। सुगमता इसकी इस लिये है कि जंघों के मध्य में दोनों पात्रों के तलवों को करके और देह सरल करके बैठना, उसे स्वस्तिकासन कहते हैं। इसका नाम स्वस्तिक क्यों दिया यह दिखलाते हैं—स्वस्ति नाम है कल्याण का, जो भव्य जीव आत्मार्थी आत्मसाधन और मोक्ष जाने की चाहना करे उसे कोई तरह का विघ्न न हो, क्योंकि सत्कर्म करने में प्रायः विघ्न आया ही करते हैं। शास्त्रकारों का उल्लेख देखने में आता है कि "श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि"। इसलिये इसे मंगल बुद्धि से पहले कहा है और दूसरा इस आसन में बैठने से सुस्ती—आलस दूर होता है, तीसरा हर एक इसे सहज में कर सकता है, इस वास्ते भी इसी स्वस्तिकासन का पहले स्वरूप-निर्देशन किया है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

२-गोधुक् आसन

ऊकडू (पांव के बल पर) बैठकर एडीयां ऊंची रखे और पांवों के पंजों के बल पर अपना समस्त शरीर का भार डाल कर, जैसे गवाला लोग गाय को दोहने के अवसर पर बैठते हैं, वैसा बैठने को गोधुक् आसन या गोदोहन आसन कहते हैं। इसी आसन से शासनपति भगवान् श्री वर्धमान स्वामी ने सालवृक्ष के नीचे केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त किया था।

३-गोमुख आसन

बांईं अर्थात् डाबी तरफ कटि (कमर) के नीचे दक्षिण अर्थात् जीमने पांव की गुल्म अर्थात् एड़ी धरे और जीमनी कटि की तरफ बांये पांव की एड़ी को धरकर बैठ जाय, और दोनों घुटनों को ऊपर नीचे कर ले, जैसे गौ का मुख अर्थात् दोनों होठ ऊपर नीचे होते हैं, इस तरह दोनों घुटने करे। इस आसन को कानफटे साधुओं में जो गोरखनाथ हो गये हैं उन्होंने विशेषकर किया है, इसी लिये इसको गोरक्ष-आसन भी कहते है।

४-वीरासन

जैसे वीर अर्थात् शूर-वीर मनुष्य युद्ध में धनुष बाण को खींचते हैं, उस रीति से जो खड़ा होना उसी का नाम वीरासन है। सो यह वीरासन कई तरह से होता है, इसीलिये नाम मात्र लिखा है, क्योंकि आसनों की प्रक्रिया तो गुरु के पास से अपनी दृष्टि से देखे और गुरु करके दिखावे तब ही तथावत् मालुम होती है।

५-कूर्मासन

दोनों पगों (पांव) की एड़ी से गुदा को रोक करके सावधान स्थित हो जाने को कूर्मासन कहते है।

६-कुक्कुटासन

अब कुक्कुटासन कहते हैं—बाएं पैर के तलवे दाहिनी (जीमनी) जंघा के ऊपर रखे, अर्थात् पद्मासन लगाकर फिर दोनों हाथों को ऊरु अर्थात् जंघा के बीच में हाथ घुसेड़कर जमीन पर टेके, फिर हाथों पर जोर देकर और आसन करता हुआ ऊपर को उठे और जमीन से अधर (आश्रय-रहित) हाथों के ऊपर खड़ा रहे उसी का नाम कुक्कुटासन है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

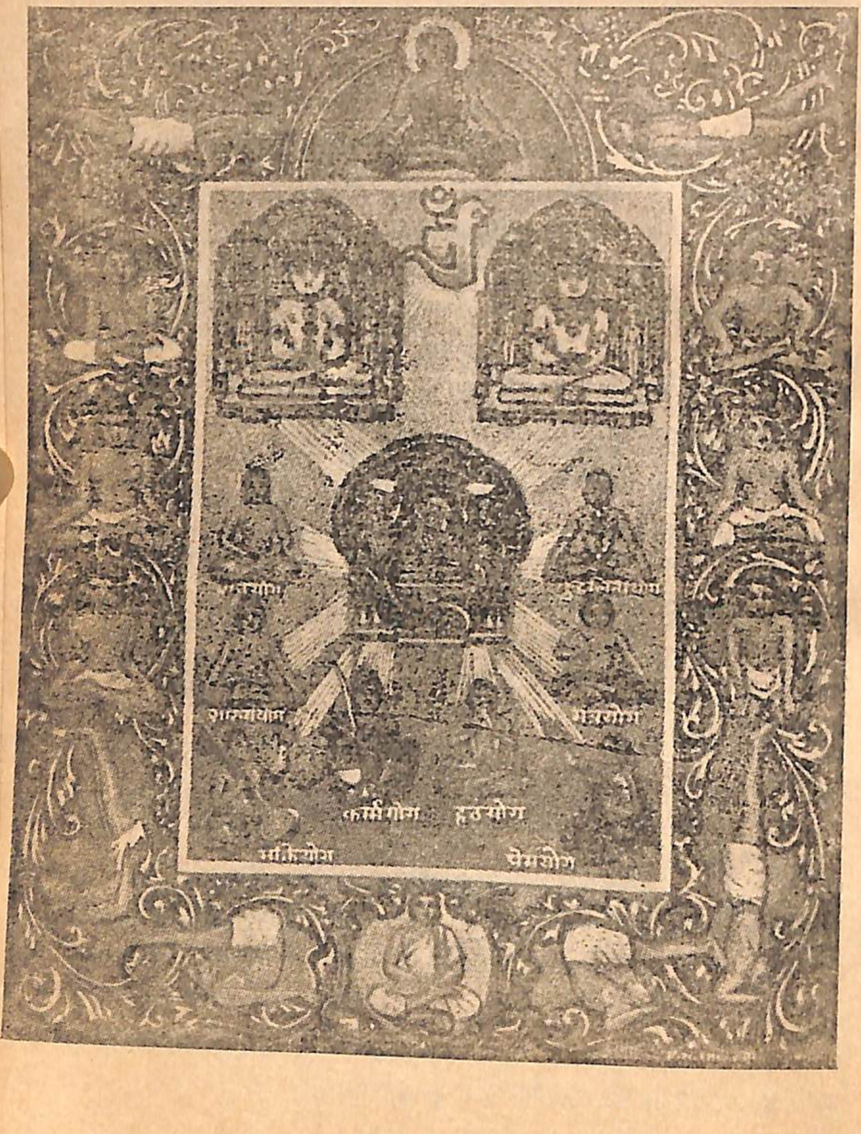

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

७-धनुषासन

दोनों पांवों के अंगूठों को दोनों हाथों से ग्रहण करके एक को कानपर्यन्त लावे, धनुष की तरह आकर्षण करे। अथवा ऐसा भी कहते हैं कि एक पैर को फैला करके, एक से अंगुठा को ग्रहण करे और एक हाथ कानपर्यन्त करे इसका नाम धनुषासन है।

८-पश्चिमोतानासन

दोनों पांव दण्ड की तरह लम्बे करे और धरती को पैरों से पकड़े, अर्थात् पांवों को चिपटे जमा रखे, और दोनों हाथों को फैलाकर पांवों के दोनों अंगूठों को दोनों हाथों से पकड़े, परन्तु पांव ऊपर को न उठने पावे, ज़मीन से ही लगे रहें, फिर माथे को नीचा करके जंघों के ऊपर लगाकर स्थिर हो जाय, अथवा दोनों पांवों को चिपटा ले, और दोनों हाथ पैरों के इधर-उधर से करके तलवों के बीच में हाथों की दसों अंगुलियां मिलावे, परन्तु अंगुली ऐसी मिलावे कि छूट न जाय, फिर माथा जंधा के ऊपर रखकर स्थिर हो जाय। इस आसनके कुछ गुण दिखलाते हैं। यह आसन ऊपर कहे आसनों में से मुख्य आसन है और सुषुम्णा-मार्ग को बतानेवाला है, प्राणों की गति सूक्ष्म अर्थात् धीमा करनेवाला है, पेट की अग्नि को तीव्र करता है और उड्यान-बन्ध में भी मदद देता है, पेट के मध्य भाग को कृश बनाता है, जिससे तोंद नहीं निकलती, पेट पतला बना रहता हैं, और कब्जियत (मलावरोध) को दूर करता है, दस्त को साफ (खुलासा) करता है। जो मनुष्य इस आसन को लगाने का अभ्यास करेगा, उसको शरीर सम्बन्धी अनेक प्रकार के लाभों के अतिरिक्त योगाभ्यास में विशेष सहायता मिलेगी।

९-मयूरासन

दोनों हाथ जमीन पर रखकर दोनों कुहणी (कोणी) मिलाकर नाभि और कलेजा के बीच में रखकर कोणियों के ऊपर सब शरीर का भार देकर दोनों पांव पीछे से ऊंचे उठावे, और जमीन पर सिवाय हाथों के कोई शरीर का अंग न रहने दे। जैसे मयूर अपने पंखों को ऊपर करके नाचता है, इसी रीति से पांव ऊंचा करे, इसी का नाम मयूरासन है। इसका

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रकारान्तर भी कुछ बतलाते हैं कि, माथा जमीन से लगा रहे और बाकी कुल रीति उस प्रकार से जान लेनी चाहिये।

इसके कुछ गुण

इस मयूर-आसन के करने में क्या लाभ है, अथवा क्या-क्या फायदे हैं वही दिखाते हैं—इस के आसन करने में जलन्धर, तापतिल्ली, फीया आदि अनेक रोग चले जाते हैं, और वात, पित्त, कफ, इनको भी यह मयूरासन नाश करता है अर्थात् विषम दोषों को सम करता है। जो कदाचित् कुत्सित अन्न खाया जाय तो उसे भी भस्म कर देता है, और जब बस्ति करने का काम पड़े अथवा कुछ जल पेट में रह जाय तो इसके करने से जल्दी रेचन हो जाता है।

१०-सिंहासन

दोनों घोटू जमीन पर टेककर दोनों एडियों को गुदा के पास ले जाकर उसके ऊपर बैठ जाय और दोनों हाथों के पंजे अर्थात् अंगुली पेट की तरफ और हथेली घोटू की तरफ करके सतर बैठ जाय, परन्तु हाथ में किसी तरह का शल्य न हो, और गरदन को कुछ झुकी हुई सामने रखे दोनों आंखों की पुतली दोनों भंवरों (भौंओं) के बीच में रखे, और मुख को फाड़े, जीभ को अच्छी तरह से बाहर निकाले, और सिंह की तरह गर्जना अर्थात् शब्द करे। इसका अभ्यास करने से शरीर में फुरती बनी रहती है, और तेजी बनी रहती है। कदाचित् गोचरी (भिक्षा) में खटाई आदि आ जाय तो खाने के बाद इस आसन को करे। इससे योग में किसी प्रकार का विघ्न न होगा।

अब ऊपर लिखे हुए आसनों में परिश्रम होता है, इसको दूर करने के वास्ते शिवासन को अवश्यमेव करे। इसलिये शिवासन का स्वरूप लिखते हैं।

११-शिवासन

जमीन से पीठ लगाकर शयन करे और हाथ पांव सीधे कर दे, अर्थात् जैसे मुर्दा होता है वैसे सरल होकर सो जाय। इस आसन से शरीर का

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

परिश्रम दूर हो जाता है, इस लिये परिश्रम दूर करने के लिये यह आसन श्रेयस्कर है।

१२-सिद्धासन

दांये पांव की एड़ी को योनि के मध्य लगावे। गुदा और लिंग मध्यभाग का नाम योनि है—सीवन-स्थान को योनि कहते हैं। उस स्थान को एड़ी से दबाये रहे और दाहिने पांव को उठाकर लिंग की जड़ में एड़ी को लगा कर नीचे को दबावे,इसी रीति से बैठकर फिर एड़ी को हृदय से चार अंगुल फरक से रखे, और नेत्रों को अचल दृष्टि से भृकुटी के मध्यभाग में लगा दे उसका नाम सिद्धासन है। इस आसन का फल तो अन्य मतावलम्बियों के शास्त्रों में बहुत वर्णित है, और श्री जैनमत में भी गुरुमुख से इसकी महिमा सुनने वाले जिज्ञासु जानते हैं, तथा शास्त्रों में भी वर्णन है। "यथा नाम तथा गुणा:" इस उक्ति से भी जान पड़ता है कि इस आसन में कोई विशेष महत्त्व होना चाहिये।

१३. पद्मासन

बाईं जंघा के ऊपर दायां पांव स्थापन कर बांया पांव दाहिनी जंघा पर स्थापन करके दांये हाथ को पीठ पीछे घुमाकर बांयी जंघा पर स्थित पांव के अंगुठे को पकड़े, और ऐसे ही बांये हाथ को पीठ पीछे ले जाकर दाहिनी जंघा पर स्थित जो बांया पांव उसके अंगुठे को पकड़े, और हृदय के समीप ठोड़ी चार अंगुल के अन्तर में रखे, नेत्रों से नासिका की डण्डी अर्थात् अग्रभाग (नोक) को देखे।

अब प्रकारान्तर से भी पद्मासन को दिखाते हैं—बांया पांव को आगे दाहिनी जंघा के ऊपर और दाहिने पांव को बांयी जंघा पर रखे, और हाथों को उन दोनों एड़ियों के ऊपर पहले बांये हाथ को रखे, उसके ऊपर दाहिने हाथ को रखे, अर्थात् जैसे जिन-मन्दिर में भगवान् वीतराग जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा स्थापित की जाती है, इसका नाम पर्यंकासन भी है।

इन आसनों की विधि श्री हेमचन्द्राचार्य कृत योगशास्त्र में देखो, इस जगह तो संक्षेप से नाम तथा गुण वर्णन करते हैं। जैसे पंकज कीचड़ से

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हुआ और जल से वृद्धि पाकर दोनों को छोड़कर पृथक् हो जाता है। इसी रीति से जो मनुष्य इस पद्मासन को साधनेवाला है वह संसार रूप कीचड़ से उत्पन्न होकर और भोगरूप जल से वृद्धि पाकर इन दोनों को छोड़कर इस योगरूप अभ्यास में पृथक् स्थित हो जाता है। इसीलिये इसका नाम कमल पंकज भी है।

इस प्रकार संक्षेप में आसनों का वर्णन किया है, जो पुरुष पहले इन आसनों का अभ्यास दृढ़ करेगा, वह ही पुरुष योगाभ्यास के परिश्रम को उठावेगा, गुरु के बिना योगाभ्यास का रास्ता कदापि न पावेगा, पुस्तक बांचने मात्र से भी हाथ न आवेगा, इसीलिए हमारा कहना है जो कोई योग की सिद्धि करना चाहे वह प्रथम स्वरोदय अर्थात् स्वर का अभ्यास योगी गुरु से अवश्य-मेव करे। क्योंकि जब तक पूरा-पूरा उसका स्वर के तत्त्वों का ज्ञान न होगा तब तक योग की सिद्धि कदापि न होगी। स्वर के ज्ञान बिना जो मनुष्य योगाभ्यास अर्थात् प्राणायाम, मुद्रा, कुम्भकादि का परिश्रम करते हैं, उनका परिश्रम व्यर्थ जाता है, क्योंकि योगाभ्यास की प्रथम भूमिका स्वर-अभ्यास है।

वर्त्तमान काल में बहुत लोग प्राणायामादि अथवा षट्कर्मादि के विषय में परिश्रम उठाते हैं, परन्तु स्वर-अभ्यास के बिना लाचार होकर थक जाते हैं, और समाधि के भेद को नहीं पाते। इसलिए जो योग की इच्छा करने वाला जिज्ञासु है उसको मुनासिब है कि सद्गुरु के पास से विनयपूर्वक शुश्रूषा करके कपट-रहित हो गुरु की चरण-सेवा करे और इस स्वर-साधन की कुंजी सीखे, जिससे सर्व कार्य सिद्ध हों। मकान बनाने वाला यदि पहले नींव को मजबूत करेगा, तो मकान चाहे जितना ऊपर ले जावे उसको कभी भी खतरे का मुंह न देखना पड़ेगा, और न ही किसी प्रकार हानि की सम्भावना होगी।

स्वरोदय-स्वरूप

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांच तत्त्व हैं, और इन पांचों तत्त्वों को ही सभी स्वरोदय वाले कहते हैं। जैनों में भी गुरुकुल-वास विना

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इन्हीं को स्वरोदय वाले पांच तत्त्व कहते हैं, परन्तु यथावत् गुरु मिले और जिज्ञासु को योग्य जाने तो दूसरे भी पांच तत्त्व बतावे। उन पांच तत्त्वों की प्रसिद्धि ही नहीं है, परन्तु मैंने जिस गुरु की चरण-सेवा से योगाभ्यास की रीति पाई है उनकी जबानी इसका स्वरूप समझा है अनुभवी गुरु से ही विद्या का मर्म जाना जा सकता है जो ग्रन्थों में लिखा हुआ नहीं मिलेगा।

थोड़े समय पहले श्री आनन्दघनजी महाराज महान योगी हुए हैं, वे मारवाड़ में बहुत घूमे हैं, और प्रायः कई देशों में प्रसिद्ध भी थे। आयु के नजदीक आने से उन्होंने विचारा कि यदि कोई जिज्ञासु मिले तो इस वस्तु (योग प्रक्रिया) को दूं, ऐसा विचार कर मारवाड़ादि में अच्छी तरह अन्वेषण किया किन्तु कोई योग्य जिज्ञासु व्यक्ति देखने में न आया। अनन्तर गुजरात देश में श्री यशोविजय जी उपाध्याय का नाम सुनकर श्री आनन्दघन जी महाराज गुजरात में गये और उपाध्यायजी से मिले एवं उनसे इस विषय का आदान प्रदान किया। योग्य शिष्य न मिलने से उन्होंने अपनी परम्परा में काई शिष्यादि न किया। क्योंकि उन्हें कोई योग्य शिष्य नहीं मिला। श्री आनन्दघन जी महाराज अपनी बनाई हुई चौबीसी के अन्दर श्री कुन्थुनाथ भगवान् के स्तवन में जो नवमी गाथा है उसमें मन ठहरने की कह गये हैं। परन्तु बिना अध्यात्मी गुरु के गाथा का रहस्य मालुम नहीं होता। वह गाथा भी दिखाते है—

"मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं, ते आगमथी मति आणुं।
आनन्दघन प्रभु माहरुं आणो, तो साचुं करी जाणुं हो ॥कुं॥९॥

इस गाथा में आ-ग-म-थि इन चार अक्षरों में मन ठहरने का मतलब बतलाया, गुरुकुलवास बिना इसका अर्थ समझ में न आया, मैंने इसका अर्थ कितने ही जिज्ञासुओं को खोल कर बताया, जिन्होंने इस अर्थ को पाया, उन्होंने नवकार गुणने में मन भी ठहराया, इसके आगे भी बताते, परन्तु पूरा जिज्ञासु नजर में न आया, इसीलिये वह पद पोथियों में उलटा सीधा गाकर पाठकगण को सुनाया।

परन्तु पूर्वोक्त गाथा के पुर्वार्ध का अर्थ लोग ऐसा करते हैं कि हे श्री

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कुन्थुनाथ स्वामिन् ! मन जो है सो बड़ा दुष्ट है, अर्थात् अति चंचल है, परन्तु इसको आपने वश किया है, सो हे प्रभो ! आगमथी अर्थात् शास्त्र के आधार पर अथवा शास्त्र के श्रद्धान-बल से जानता हूं (विश्वास करता हूं) आगे की तुक में कहते हैं कि हे प्रभो ! मैं तो प्रत्यक्ष तब जानूं, जब मेरा मन स्थिरता पकड़ ले, अर्थात् समाहित हो जावे, ऐसा भाव लोग निकालते हैं।

परन्तु इस अर्थ में तो शंका उत्पन्न होती है कि आनन्दघन जी को श्रद्धा न थी, क्योंकि यदि उन्हें श्रद्धा होती तो ऐसा न कहते कि मैं शास्त्र से श्रद्धान करता हूं, परन्तु प्रत्यक्ष में तो तब ही विश्वास कर सकता हूं जब कि मेरा मन समाहित हो जावे (ठहर जावे)। इस कथन से उन्हें अश्रद्धान उत्पन्न होता है। अथवा उनका मन स्थिर नहीं था। तो वे योगीराज कैसे ?

इस शंका को दूर करने के लिये कुछ प्रयत्न करते हैं कि पूज्यपाद श्री आनन्दघन जी महाराज के समान तो श्रद्धान इस समय होना कठिन है। और उनके समान योगीराज होना भी कठिन है। किन्तु आनन्दघन जी का अभिप्राय न जानने से ऐसा कहना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि देखिये श्री आनन्दघन जी अपनी गाथा में क्या कहते हैं।'आगमथि' इन चार अक्षरों में श्री आनन्दघन जी महाराज का अभिप्राय दिखाते हैं कि एक एक अक्षर में गुरुगम से सम्पूर्ण नाम निकलता है। जैसे 'भीम' कहने से भीमसेन को ग्रहण करते हैं; वैसे ही (आ) कहने से "आया" और (ग) कहने से 'गया", (म) कहने से मन और (थि) कहने से स्थिर। उसका तात्पर्य यह है कि आने जाने में मन को मिलाना (रोकना) उस मिलाने से मन स्थिर होता है। इसी रीति से हे प्रभो ! आपने अपने मन को स्थिर किया, ऐसा उस पद का अर्थ है, परन्तु जैसा लोग कहते हैं उसी रीति से मैं नहीं मानता।

कदाचित् आगम पद करके कोई इस गाथा में शास्त्र का अर्थ लेगा तो जो शास्त्रों में आगम का लक्षण किया है वह व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि आगम का लक्षण, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार में तो "आप्तवचनादाविर्भूतमर्थ-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

संवेदनमागमः" अर्थात् आप्त के वचन ये प्रकट हुआ पदार्थ का जो संवेदन अर्थात् ज्ञान उसका नाम आगम है, न कि शास्त्रों का नाम आगम है। इसी रीति से श्री आनन्दघन जी महाराज जैसे श्रद्धावान थे, वैसे ही अध्यात्म-योगीराज भी थे। वैसा तो वर्त्तमान काल में होना कठिन है इसी रीति से गुरुगम को जानो, जैनमत में किसी तरह का सन्देह मत आनो, श्री आनन्दघन जी महाराज अध्यात्मीओं में उच्च कोटि के थे, अध्यात्म बिना विद्वता की कोई महत्ता नहीं।

इसी रीति से मैं (चिदानन्द अपर नाम कर्पूरचन्द) ने भी योग्य जिज्ञासु बिना किसी को शिष्य न बनाया[८४]।

अब जो वक्तव्य है उसके विषय में कहते हैं। प्रथम कहे हुए पंच तत्त्वों की गति चन्द्र और सूर्य नाड़ी में होती है, इसका ठीक ठीक जानना वही स्वर साधन है।

स्वरोत्थान

स्वरोत्थान प्रथम भृकुटि चक्र से होता है और आगमचक्र से होकर बंकनाल के पास होकर पश्चिम-द्वार से निकलकर शीघ्रता से नाभि में खटका देता है फिर नाभि में उठकर हृदय-कमल पर होकर कण्ठदल के ऊपर होकर जो जीमणा (दाहिना) रन्ध्र है उसमें घुसकर बांयी (डाबी) ओर नासिका-द्वार से निकलता है। इसी प्रकार बांयें रन्ध्र में घुसकर दांयी नासिका से निकलता है। इसी रीति से फिर पीछे को भी जाता है। इस जगह किंचित् परीक्षक पुरुषों के वास्ते परीक्षा अवसर भी है—जो भृकुटि चक्र से नाभि में आता है, सो उसके आने की परीक्षा यह है कि नाभि से खट-खट का शब्द आता है। जैसे घड़ी चक्रों के फिरने से खट-खट करती है उसी प्रकार नाभि में भी होता है।

इस खटके के देखने के वास्ते जब तक गुरु-कृपा न हो तब तक उस खटके का देखना कठिन है। जो गुरु खटके के देखने की रीति बतावे; तब वह खटका भी देखे और बीच का भी कुछ लाभ हो। कदाचित् कोई बुद्धिमान

८४—आप भी अपने हृदय में ही योग प्रणाली लिए स्वर्ग में चले गये।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

एकाग्र चित्त होकर उस खटके की प्रतीति करे तो उस बुद्धिमान को खटका तो प्रतीत हो जायगा, परन्तु उसका जो रहस्य है सो गुरु के बिना कदापि न मिलेगा, क्योंकि श्री मानतुंगाचार्य जी 'पंच परमेष्ठि स्तोत्र' में लिखते हैं कि "गुरुकृपां विना किं पुस्तकभारेण"।

न्यायशास्त्र में भी ऐसा कहते हैं कि "शिवे रुष्टे गुरुत्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन" अर्थात् शिव (इष्ट-देव) के रुष्ट होने पर गुरु रक्षण करने वाला है परन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई रक्षण करने वाला नहीं है। जैन-धर्म में तो गुरु के बिना कुछ भी नहीं होता, इसलिए गुरु की मुख्यता है। अब ऊपर लिखे दोनों स्वरों में जो पांचों तत्त्वों का प्रकाश है, उसका थोड़ा सा वर्णन करते हैं।

१-पृथिवी तत्त्व का स्वरूप

पृथिवी तत्त्व का रंग पीला और बारह अंगुल या आठ अंगुल बहता है—अर्थात् सन्मुख नकुवे के (नाक के रन्ध्रो के) ठीक सीध में बाहर मालूम पड़ता है। स्वाद मीठा, आकार चौकोना (चौरस), और ५० पचास पल अथवा बीस मिनट जिसका जंघा में स्थान है।

२-जल तत्त्व का स्वरूप

दूसरा जलतत्त्व है, इसका वर्ण सफेद है। सोलह अंगुल अथवा बारह अंगुल नासिकाग्र भाग में बहता है, किन्तु इसकी गति नीची रहती है। स्वाद (रस) कषायेला और वर्त्तुल—गोल आकार तथा ४० पल अर्थात् सोलह मिनट पांव के स्थल में रहता है।

३-अग्नितत्त्व का स्वरूप

अग्नितत्त्व का रंग लाल और चार अंगुल ऊंची इसकी गति जानना चाहिए, स्वाद तीक्ष्ण जैसे मरीच का रस तीक्ष्ण होता है, त्रिकोण आकार, ३० पल अर्थात् १२ मिनट कन्धे में रहता है।

४-वायुतत्त्व का स्वरूप

वायुतत्त्व का वर्ण हरा अथवा नीला जानना चाहिए, तथा आठ अंगुल अथवा पांच अंगुल तिरछी गति, स्वाद में खट्टा, आकार में ध्वजा जैसा,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

२० पल अर्थात् ८ आठ मिनट नाभि में जिसकी स्थिति है ।

५-आकाश तत्त्व का स्वरूप

आकाश तत्त्व रंग में काला, अथवा नाना प्रकार का, नासिका के भीतर ही चलने वाला, स्वाद में कटु, शून्याकार वाला, १० पल अथवा ४ मिनट मस्तक में अथवा सम्पूर्ण देह में स्थित है । वह आकाश तत्त्व नाम से पहिचाना जाता है । इस प्रकार तत्त्वों का वर्ण तथा आकार आदि कहा है । अब जो कुछ ऊपर लिख आये हैं कि मुझे जैन रीति से जो तत्त्व गुरु ने कहे हैं कुछ उनका स्वरूप कहते हैं ।

जैन रीति से तत्त्वों का अनुसन्धान

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये पंच तत्त्व जानने चाहिये । और क्रम से निम्नलिखित वर्णादि भी जानने चाहिये—जैसे शुक्ल, लाल, पीला, हरा अथवा नीला, काला अथवा विचित्र । सोलह अंगुल, चार अंगुल, बारह अंगुल, आठ अंगुल, कुछ नहीं । कषायला, अथवा अत्यन्त मीठा, तीखा, मीठा, खट्टा, कड़ुवा ।

१-अरिहंत तत्त्व

अब इन उक्त तत्त्वों तथा इनके वर्णभेदादि पर विचार दिखलाते है । पहले अरिहंत को श्वेत वर्ण क्यों कहा है ? वह इसलिये कि उनमें किसी प्रकार का मल—कर्मरूप मैल—नहीं रहा । और बारह अथवा सोलह अंगुल इस वास्ते कि आठ गुण प्रातिहार्यादि और चार मूल अतिशय इस प्रकार बारह गुण हैं इसी लिये बारह अंगुल और चार कर्म के क्षय होने से चार गुण, इसी रीति से सोलह अंगुल समझना चाहिये ।

इसका स्वाद कषायला इसलिये कहा है कि सम्यक्त्व-रहित मिथ्या दृष्टि जीवों को उनके वचन रूप जल में रुचि नहीं होती, इसलिए उन्हें उनका वचन कषायला लगता है और जो सम्यक्त्व करके सहित हैं, उनको शब्द-रूप जल अत्यन्त मीठा मालूम होता है, इसलिये अज्ञान दशा से लोग जल का स्वाद कषायला कहते हैं, परन्तु है असल में मीठा; इसी वास्ते नैयायिकों ने जल को मीठा कहा है । हरीतकी अर्थात् हरड़ अथवा आम की सेकी हुई

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

गुठली खाकर ऊपर से पानी पीने से मीठा लगता है । अन्य वस्तु के संयोग से जल को कषायला कहते हैं परन्तु है वास्तव में मीठा । इसलिये अरिहंत तत्त्व को मीठा कहा है । जैसे जलतत्त्व के स्वाद की अज्ञान दशा से खबर नहीं पड़ती, वैसे ही अज्ञान के कारण जिन तत्त्वों का हम वर्णन करते हैं उनको छोड़कर पृथिवी आदि तत्त्वों को अंगीकार किया, देखादेखी लोगों ने इन्हीं को तत्त्व लिखा है ।

अरिहंत तत्त्व का वर्त्तुल आकार दूसरी रीति से हैं—जैसे बड़ का पेड़ नीचे से संकुचित होकर ऊपर से विस्तीर्ण होता है और जैसे जल धारारूप से निकलकर जमीन पर फैल जाता है, वैसे ही अरिहंत-रूप तत्त्व के मुखारविन्द में से धारारूप त्रिपदी निकलने से गणधरादि शिष्यरूपी जमीन पर विस्ताररूप द्वादशांगी रचना करते है । इत्यादि अरिहन्त तत्त्व के गुण जानों, बाकी गुरुगम से सब पहचानों, अब इसके आगे सिद्ध तत्त्व का विवेचन करेंगे ।

२-सिद्धतत्त्व

सिद्ध का वर्ण लाल इसलिये है कि जैसे अग्नि सर्व वस्तु को भस्म करती है वैसे ही सिद्ध भी कर्मरूप वस्तु को जलाकर भस्म कर देता है । इस अनुमान से अग्निरूप अलंकार के सदृश रंग लाल कहा है । परन्तु सिद्ध में रंग कोई नहीं, क्योंकि शास्त्रों में ऐसा कहा है कि सिद्ध परमात्मा में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श कोई नहीं, ऐसे ही अग्नि में भी कोई तरह का रंग नहीं है, क्योंकि जो अग्नि में लाल रंग होता तो अग्नि के बुझने के बाद राख में भी कुछ लाली रहनी चाहिए । इस लिये अज्ञान दशा से लोगों को उपाधि से लाल रंग प्रतीत होता है ।

अब सिद्ध रूप अग्नि का चार अंगुल प्रमाण इस प्रकार है कि सिद्ध में मुख्यतया चार गुण अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चरित्र और वीर्य हैं । इन गुणों से ही चार अंगुल लेते हैं । और दूसरा इसमें यह भी प्रमाण है कि परमात्मा और जीव में कोई भेद भी नहीं है, केवल उपाधि (कर्म-संयोग) से भेद है । इसलिए जिसमें जो गुण होता है उसमें वह गुण सत्तारूप से बना रहता ही

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है। इसलिये इसमें चार अंगुल प्रमाण कहा है।

इस तत्त्व का स्वाद तीक्ष्ण इसलिये है जिसकी तीक्ष्णता (सूक्ष्मता, दुर्ज्ञेयता) में दूसरी वस्तु प्रवेश न कर सके। ऊर्ध्व गति इस तत्त्व की इसलिये है कि जो चीज हल्की होती है। वह स्वभावतः ऊपर को जाने वाली है, और भारी होने से नीचे को गति करने वाली होती है। इसलिये कर्म रूप मल न होने से इस सिद्ध के जीव की ऊर्ध्वगति कही गई है।

इसका त्रिकोण आकार इसलिये कहते हैं कि तीन भाग अवगाहना के करने से एक भाग कम हो जाना और दो भाग रहना, इसलिये इस तत्त्व को तीन भाग की अपेक्षासे त्रिकोण कहते हैं। इस रीति से सिद्धतत्त्व का निरूपण किया है। अब आचार्य तत्त्व के विषय में कहेंगे।

३-आचार्य तत्त्व

आचार्य तत्त्व का पीला रंग है, वह शास्त्रों में प्रसिद्ध है, युक्ति देने का कोई प्रयोजन नहीं जान पड़ता, इसलिए युक्ति नहीं दिखलाते। यह तत्त्व बारह अंगुल चलता है और अंगुल के विषय में युक्ति यह है कि तीर्थंकरो के मुख से त्रिपदी सुनकर द्वादश अंग अर्थात् जिनमत के बारह वेद रचते हैं। और बारह वेदों में भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल की बातों का समावेश है, इसलिए उनकी बारह अंगुल गति कही गई है।

रस—स्वाद मीठा इसलिये है कि कुल समुदाय को विश्वास में लेकर मार्ग में चलाते हैं। समचतुरस्र इसलिये है कि उनका चारों (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) पर सदृश भाव है। इसलिये आचार्य तत्त्व को समचतुरस्र (चौकोण) कहा है।

सीधी गति इसलिये कही है कि समुदाय में आचार्य की न्यूनाधिक भाव-परिणति नहीं होती। इस प्रकार आचार्य तत्त्व को पहचानों। अब चतुर्थ उपाध्याय पद का वर्णन करते हैं।

४-उपाध्याय-तत्त्व

चतुर्थ उपाध्याय तत्त्व का वर्ण हरा, प्रमाण अंगुल आठ, गति तिरछी, आकार ध्वजा सम, स्वाद खट्टा। इसका आठ अंगुल प्रमाण इसलिये है कि,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अष्ट प्रवचन माता (पांच समिति, तीन गुप्ति) को आप यथावत् पालते हैं, और दूसरों से पलवाते हैं। तिरछी गति इसकी इसलिए है कि द्वादशांगी का स्वाध्याय अनुलोम प्रतिलोम (उलटा सीधा) कई प्रकार से करते हैं, और जिसका अष्ट-प्रहर विचार रूप भ्रमण कई तरह का है। यदि जो कोई वक्रता से पूछे तो उसी रीति से समझाना और धर्म में लाना, इस लिए तिरछी गति कही है। अब साधु पद का वर्णन करते हैं।

५-साधु-तत्त्व

उत्सर्ग मार्ग से साधुपन में से बाहिर न हो, इसलिये बाहिर निकलना नहीं कहा। काला रंग इसलिये कहा है कि उस रंग के ऊपर कोई दूसरा रंग न ही चढ़ता। ऐसे ही साधु के साधन में दूसरा रंग न हो, और बहुत रंग इस वास्ते कहते हैं कि, साधु गुरु की चरण सेवा से विद्याध्ययन करता है और जब विद्या में निपुण हो तब दूसरों को अध्ययन करावे, जब अध्ययन कराने लगा तब उपाध्याय पद की भी प्राप्ति होती है। फिर उपाध्यय पद में निपुण जानकर योग्यता देख गुरु आचार्यपद देते हैं, इस प्रकार बढ़ता हुआ अरिहन्तपद को पाकर सिद्धपद को प्राप्त होता है, इसलिए बहुत रंग इसके विषय में कहे गये हैं। आकाश इसको इसलिये कहते हैं कि जैसे आकाश में सर्व द्रव्य रहने वाले ही हैं, वैसे साधुपद में सर्व द्रव्य रहने वाले हैं। इसी रीति से सर्व-व्यापक जानों। कड़वा स्वाद इसलिये है कि जैसे कड़वी चीज से चित्त बिगड़ता है परन्तु कड़वी चीज़ है गुणदायक, वैसे ही साधु को अनेक परिषहादि का सहन करना भी होता है, इसलिये वह कटुक प्रतीत होता है, परन्तु है सुखकारी। इस रीति से इन पांच तत्त्वों का किंचित् भेद सुनाया इसको गुरुगम से मैंने पाया है, परन्तु शास्त्रों में लेख नहीं आया है, इस रीति को सुनकर कितने ही लोगों के चित्त में कुविकल्प समाया, परन्तु इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है इसलिये पंचमेष्ठि का मैंने ध्यान बताया है।

अब इस जगह शंका उत्पन्न होती है कि शास्त्रों में तो यह बात किसी के देखने में नहीं आई, जो कहीं होती तो कोई आचार्य किसी जगह लिखते इस शंका का समाधान ऐसा है कि मैंने जो इस विषय में लिखा है सो सर्वज्ञ

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

की सर्वज्ञता से किंचित् भी बाहिर नहीं है। क्योंकि सर्वमतावलम्बी अज्ञान के जोर से अपने तत्त्वों की मुख्यता लेकर वर्त्तमान काल में दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्य वाले और जाति कुल के जैनियों की व्यवस्था देखकर हंसी करते हैं कि हमारे बिना तत्त्वादि का साधन तुम्हारे मत में नहीं है। इस तरह श्रवण करके चित्त में आया कि इस वीतराग सर्वज्ञ देव से कोई बात छिपी नहीं। परन्तु दिन प्रतिदिन योग्यता की हानि होने से गुरू परम्परा छिपती गई और अज्ञानियों का जोर बढ़ता गया। इसलिये उन अज्ञानियों का मुख बन्द करने के लिए और चिन्तामणि रत्न समान जिनधर्म की उन्नति के वास्ते मैंने कहा है, सद्गुरु का उपदेश भी पाया है। इस रीति के लुप्त हो जाने का किंचित् कारण दिखाता हूं।

श्री महावीर स्वामी से लेकर श्री भद्रबाहु स्वामी तक चौदह पूर्व विद्या और गुरु-परम्परा यथावत् चली आई। इसलिये श्रीभद्रबाहु स्वामी ने नेपाल देश के पहाड़ों में जाकर प्राणायाम सिद्ध किया। श्री कल्पसूत्र की टीका आदि में ऐसा लिखा है कि, जिस समय श्री यशोभद्र सूरि जी देवलोक को प्राप्त हुए, और साधुओं को विद्या पढ़ाने वाला आचार्य भद्रबाहु स्वामी के सिवाय कोई दूसरा न देखा, तब श्रीसंघ ने मिलकर भद्रबाहु स्वामी को विनयपूर्वक आवेदन किया और कहा कि हे भगवन्! श्रीयशोभद्र सूरि जी महाराज तो देवलोक प्राप्त हुए और स्थूलभद्रजी आदि अनेक साधु विद्या पढ़ने योग्य हैं; इसलिए आप पधारो, क्योंकि आप के सिवाय दूसरा कोई विद्या पढ़ाने वाला नहीं हैं। यह खबर श्रीभद्रबाहु स्वामी ने सुनकर कहला भेजा कि मैं महाप्राणायाम की साधना करता हूं, इस कारण मेरा आना नहीं हो सकेगा। साथ में यह भी कहला भेजा कि जो पढ़ने वाले साधु हों उन्हें यहां भेज दो, मैं उन्हें पढ़ाऊंगा, किन्तु प्राणायाम सिद्ध हुए बिना मेरा वहां आना न होगा; इसलिये श्रीसंघ को उचित है कि उन साधुओं को मेरे पास भेज दे। आत्मा के साधन से किसी को नहीं डिगाना चाहिए, जिस रीति से दोनों कार्य सिद्ध हों उसी रीति से बर्त्तना चाहिए।

अनन्तर श्रीसंघ ने महामुनि स्थूलभद्रादि ५०० (पांच सौ) साधुओं को

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

श्रीभद्रबाहु स्वामीजी के पास भेजा, तब उन्होंने पढ़ाना आरम्भ कर दिया। श्रीस्थूलभद्रजी को दशपूर्व तक पढ़ाया, इधर से श्रीभद्रबाहु स्वामी का महा-प्राणायाम भी सिद्ध हो गया, और मुनियों को भी जित ना जिसको कण्ठस्थ हो सका उतना ही उसको पढ़ाया, फिर वहां से विहार कर विचरने को चित्त आया। अनन्तर पाटलीपुर नगर में आकर भव्यजीवों को उपदेश देने लगे।

उस समय श्री स्थूलभद्रजी महाराज गुरु की आज्ञा लेकर जंगल के बीच गुफा में पठित विद्या का मनन करने के लिये गये। थोड़े समय में (उनकी गृहस्थपन की बहिन जो साध्वी हो गई थी) एक साध्वी भद्रबाहुस्वामी के पास आकर विधिपूर्वक वन्दना कर कहने लगी कि हमारे भाई स्थूलभद्रजी महाराज आपके पास पढ़ने को आये थे वे कहां है, नजर नहीं आये, उन्हें वन्दना करने की हमारी तीव्र इच्छा है। इसके अनन्तर उत्तर में श्रीभद्रबाहु स्वामी बोले कि वे फलानी जगह पर अभ्यस्त विद्या का मनन-परावर्त्तन करते हैं। यदि तुम्हारी उन्हें वन्दना करने की इच्छा हो तो वहां जाओ। इस उत्तर को सुनकर गुरुजी की आज्ञा से वहां से जब स्थूलभद्रजी को बांदने के लिए चली, तो उस समय स्थूलभद्रजी ने जान लिया कि मेरी साध्वी बहन मुझे वन्दना करने के लिए आ रही है। तो उसे देखकर स्थूलभद्रजी महाराज ने विद्या के बल से घमंड में आकर अपने आपको सिंह के रूप में परिवर्तित कर लिया, और जब साध्वी बहन समीप पहुंची तो वहां थोड़ी दूर से देखा कि सिंह बैठा हुआ है तो सिंह को देखकर पीछे लौटी, और व्याकुल-चित्त होती हुई चिन्ता करने लगी कि मेरे भाई मुनि स्थूलभद्रजी को सिंह ने खा लिया होगा। ऐसा विचार करती हुई श्री गुरु महाराज के पास आकर यह समस्त हाल सुनाया, और गुरुमहाराज यह वृत्त सुनकर उपयोग दे बोले कि तेरे भाई को सिंह ने नहीं खाया, वास्तव में तेरा भाई तुझे अपनी विद्या का चमत्कार दिखाने के लिए सिंह का रूप धारण कर वहीं बैठा है, अब जाओ वहां मिलेगा और जाकर वन्दना करना। यह सुनकर मन में सन्तोष पाकर फिर से वहां जाकर उन्हें वन्दन कर वह पीछे

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अपने उपाश्रय को लौटी। यह जानकर श्रीभद्रबाहु स्वामी ने स्थूलभद्रजी को अयोग्य जानकर आगे पढ़ाना बन्द कर दिया। धीरे-धीरे आगे जाकर मनुष्यों की स्मरण शक्ति भी कम होती गई।

अनेक विद्याओं के साथ-साथ धीरे-धीरे योगाभ्यास की रीति भी लुप्त होती गई। परन्तु जो कुछ बची है वह जीर्णवस्त्र-छिद्रसन्धान न्याय से चली आती है ; वह भी कदाग्रह से दिन प्रतिदिन दबी जाती है, सर्वथा लुप्त नहीं हुई क्योंकि श्रीहरिभद्रसूरिजी ने योगविंशतिका तथा योगसमुच्चयादि ग्रन्थों में और श्रीहेमचन्द्राचार्यजी ने भी योगशास्त्र में वर्णन किया है और रत्नप्रभसूरि आदि अनेक आचार्य समाधि की महिमा कर गये हैं और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुसार समाधि आदि में परिश्रम भी किया होगा और श्री आनन्दघन जैसे तो सत्पुरुष थोड़े से काल के पहले हुए हैं सो इन्होंने तो हठयोगकी बहुत सी बातें जताई हैं। मुद्रा, धारणा नादादि स्तवनों में गाये हैं, अजपाजाप जपने के वास्ते भी इशारे करके बहुत-सी महिमा बताई हैं और मन ठहराते गए हैं।

ऐसे ही मैंने भी स्वरोदयादि ग्रंथ में इशारा जताया है नवपदजी का ध्यान करना भी बताया है, समाधि का भेद भी लिखा है, इन पांच तत्त्वों पर खुलासा कर दिखाया है। इसलिये मुझे पाठकगण को इतना हाल लिखकर समझाना पड़ा है कि जिससे कोई सन्देह न करे, और मुझे कुछ इसमें आग्रह भी नहीं हैं, जैसा गुरु ने मुझे बताया, उसमें से किंचत् मैंने बुद्धि-अनुसार लिखा है। इस बात को समझकर जैनधर्म की रीति से किंचित् तत्त्वों का भेद चित्त में लाओ, गुरु के पास से विशेष भेद पाओ, आतमार्थी बनना चाहो तो योगाभ्यास में चित्त लगाओ, आतमदर्शी बनो, जिससे मोक्षपद पाओ, ऊपर लिखे तत्त्वों का भेद सुन अभ्यास को बढ़ाओ।

पांचों तत्त्वों की साधन रीति

इन पांच तत्त्वों के साधने वाले को चाहिए कि पहले पांच गोलियां अलग-अलग रंग की बनावें, और एक गोली अनेक वर्ण की बनावे और इन छहों गोलियों को पास रखे। जब बुद्धिपूर्वक तत्त्व देखने का विचार हो, तब पास

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

में रखी हुई जो अदृष्ट गोलियां हैं, उनमें से एक गोली निकाले, जब उस गोली की और बुद्धि में विचारे हुए रंग की एकता मिल जाए तो जानें कि तत्त्व मिलने लगा है। अथवा किसी दूसरे से कहे कि तुम अपने मन में किसी एक रंग को विचारो। जब वह कहें कि हां मैंने रंग विचार लिया है, तो उस समय अपने स्वर में तत्त्व को देखे, और जब अपनी बुद्धिपूर्वक तत्त्व का रंग प्रतीत हो तब उस पुरुष को कहे कि तुमने फलाना रंग अपने मन में विचारा है। जो उस पुरुष का रंग अपने कहे हुए रंग के अनुसार मिल जाए तो जानों कि अपना तत्त्व मिलने लगा है। अथवा दर्पण (आईना) को अपने मुख के पास लगाकर नाक का श्वास उसके ऊपर छोड़े, उस कांच के ऊपर श्वास से तत्त्व के अनुसार आकार बनता है, उस आकार से भी तत्त्व की पहचान करें।

मुद्रा द्वारा तत्त्वों की पहचान

अथवा अंगुठों से दो कानों को मूंदे और तर्जनी से आंखों की पलको को दबावे, मध्यमा से नासिका का स्वर बन्द करे, अनामिका और कनिष्ठिका से होंठों को दबावे इस रीति से दूसरे हाथ से दूसरी तरफ से बन्द करे, और मन को भृकुटि की तरफ ले जाए। उस जगह जैसा तत्व होगा वैसा ही तिलुला अर्थात् बिन्दु आदि से मालूम होगा, इस प्रकार रंग और आकार को जानने के लिए कहा। अब कुछ रस के विषय में कहेंगे।

रस द्वारा तत्त्वों की पहचान

जिस समय जो तत्त्व होगा उस समय उस मनुष्य के सूक्ष्म परिणाम में तत्त्व की रसानुसार वांछा हो जाएगी, और गति इसकी ऊंची, नीची, तिरछी, सीधी जैसी हो, गुरु से बोध हो सकता है।

प्रकृति या बातचीत द्वारा तत्त्वों की पहचान

प्रकृति (स्वभाव) या बातचीत द्वारा तत्त्वों के विषय में यों जानना चाहिए कि जब अग्नितत्त्व होता है उस समय क्रोध स्वभाव होता है, जब जलतत्त्व होता है तो मनुष्य उस समय शीघ्रता से बातचीत करना चाहता है, जब पृथिवी तत्त्व होता है, उस समय धैर्य से बातचीत करने को चित्त

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चाहता है। जब वायु तत्त्व होता है तो उस समय प्रसंग छोड़कर दूसरी बात करने लगता है अथवा मानपूर्वक वचन बोलता है। आकाश-तत्त्व में तो तूष्णीं अर्थात् गुम्म हो जाता है। जब अग्नितत्त्व चलता है, उस समय उष्ण वायु निकलती है, और जब जलतत्त्व बहता है तब शीतल वायु निकलती है, और पृथ्वी तत्त्व बहते समय मिश्र अर्थात् दोनों तरह की निकलती है, और वायु तत्त्व चलते समय न शीतल न उष्ण, आकाश-तत्त्व के बहते समय वायु निकलती नहीं, परन्तु सूक्ष्मता से चींटी का रेंगना नाक में मालूम होता है। इस प्रकार स्थूल तत्त्वों के परिज्ञान के विषय में कहा, परन्तु स्थूल तत्त्वों की जब यथावत् पहचान हो जाये, फिर गुरु कृपा करे तो एक-एक तत्त्व में जो पांचों तत्त्व चलते हैं, उन सबकी पहचान होनी सरल हो जाती है।

विशेषकर जो तत्त्वों के अन्तर्गत अर्थात् एक तत्त्व के अन्तर्गत पांचों तत्त्वों को पहचाने तो वह योगी यथावत् कारण-कार्य की गति जान सकता है। जब तक तत्त्व के अन्तर्गत तत्त्वों को न जानेगा तब तक यथार्थ रीति से कार्य को भी न पहचानेगा, केवल स्वरोदय के अभिमान को तानेगा। परन्तु इन सब में भी मुख्य सगुण और निर्गुण का जानना है, सो बिना गुरु चरण-सेवा के सगुण निर्गुण का पाना कठिन है। इसलिए जो जिज्ञासु इस योगाभ्यास की इच्छा करे वह प्रथम स्वर का अभ्यास कर ले। स्वर का भेद बताने में गुरु की परीक्षा भी हो जाएगी, फिर योगाभ्यास का साधन करना सुगम हो जायेगा। योगाभ्यास में क्रियाओं द्वारा रोग निवृत्ति दिखाते हैं।

क्रियायें

नेती १ धोती २ ब्रह्मदातन ३ गजकर्म ४ नोली ५ बस्ती ६ गणेश-क्रिया ७ वागी ८ शंख-पखाली ९ त्राटक १०। इन दस क्रियाओं में से कई एक क्रिया तो अन्यमत के लोग वैरागी, उदासी, दादूपन्थी आदि करते हैं, और उन लोगों में इन क्रियाओं की प्रसिद्धि भी है। इन क्रियाओं को देखकर लोग कहते हैं कि ये लोग समाधि लगाते हैं और पूरे योगी हैं। परन्तु देखा जाए तो इन क्रियाओं में योग-समाधि का नाम निशान भी नहीं है; जैनमत में इन चीजों की वर्त्तमानकाल में धारणा है कि यह अन्य मत की

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

क्रिया है और इसमें जलादि का आरम्भ बहुत है इसलिए न करना चाहिए। परन्तु मेरा कहना है कि वर्त्तमान काल में जनों में योगाभ्यास करनेवाले ही नहीं हैं। क्योंकि पहले हम योग्यता या अयोग्यता के विषय में लिख चुके हैं। दूसरा जो मनुष्य जल के अधिक खर्च के विषय में कहते हैं कि जल का बहुत खर्च होता है, उन लोगों ने अन्यमत वालों को देखा है, अपने गुरु आदि महोदयों को नहीं देखा, इसलिए वे ऐसा कहते हैं। परन्तु देखीये नोली १ बस्ती २ गणेश कर्म ३ वागी ४ त्राटक ५ इनमें तो जल का काम नहीं, किन्तु बस्ती में अलबत्ता सेर डेढ़ सेर जल का काम है, लाभ इनमें अधिक है, क्योंकि जौ इन क्रियाओं को गुरुगम से सीखेगा तो दवा औषध के लिए हकीम, वैद्यादि की उसे चाहना न रहेगी, और ये क्रियायें कोई नित्य प्रति करने की तो है ही नहीं ; जब कभी रोगादि हो तो इन क्रियाओं को करे, और कितनी एक क्रियायें नित्य करे तो रोगादि के उत्पन्न होने की सम्भावना तक नहीं होती।

क्रियाएं करने की रीति

अब क्रिया करने की रीति दिखाते हैं कि क्रिया किस तरह करनी चाहिए।

प्रथम नेती क्रिया

कच्चा सूत मुलायम सवा या डेढ़ हाथ लम्बा हो, और इक्कावन तार अथवा इक्कोत्तर तार इकट्ठे मिलावे, फिर उस लम्बे डेढ़ हाथ में से ऐंठकर आठ अंगुल तो बट ले और शेष खुला रखे। परन्तु दोनों सिरों की ओर से खुले हुए रखे और बीच में से बटे, फिर उसके ऊपर किंचित् मोम लगावे जिससे वह सूत कठिन बना रहे और मुलायम भी बना रहे। जब प्रातःकाल नेती क्रिया करे तब उस सूत को उष्ण जल में भिगोवे और वह फिर अपनी नाक में गेरे, जब वह गले के छिद्र में पहुंचजाए, उस समय मुंह में हाथ डालकर उस डोरा (धागा) को धीरे-धीरे खेंचकर मुख के बाहर निकाले, और वह बटा हुआ तो एक हाथ में और खुला हुआ छोर दूसरे हाथ में पकड़े। इस तरह दोनों हाथों से धीरे-धीरे ऐसे खीचे कि जैसे छाछ (मट्ठा) बिलोते हैं, इस प्रकार

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

दोनों नासा के छिद्रों में करे, इसी का नाम नेती है। इसके करने से नेत्रों की ज्योति प्रबल होती है और यह गज क्रिया में भी काम देती है।

२—धोती क्रिया

अब धोती के विषय में कहते हैं कि अच्छी मलमल जिसके सूत में गांठे आदि न हों अथवा और कोई कपड़ा हो, परन्तु बारीक होना चाहिए; वह कपड़ा चार अंगुल तो चौड़ा हो और सोलह हाथ लम्बा हो। उस कपड़े को उष्ण जल से भिगोकर निचोड़ डालें, फिर उसको झड़काकर एक छोर (सिरा) मुंह में देकर उसको जैसे ग्रास (कवा) निगला जाता है, वैसे निगलना शुरू करे यहां तक कि चार अंगुल छोड़कर सब निगल जाए। बाद में उसके कुछ थोड़ा-सा पेट को हिलावे, परन्तु नौली आदि क्रिया न करे, क्योंकि नौली आदि क्रिया करने से आंतों में और नलों में फंस जाने का भय है। हां, हठयोग प्रदीपिका में ऐसा लिखा हुआ है कि नौलीचक्र करे। किन्तु यह क्रिया बहुत समझदारों के ही लिए है न कि साधारण बुद्धि वालों के लिए; क्योंकि बेसमझ आदमी ऐसी क्रिया में कहीं-कहीं प्राण खो बैठते हैं और हमें यह प्रतीत होता हैं कि हठयोग प्रदीपिका वाले ने गुरु-परम्परा-शून्य मनःकल्पित लिख दिया है। इनकी भ्रमपूर्ण विचारणा तो मुद्रा आदि कहते समय दिखलावेंगे। हमने जो पेट हिलाना लिखा है उसका तात्पर्य यह है कि सिद्धासन से धोती को निगले और निगलते समय उत्कटासन (उक्कडू) से बैठकर पेट को सतर करें और नीचे को झुककर अर्ध रेचन करे फिर धीरे-धीरे खीचे, इतने में जो पेट का हिलना है उतना ही पर्याप्त है। कदाचित् खींचने में कपड़ा अटके तो, जितना मलमल या खाया हुआ मुलायम वस्त्र बाहर है उसे फिर निगल जाए और फिर धीरे-धीरे निकाले तो साफ निकल आवेगा। दुबारा निगलना उसी के लिए है कि जिसके पेट में कपड़ा अटके; न कि उसके लिए कि जिसके अन्दर से साफ-साफ निकल आवे। धोती क्रिया के करने से कफ दूर होता है। जिस समय कफादि की वृद्धि हो उस समय धोती क्रिया करनी उचित है न कि नित्य प्रति।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

३—ब्रह्मदातन क्रिया

अब तीसरी ब्रह्मदातन क्रिया के स्वरूप का निदर्शन कराते हैं—सूत का डोरा अच्छी तरह बटकर कच्चे सूत के ऊपर लपेटे । सो ऐसा कड़ा लपेटना चाहिए कि तरपणी के डोरा जैसा हो जाए या रामस्नेही साधु जो कमर में कन्दोरा लगाते हैं वैसा कड़ा हो और फिर उसके ऊपर मोम लगावे और उस सूत के सदृश कूची को कर ले और वह बंधा हुआ सूत का डोरा सवा हाथ लम्बा होना चाहिए । उसको प्रातःकाल उष्ण पानी में भिगोकर गीला करके मुख में डाले, जब वह कागल्या के पास में आवे अर्थात् आगे का गले की ओर जावे तो उस समय थोड़ा-सा जोर देकर हाथ के सहारे से नीचे को दबावे । फिर वह ब्रह्मदातन स्वयं ही नीचे को चली जाती है; और उसको यहां तक ले जावे कि चार अंगुल बाकी रहे । तब उस बाकी चार अंगुल को हाथ की अंगुलियों से धीरे-धीरे वैसे घुमावे जैसे कान में रुई फेरी जाती है, और बाद में उसे निकाल ले फिर साफ करके रख दें, उसे ब्रह्मदातन कहते हैं । इस ब्रह्मदातन करने का प्रयोजन यह है कि जमा हुआ कफ इससे ढीला पड़ जाता है, और ग्रन्थि आदि इसके फेरने से फूट जाती है । जिस पुरुष को ऐसे कफ की शिकायत हो वह ब्रह्मदातन के बाद धोती करे, क्योंकि ब्रह्मदातन कफ को नहीं निकालता, कफ की गांठ को फोड़ देता है और धोती कफ को निकाल देती है ।

४—गजकर्म

अब गजकर्म के स्वरूप को कहते हैं—त्रिफला अथवा कोरा उष्ण पानी नाक से पीना शुरू करे और जितना पेट में समावे उतना पेट भर पीले, फिर पेट को खूब हिलावे, और जिसको नौली करना आती हो तो नौली बेशक करे । इसके बाद जिसको वायु नीचे से उठाना आता हो वह पुरुष अर्धरेचन करके सर्व जल को बाहर निकाल दे, किंचित् भी पेट में न रखे । अथवा नीचे से वायु खींचकर निकालने की रीति न मालूम हो तो उत्कटासन (उक्कडू) से बैठकर दक्षिण हाथ की कूहणी घुटने (जानु-ढींचन) पर जमाकर अंगूठे को मुंह में डालकर काकलल (तालु के पास लटकी हुई

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मांस ग्रन्थि विशेष) की पूर्व तरफ के ऊपर तालवे को अगूठे से मर्दन करे, अर्थात् धीरे-धीरे मले। उस जगह एक नाड़ी-नस है, उस पर अंगूठा लगाने से पानी बाहर निकल आता है। यदि गुरु बतावे तो इसमें कोई परिश्रम नहीं है, और बिना गुरु के अभ्यास करे तो दो या तीन दिन में उस नाड़ी को पा सकता है, क्योंकि अभ्यास भी बड़ी चीज है। जैसे हाथी सूंड से पानी पीकर मुंह से निकलता है यह भी वैसा होने से इसका नाम गजकर्म कहते हैं। जिसको सर्दी हो वह गरम पानी पीवे, वह भी अधिक गर्म न होना चाहिये, अधिक गर्म होने से खून बिगड़ जाता है, और जिसको गर्मी हो अथवा खून बिगड़ा हुआ हो तो वह बहुत ठण्डा जल हिम की तरह (बर्फ की नाई) करके पीये तो चालीस दिन में उसको आराम हो जायेगा, किन्तु खाने में भी पथ्य रखना आवश्यक है।

अब ऊपर बतलाई हुई जो चार क्रियाएं लिख चुके हैं उन्हें किसी को करते हुए देखकर मुग्ध न हो जाना चाहिए, क्योंकि वर्त्तमान में कितने ही दुःख-गर्भित मोह गर्भित-वैराग्य वाले भोले जीवों को दिखाकर लोगों का माल ठगते हैं, लोगों में अपने को योगी बताते हैं, इन क्रियाओं में योग का लेश भी नहीं है, इसलिये हम पाठकगण को दिखाते हैं, इन ठगों के चाल से बचाते हैं।

५—नौलीचक्र

अब नौलीचक्र का स्वरूप दिखाते हैं—पहले उत्कटासन (उक्कड़ू) बैठे, अथवा खड़ा होकर दोनों हाथ घुटनों पर रखे, अथवा नीचे से पिंडली को पकड़े, इन तीनों रीतियों में से किसी एक रीति से करे। फिर पेट को पीठ की तरफ खेंचे जब वह पेट कमर में जाने लगे उस समय गुरु की बताई हुई जो रीति है, उससे वायु अर्थात् श्वास से उन दोनों नलों को उठावे, कि जैसे दोनों हाथों को चौड़े करके अलग से मिलाते हैं और अंजलि से पानी खींचते हैं, इस रीति से कुल पेट-भाग तो पीठ में लगा रहे, और जो नलों का भाग है सो उठ आवे, तब बीच में तो वह नल जेवड़ी के सदृश खड़े हुए हों और इधर उधर चारों ओर का जो पेट का भाग है वह पीठ से लगा हुआ रहे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जब इस प्रकार पुरुष के नल खड़े हो जायें, फिर उसमें प्राण और अपानवायु को इस तरह घुमाना चाहिये, जैसे कि कुम्हार का चाक घूमता है यह नौलीचक्र कहलाता है। इस नौली के करने से जठराग्नि तेज होती हैं और जो मलादिक पेट में कच्चा हो उसे पकाकर दस्त की राह बाहर निकाल देता है, और आम आदि पैदा होने नहीं देता, इस नौली के होने से प्राण अपान दोनों को एक करने में भी सहायता मिलती है, बस्तिकर्म में मुख्यता इस नौली-चक्र की है, इसलिए इसको अवश्य ही करना चाहिए।

६—बस्तीकर्म

बस्तीकर्म का स्वरूप यह है कि कूंड़े में त्रिफला का पानी अथवा उष्ण पानी भरे, परन्तु वह ज्यादा गरम न हो, गुनगुना (कवोष्ण) होय। और जस्त अथवा नरसल या बांस पोला पतला चिकना हो, उसकी छः अंगुल की नली बनावे, फिर उस नली को गुदा में चढ़ावे, वह चार अंगुल तो भीतर रखे और दो अंगुल बाहर रखे। फिर उस कूंडे के ऊपर बैठे और जो पहले "नौलीकर्म" कह आये हैं, उस रीति से नलों को उठावे, फिर अपानवायु का ऊर्ध्व-रेचन करे अर्थात् ऊपर को खींचे। उस वायु के खींचने से जल ऊपर को चढ़ आता है; फिर उस नली को निकाल दे, और दो मिनट के बाद नौलीचक्र फिरावे। फिर कुछ देर के बाद प्राण वायु का जोर देकर अपानवायु से अधोरेचन करे, और उस जल को गुदा के रास्ते से निकाल दे। उस जल में जो कुछ पेट में मल आदि है, वह जल के साथ तमाम बाहर निकल जाता है। कदाचित् थोड़ा बहुत जल पेट में रह जाये तो मयूरासन करे, फिर अधोरेचन करने से बिलकुल जल निकल जाता है। इस बस्तीकर्म करने का तात्पर्य यही है, कि प्राण और अपान को एकत्र करने में सहायता मिले। बिना पेट साफ किये प्राण-अपान की खबर ही नहीं पड़ती। इस-लिए शरीर में मल आदि बिगड़ा हो तो अवश्य ही इसको करे।

७—गणेशक्रिया

यह गणेश क्रिया इस तरह की जाती है, कि जिस वक्त पाखाना को जाय उस वक्त मल अच्छी तरह से निकल जाय तब मध्यमा (बीच की) अथवा

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अनामिका, इन दोनों अंगुलियों में से एक पर वस्त्र का टुकड़ा रखकर उस अंगुली को गुदा में डालकर चारों तरफ फिरावे। इस रीति से दो तीन बार करने से गणेशचक्र साफ हो जाता है, चक्र के ऊपर मल नहीं रहता है। इस क्रिया के करने से गुदा की बीमारी नहीं होती है, और यह चक्र का ध्यान करने में सहायता देता है।

८--बागीकर्म

इस बागीकर्म का स्वरूप यह है कि जिस वक्त मनुष्य आहार अर्थात् भोजन कर ले, उसके एक घण्टे या दो घण्टे के बाद ऐसा जाने कि आहार का रस तो मेरे शरीर में परिणत हो गया होगा अर्थात् पच गया होगा और फोक बाकी रह गया होगा, उस वक्त गजक्रिया में जो रीति कही गई है, कि नीचे से वायु खींचकर या मुंह में उसी तरह अंगूठा डाल करके, उसको मुंह की राह निकालकर फेंक दें; ऐसा जो करे, उसका नाम बागीकर्म है। इस बागीकर्म के करने से पाखाना आदि जाने का काम नहीं रहता और स्वस्थ चित्त, अर्थात् पेट में भार न रहने से ध्यान ठीक होता है। परन्तु यह बागीकर्म उसके वास्ते है कि जिन पुरुषों का दिमाग अन्न खाकर ठीक नहीं रह सकता और पेट भरकर भोजन करते हैं, उसी पुरुष को बागीकर्म करना चाहिये, न कि थोड़ा खाने वाले को, क्योंकि जो थोड़ा ही खाने से सन्तुष्ट हैं, उसको तो किसी तरह की हानि नहीं, किन्तु जिनको बिना पूर्ण भोजन किये चित्त की चंचलता ही रहती है उनके वास्ते बागीकर्म अच्छा है।

९—शंखपखाली

शंखपखाली नाम उसका है, कि जैसे शंख में ऊपर से तो पानी भरता जाये और नीचे से निकलता जाए, वैसे ही मुख से पानी पीता जाये और गुदा से निकलता चला जाय। इस शंखपखाली को वह मनुष्य कर सकता है कि जिसको नौलीचक्र अच्छी तरह से करना आता हो; क्योंकि जिस समय उसको मुंह से जल पीना पड़ता है, उसी वक्त नौलीचक्र फिराने से अपान वायु को अधोरेचन अर्थात् नीचे को निकाल करके उस जल को गुदा की राह से निकालता चला जाता है, इसलिए इसको शंखपखाली कहते हैं। इस

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

शंखपखाली के करने वाले लोग केवल ठग और जड़ समाधि लगाने वाले होते हैं। इसके विषय में विशेष आगे बतलाया जायेगा।

१०—त्राटक-वर्णन

इस त्राटक का स्वरूप यह है, कि दोनों नेत्रों की दृष्टि को किसी सूक्ष्म वस्तु पर स्थापन करे, और पलकों को न हिलाकर टकटकी लगाकर देखे, उस वस्तु से दूसरी जगह पर दृष्टि न जाने दे अथवा आंखों की पुतली को घुमाकर भी न देखे (भ्रू) के बाल को देखे, उनके ऊपर दृष्टि ऐसी ठहरावे, कि आंख और नाक दोनों में से जल गिरने लगे। इसका नाम त्राटक है। इसके करने वाले को निद्रा, आलस्य कम होता है, और नेत्रों की ज्योति विशेष बढ़ती है, इसलिए इसको हमेशा करे। इस रीति से यह दस क्रियाएं बतलाई हैं।

इन दस में से नौली, त्राटक, गणैश क्रिया, और बागी इन चारों में तो जल का खर्च नहीं है और बाकी की छः क्रियाओं में जल का खर्च होता है। सो गुरु से इन दस बातों को सीखे और सीखने के बाद कुछ दिन तक अभ्यास करे। जब अभ्यास ठीक हो जाये तब छोड़ दे, और फिर काम पड़ने पर किया करे। उसमें भी शंखपखाली क्रिया केवल जानने मात्र है, उसका कुछ फल नहीं। बागीकर्म को प्रतिदिन करना उसका काम है, कि उसको पूरा आहार किये बिना न सरे। जो मनुष्य परिमित भोजन करता है, उसको कोई जरूरत नहीं। यदि काम पड़े तो कर ले। और गणेश क्रिया भी प्रतिदिन करना उसी के वास्ते है, कि जिसका मल अच्छी तरह से बंधा हुआ नहीं है और गुदा में लिपट जाता है। परन्तु जिसको दस्त बन्दूक की गोली की तरह लगे, और गुदा को लेपमात्र भी न लगे, उसको गणेश क्रिया करने की कोई आवश्यकता नहीं। नौली और त्राटक सदा ही करे, क्योंकि नौली कुंभक-मुद्रा, प्राणायाम आदि में विशेष सहायता देने वाली है। इसलिये उसे अवश्य ही करे। बागी और त्राटक जब इच्छा हो तब करे, परन्तु शेष क्रियाएं भोजन करने के पहले करे, भोजन करने के बाद करेगा तो नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हो जायेगी।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अलबत्त, भोजन करने के दो पहर (प्रहर) अथवा डेढ़ पहर के बाद जो नौलीचक्र करेगा उसको कुछ हानि न होगी । इस रीति से यह दसों क्रियाओं का वर्णन कर चुके हैं । इन दसों क्रियाओं में धर्म का लेश भी नहीं है । हां, यह परम्परा से धर्म का साधन जो शरीर उसमें रोगादिक की उत्पत्ति को दूर करने के लिए बिना ही वैद्य, हकीम अथवा धन-खर्च रोग को निवारण करने का हेतु है । इसलिये गुरु परम्परा से यथावत् याद हो तो रोगादि दूर करने का कारण है, न कि धर्म का ।

बन्ध के प्रकार

अब बन्ध का वर्णन करते हैं, क्योकि जो पहले ही बन्ध का वर्णन न करें तो कुम्भक-मुद्रा प्राणायाम आदि का वर्णन करना व्यर्थ हो जायेगा, बिना बन्ध के लगाये कुम्भक आदि कोई क्रिया नहीं होती । इसलिये बन्ध का पृथक् कहना आवश्यक है । वह बन्ध चार प्रकार से होता है १. मूलबन्ध २. जालन्धरबन्ध, ३. उड़ियानबन्ध, ४. जिह्वाबन्ध ।

१—मूलबन्ध

इस मूलबन्ध की विधि यह है, कि एड़ी से योनि स्थान को दबाकर गुदा को संकोचित करे । फिर अपान वायु जो कि नीचे को जाने वाली है, उसको ऊपर चढ़ावे, उसका नाम मूलबन्ध है । अथवा एड़ी को गुदा के नीचे रखे, और अपानवायु को ऊर्ध्वगमन अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी में प्राप्त करे, इसी को मूलबन्ध कहते हैं ।

मूलबन्ध के गुण

अधोगति (नीचे को जाने वाली) अपान वायु को तो ऊपर करे और दूसरी जो प्राणवायु ऊर्ध्वगामनी (ऊपर जाने वाली) है उसे नीचे करे । इन दोनों वायुओं को मिलाकर एक करे । उस एकता के होने से वायु का सुषु-म्ना (नाड़ी) में प्रवेश होता है । जो करने वाले पुरुष हैं उस वक्त उनको नाद की प्रतीति होती है । उस नाद का वर्णन आगे करेंगे । दूसरा प्राण और अपान के एक हो जाने से वायु विशेष कर पंखे के समान चलती है । इसलिए उससे जठराग्नि के कुण्ड के ऊपर जो मल रूपी छार (राख) है,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

वह उड़ जाती है, और उसके उड़ जाड़े से जठराग्नि तेज होती है। उस तेजी की गरमी से कुण्डलिनी अर्थात् बालरण्डा चमक कर खड़ी हो जाती है। उसके चमकने से ही योगियों के योग सिद्ध हो जाते हैं। इत्यादि जो अनेक गुण इसमें हैं वे लिखे नहीं जा सकते। जो मनुष्य करते हैं वे योगीश्वर होते हुए आनन्द लूटते हैं, जिज्ञासु को योग्य जानकर उपदेश भी देते हैं, आत्मा को अपने आनन्द रूपी रस में ही भिगोते हैं।

२—जालन्धर बन्ध

इस जालन्धर बन्ध का स्वरूप यह है, कि कण्ठ को नीचे झुकाकर हृदय से चार अंगुल अलग ठोड़ी को यत्न से दृढ़ स्थापित करे, इसका नाम जालन्धरबन्ध है। परन्तु इसमें पद्मासन लगावे। जालन्धरबन्ध का अर्थ है, कि नाड़ियों का जाल (समूह) बांधे, और नीचे को गमन करे ऐसा जो कपाल का छिद्र है उसको बांधे। जालन्धरबन्ध के करने से कण्ठ के सर्व रोग नष्ट हो जाते हैं। फिर कण्ठ के संकोचित करने से दोनों नाड़ियों (इड़ा और पिंगला) का स्तम्भन करे। इसी का नाम जालन्धरबन्ध है।

३—उड़ियान बन्ध

इस उड़ियान बन्ध की विधि कहने के पहले उड़ियान शब्द का अर्थ करते हैं, कि जिस हेतु से अथवा जिस बन्ध करके रोकी हुई वायु सुषुम्ना नाड़ी में उड़ जाये अर्थात् प्रवेश कर जाये। सुषुम्ना के ज़ोर से आकाश मार्ग में प्रवेश कर सकता है, इस वास्ते इसका नाम उड़ियान है। महान् खग अर्थात् आकाश में निकलकर प्राण जिसमें बन्ध करे, और जिसमें श्रम न हो तथा सुषुम्ना पक्षी की तरह गति करे, उसका नाम उड़ियानबन्ध है।

उड़ियान बन्ध की रीति

उड़ियान बन्ध की रीति यह है कि नाभि के ऊपर का भाग और नीचे का भाग इन दोनों को उदर समेत पीछे को खींचे, और पीठ में लग जाये ऐसा खींचे, इसका नाम उड़ियान बन्ध है। नाभि के ऊपर नीचे के भागों को यत्न पूर्वक पीछे को लगावे, अर्थात् पीठ की तरफ दोनों भागों को ले जाये। इस उड़ियान बन्ध का अभ्यास रोटी खाने के पहले बारम्बार करे तो छः महीने

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

में इसके गुण आप से आप प्रकट हो जाते हैं, अधिक कहने की कोई आवश्यकता नहीं है।

४—जिह्वा बन्ध

जिह्वाबन्ध की विधि यह है, कि जालन्धरबन्ध अर्थात् कण्ठ को झुकाकार ठोड़ी को हृदय में स्थापित करें और दोनों राजदन्तों (मुख के सामने के ऊपर के जो दांत हैं उन) पर जिह्वा को काढ़कर लगावे उसी का नाम जिह्वाबन्ध है। इस जिह्वा बन्ध से एक सुषुम्ना नाड़ी रहित जो सम्पूर्ण नाड़ियां हैं उनके ऊपर वायु की गति रुक जाती है, इसलिए इसको कोई जालन्धर बन्ध भी कहते हैं। जाल नाम नसों का है उनका जो बांधना उसी का नाम जालन्धर है। यह ऊपर लिखी हुई बन्धों की रीति के साथ जो पुरुष प्राणायाम करेगा, उसी को हठयोग की प्राप्ति होगी और हठयोग से ही राजयोग की प्राप्ति होती है। इस वास्ते आत्मार्थियों को इसमें भी परिश्रम करना चाहिये। परन्तु इन बन्धों में गरु की अपेक्षा जरूर है, क्योंकि गुरु यथावत् रीति करके दिखावे तो जिज्ञासु असल भेद पावे। जिह्वाबन्ध, खेचरीमुद्रा से सम्बन्ध रखता है, वह खेचरीमुद्रा तो आगे दिखलावेंगे। उस खेचरीमुद्रा को भी कितने ही लोग जालन्धरबन्ध कहते हैं।

कुम्भकों के नाम

कुम्भकों के नाम ये हैं—१. सूर्यभेदन, २. उज्जाई, ३. सीत्कारी, ४. सीतली, ५. भस्त्रिका, ६. भ्रामरी, ७. मूर्छा, और ८. प्लावनी।

१—सूर्यभेदन का वर्णन

सूर्यभेदन की रीति यह है कि मूलबन्ध करके पूरक के अन्त में शीघ्र ही जालन्धगबन्ध लगावे। कुम्भक के अन्त में और रेचन की आदि में उड़ियानबन्ध लगावे।

इस रीति से सूर्यस्वर से प्राणायाम करे। जो बन्ध के साथ प्राणायाम करेगा उसको वायु-प्रकोप कभी नहीं होगा और इसमें इतना विशेष है, कि पूरक शीघ्रता से भी करे तो कुछ हर्ज नहीं, परन्तु रेचन धीरे-धीरे से करे। यदि शीघ्रता करेगा तो कुम्भक की रुकी हुई वायु शीघ्रता होने से

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

रोमादिक भेद कर निकलेगी और वह रोमादिक द्वारा निकलने से शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर देगी। क्योंकि जैसे बंधा हुआ हाथी मद में चढ़ जाये, और उसको एक संग बंधनों से खोलो तो नाना प्रकार के उपद्रव करता हैं, वैसे ही कुम्भक में बंधी हुई वायु शीघ्रता से रेचन द्वारा बाहर होने से उपद्रव करती है। इसलिये रेचन करते समय आदि से लेकर अन्त तक धीरज से करे। सूर्यभेदन इसका नाम इसीलिये है, कि सूर्य से पूरक और चन्द्र से रेचन किया जाता है। इस कुम्भक के करने वाले पुरुष के मस्तक की शुद्धि होती है, उदर की शुद्धि होती है, तथा वात रोगादिक की उत्पत्ति नहीं होती। अर्थात् चौरासी प्रकार की वायु से जो रोगादि होते हैं उनकी निवृत्ति होती है। चन्द्रस्वर से इसको करे तो चन्द्रभेदन हो जाता है, चन्द्रभेदी से नेत्रों में ठण्डक होती है, और गरमी आदि भी दूर हो जाती है। परन्तु यह कुम्भक किसी शास्त्रकार ने नहीं लिखा है, इसलिये इसका भेद गुरुगम से जानों।

२—उज्जाई-कुम्भक का वर्णन

इसकी विधि यह है कि मुख बन्द करके पवन को कण्ठ से लेकर हृदय पर्यन्त शब्द सहित इड़ा और पिंगला नाड़ी करके शनैः शनैः खीचकर पूरक करे, फिर केश और नख पर्यन्त कुम्भक करे, पीछे डाबी (वाम) नासिका से रेचन करे। इस कुम्भक के करने से कण्ठ के कफादि रोग दूर होते हैं, झठराग्नि का दीपन होता है, नाड़ियों में जो जलादिक की व्यथा हो उसको दूर करता है, और धातु आदि की पुष्टि करता है। परन्तु शब्दादिक के साथ पूरक करना, इस भेद को तो सिवाय गुरु के दूसरा कोई कुछ नहीं कह सकता।

३ सीत्कारी कुम्भक

मुख के अर्थात् होठों के बीच में जिह्वा लगाकर शीत करके पवन का मुख से पूरक करे, फिर दोनों नासिका के छिद्रों से शनैः शनैः रेचन करे, परन्तु मुख से वायु को न निकलने दे। अभ्यास करने के पीछे भी मुख से वायु को न निकाले, क्योंकि मुख से वायु निकलने से बल की हानि होती

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है। इसमें कुम्भक नहीं कहा तब भी कुम्भक अवश्य ही करे; इसके करने वाले पुरुष के रूप; लावण्य और शरीर की पुष्टि होती है; क्षुधा तृषा आदि भी कम लगते हैं; निद्रा और आलस्य भी नहीं होता है।

४ सीतली मुद्रा

इसका विधान इस प्रकार है कि पक्षी की नीचे की चोंच के समान अपनी जिह्वा को होठों के बाहिर निकालकर वायु को खींचकर पूरक करे, और फिर मुख बन्द करके कुम्भक करे। फिर शनैः शनैः नासिका के छिद्रों से वायु का रेचन करे। इस कुम्भक करने वाले को गुल्म और प्लीहा अर्थात् तापतिली और पित्त ज्वारादिक रोग नहीं होते हैं। यह मुद्रा भोजन या जल की इच्छा को बढ़ाने वाली है और सर्प के विष की अथवा अन्य विष अर्थात् जहर की शान्ति करने वाली है।

५ भस्त्रिका कुम्भक

भस्त्रिका नाम धौंकनी का है। इसका विधान यह है कि सतर (सीधा) बैठकर दोनों हाथ दोनों जंघाओं के ऊपर रखे और मुख अर्थात् होठों को ऐसा मिलावे कि जिससे हवा होठों में होकर न निकले; फिर नासिका के दोनों छिद्रों से पूरक करे, फिर रेचन करे, इसी प्रकार बारम्बार रेचन और पूरक शीघ्रता के साथ करे, और बीच में दम न लेने पावे। जैसे लुहार लोहे को गरम करता है, और जब लोहा ताव पर आता है उस वक्त अग्नि को इस कदर धोंकता है, कि बीच में दम न ले। वैसे ही जब तक शरीर में परिश्रम होकर थकावट न मालूम हो तब तक पूरक रेचन करे। जब थक जावे तब सूर्यस्वर से पूरक करे फिर कुम्भक करके बन्धपूर्वक चन्द्रनाड़ी से रेचन करे। परन्तु इस जगह कुम्भक करते समय जीमने (दक्षिण) हाथ के अंगूठे से सीधा नासिका का दक्षिण छिद्र बन्द करे, और अनामिका और कनिष्ठिका अंगुली से नासिका का वाम छिद्र बन्द करे। कुम्भक पूर्ण होने के बाद चन्द्रस्वर से रेचन करे, फिर चन्द्रस्वर से ही रेचन और पूरक बारम्बार करे। पिछली रीति के अनुसार पूरक रेचन करते करते थकने लगे तो डावे (वाम) स्वर से पूरक करे और अना-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मिका और कनिष्टिका अंगुली से शीघ्र ही बन्द कर ले। कुम्भक पूर्ण होने के पीछे बन्धकपूर्वक अंगूठा हटाकर जीमणे (दक्षिण) स्वर से रेचन करे। फिर उस जीमणी (दक्षिण) नासिका से बारम्बार पहली तरह से रेचन-पूरक करे। जब थकने लगे तब पूरक करे, अंगूठे से छिद्र को बन्द कर ले, और ऊपर लिखी रीति से फिर रेचन करे। इस रीति से इस कुम्भक का वर्णन किया है।

इसका गुण यह है कि वात, पित्त, कफ इन तीनों प्रकार के रोगों को दूर करे और तीनों को समान रखे, और जठराग्नि को दीप्त करे, कुंडली नाड़ी सोती हुई को शीघ्र ही जगा दे। जो पुरुष इसको बारम्बार करेगा, उसको नाना प्रकार की सिद्धियां, और शीघ्रता से प्राणायाम की सिद्धि होगी। शरीर में जो अपानादि वायु है उनको बाहर फेंकना उसका नाम रेचक हैं, और भीतर को ले जाना उसका नाम पूरक है। और यथाशक्ति जो प्राणों को रोकना उसका नाम कुम्भक है।

इन कुम्भकों के करने से कुण्डली जो आधारशक्ति है वह जागृत होती है।

६ भ्रामरी कुम्भक

इस भ्रामरी कुम्भक का विधान यह है कि (भ्रमरी) चौइन्द्री (चतुरिन्द्रिय) होती है। वह तेइन्द्रिय लट को लाकर अपने घर में बन्द कर शब्द सुनाती है। इह शब्द के सुनने से वह लट भ्रमरी हो जाती है, ऐसा श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं। वे इक्कीसवें श्रीनमिनाथ भगवान् के स्तवन की सातवीं गाथा में लिखते हैं कि—

"जिन स्वरूप थई जिन आराधे, वैसे ही जिनवर होवे रे।
भृंगी इलिका ने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे।।७।।"

जैसा उस भ्रमरी का शब्द है, वैसे ही शब्द-सहित पूरक करे, फिर कुंभक करे, फिर रेचक करे, परन्तु भ्रमरी रूप गुंजार शब्द को तीनों जगह साथ में रखे। इस राति की कुम्भक करने से नाद की खबर जल्दी से हो जाती है। जब नाद की खबर यथावत् हुई, तब चित्त नाद में लगा हुआ शीघ्रता से समाधि को प्राप्त होगा।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

७ मूर्छा कुम्भक

इस मूर्छा शब्द का अर्थ बेहोश, अर्थात् मुद की भांति हो जाना है, और कुछ सुरत अर्थात् चेतना नहीं रहती, जिसको लोक में गश भी कहते हैं। इसकी विधि यह है कि गले में जो नसों का जाल है, उस जाल की नाड़ी, हंसली के ऊपर और गले की मणिया के नीचे अर्थात् दोनों के बीच में है, उसके दबाने से मूर्छा आ जाती है इसका नाम मूर्छा-कुम्भक है। इसमें पूरक रेचक करने का कोई काम नहीं। यह कुम्भक जड़ समाधि में काम आती है। सो इसका असली भेद तो गुरु नस दबाकर बतावे तब मालूम होगा। इस कुम्भक से कुछ सिद्धि नहीं।

८ प्लावनी कुम्भक

प्लावनी का अर्थ यह है कि जैसे जल के ऊपर लोग तैरते हैं, वैसे ही वायु शरीर में रोककर ऐसा कुम्भक करे, कि जिससे शरीर हलका होकर आपसे आप ऊपर को उठने लगे और किसी तरह का परिश्रम न पड़े। इस कुम्भक के करने से आकाशादि में चलने की शक्ति होती है। और इसी कुम्भक से केले की पालकी में बैठकर श्री स्वामी शंकराचार्य कुमारपाल राजा के पास गये थे, और कुमारपाल राजा को जैनमत से भ्रष्ट करना विचारा था। फिर श्री हेमाचन्द्राचार्य ने इसी कुम्भक से अधर होकर व्याख्यान उच्चारा, कुमारपाल को सम्भाला, शंकराचार्य को वहां से निवारा।

इस रीति से आठ कुंभकों का वर्णन कर दिया है। चन्द्रभेदादि नवमी कुम्भक भी हो गई सही, किंचित् गुरु कृपा से हमने अनुभव में बात लही। परन्तु 'हठ-प्रदीपिका' में पिछले तीनों कुम्भकों की जो रीति है, वह भी दिखाते हैं, कि जो पूरक वेग से करे तो भ्रमर की तरह नाद होता है, इस लिए पूरक वेग से करे, जिसमें भ्रमर की तरह नाद हो उस रीति से नाद करता हुआ पूरक करे। फिर भ्रमरी का सा नाद हो, जिसमें मन्द-मन्द रीति से रेचन करे, वह रेचन पूरक की विवेषता है। और पूरक पीछे रेचक तो भ्रमरी की तरह स्वभाव सिद्ध है इस वास्ते विशेष नहीं लिखा है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इस रीति से अभ्यास करे। इसके आनन्द को योगीश्वर भी कह नहीं सकते।

अब मूर्छा कहते हैं कि पूरक अन्त में जालन्धरबंध बांधकर शनैः शनैः रेचन करे। इस कुम्भक का नाम मूर्छा है जो मन को मुर्च्छित करता है। प्लावनी कुम्भक यह है कि शरीर के भीतर भरी जो अधिक वायु, उस करके चारों तरफ से भर लिया है उदर जिसने, वह पुरुष अगाध जल में कमल पत्र के समान गमन करता है। यह रीति तीनों कुम्भकों की स्वयं आत्माराम योगी की बनाई हुई 'हठप्रदीपिका' में लिखी है।

मुद्राओं का वर्णन

अब इसके आगे मुद्राओं का वर्णन करते हैं, सो पहले जो 'हठप्रदीपिकादि ग्रंथों में उनके नाम लिखे हैं उस रीति से यहां नाम दिखाते हैं—१ महामुद्रा, २ महाबन्ध, ३ महावेध, ४ खेचरी, ५ उड़ियान, ६ मूलबन्ध, ७ जालंधर बंध, ८ विपरीतकरणी, ९ वज्रोली, १० शक्तिचालन।

इस तरह हठप्रदीपिका और गोरक्षपद्धति आदि ग्रंथों में उडियानबंध, मूलबंध, जालंधरबंध, इन तीनों को भी मुद्राओं में ही गिना है, सो इन तीनों बंधों की रीति ऊपर लिख चुके हैं। इन मुद्राओं में कई मुद्रा निष्प्रयोजन भी है। इस वास्ते जो मुद्रा सप्रयोजन हैं उनको दिखाकर फिर अपनी भी युक्ति उसमें कहेंगे। इसलिए पाठकगण ध्यान रखें कि पीछे लिखी मुद्रा उनके ग्रंथानुसार है।

१ महामुद्रा वर्णन

इस महामुद्रा की विधि यह है कि वाम (बायां) पाद की एड़ी को योनि-स्थान में लगावे (योनि-स्थान का मतलब पहले दिखा चुके हैं सो वहां से देखो) और दक्षिण चरण को लम्बा करके फैलावे, एड़ी जमीन पर लगावे, और अंगूठा, अंगुलियों को डण्डे की भांति ऊंची खड़ी करे, फिर जीमने (दक्षिण) हाथ का अंगूठा और तर्जनी अंगुली से जीमने पग के अंगूठे को पकड़े, और बन्ध-पूरक सुषुम्ना नाड़ी में धारण करे, और मूलबंध भी बांध करके योनिस्थान को पीड़न करे। फिर जिह्वाबन्ध लगावे। जो कुण्डली सर्प के आकार सी टेढ़ी हो रही है; वह जैसे डण्डे के प्रहार से

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

टेढ़ेपन को छोड़कर सर्पिणी सरल हो जाती है, वैसे ही उस समय शीघ्र ही सरल हो जाती है। जब वह कुण्डली सरल हो गई तब कुण्डली के बोध से सुषुम्ना में प्राण का प्रवेश होता है। उस समय इड़ा और पिंगला को सहायता देने वाला जो प्राण है वह सहायता देने में समर्थ नहीं रहता। इसलिए इड़ा पिंगला यह दोनों नाड़ी मरण प्राप्त होती है अर्थात् घर छोड़कर भाग जाती है। उस समय के आनन्द को तो उसके करने वाले ही जानते हैं, न कि लिखने, या बांचने वाले। जो इस आनंद को प्राप्त करेंगे, वे ही इनका अभ्यास करेंगे, उनको करने वालों का ही मोह, राग, द्वेषादि मिटेगा, आत्मा में उन्हीं का दिल डटेगा, ज्ञान दर्शन, चरित्र तीनों का मेल सटेगा, तब कर्मों के पटल आत्मा से हटेंगे। जिन्होंने इस आनन्द को पाया है उन्होंने ही पदों में गाया हैं। हमको श्री आनन्दघन जी का पद याद आया, इसका यहां उल्लेख करते हैं।

"इड़ा पिंगला घर तज भागी, सुषुम्ना का घर वासी।
ब्रह्मरन्ध्र मध्यासन पूरो, बाबा अनहद नाद बजासी ॥१॥"

ऐसा श्री आनन्दघन जी का फरमाना (कथन) है। इससे प्रतीत होता है कि वे इस मुद्रा के भी अभ्यासी थे। जिन्होंने ऐसा अभ्यास किया है, वे कब किसी के जाल में फंसते हैं? आत्मा को भजते हैं और राग-द्वेष को तजते हैं गच्छादिक के मद में नहीं धसते हैं।

महामुद्रा के अभ्यास का विधान

इसकी विधि यह है कि चन्द्र अंग अर्थात् वाम-अंग से अभ्यास करे, फिर सूर्य अंग अर्थात् दक्षिण अंग से अभ्यास करे। परन्तु दोनों अंगों से अभ्यास बराबर करे, कमी बेशी न होने दे। फिर इसको विसर्जन कर दे। परन्तु इस बात का ध्यान रखे कि जब बाम अंग से अभ्यास करे तो दक्षिण चरण को फैलावे, और ऊपर लिखी रीति से चरण के अंगूठे को दक्षिण हाथ से पकड़े और जब दक्षिण अंग से अभ्यास करे तब वाम चरण को फैलाकर वाम हाथ से चरण का अंगूठा पकड़े। इस रीति से दोनों अंगों में समान अभ्यास करे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

महामुद्रा के गुण

जो पुरुष इसका अभ्यास करने वाले हैं, उन पुरुषों को पथ्य-अपथ्य का भय करने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण कटुक, खटाई आदि जो भोजन करेगा सो ही पच जायेगा । ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि उसको हज़म न होवे, क्योंकि साधु की गोचरी में गृहस्थ के घर से सब तरह की निरसादि चीज़ आती है । सो इन क्रिया करने वालों को हज़म हो जाती है; किसी रोगादि को उत्पन्न नहीं करती है ।

२ महाबन्ध मुद्रा

अन्य मतों की रीति का भी वर्णन कर देते हैं कि वाम चरण की एड़ी योनिस्थान में लगा कर फिर वाम चरण को जानु के ऊपर दक्षिण चरण को धरे, उसके बाद पूरक करे; फिर हृदय में ठोड़ी लगाकर जालंधर बन्ध लगावे, और मूलबन्ध लगाकर यथाशक्ति कुम्भक करके मंद-मंद रेचन करे । इसका गुण हठप्रदीपिका या गोरक्षपद्धति में देखो ।

३ महावेध मुद्रा

इसका विधान यह है कि महामुद्रा में स्थित, जिसकी एकाग्र बुद्धि है ऐसा योगी नासिका पुट से पूरक करके कण्ठ की जालन्धर मुद्रा से वायु की ऊपर नीचे गमन रूप जो गति उसको रोककर कुम्भक करे, और पृथ्वी में लग रहे हैं तालुआ जिनके, ऐसे दोनों हाथ समान करके, फिर योनि-स्थान में लगे हुए एड़ी वाले पांव के साथ हाथों के सहारे कुछ ऊपर उठकर फिर मन्द-मन्द भूमि में ताड़न करे,इड़ा पिंगला दोनों को उल्लंघन करके सुषुम्ना के मध्य में वायु प्राप्त हो । चन्द्र, सूर्य, और अग्नि में अधिष्ठित नाड़ी जो इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, उनका सम्बन्ध मोक्ष के लिए होता है । निश्चय करके प्राण वियोग की अवस्था अर्थात् मृतसी अवस्था प्राप्त होती है । उसके पीछे वायु को नासिका-पुटन करके धीरे-धीरे रेचन करे । परन्तु इस जगह इतना विशेष है कि योनि-स्थान में एड़ी लगी रहने से जब वह हाथों के बल से ऊपर उठेगा तो आसन भंग हो जाने से मूलबन्ध यथावत् न रहेगा; इस लिए इस मुद्रा के अभ्यास में पद्मासन लगावे, और मूलबन्ध को कम न

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

होने दे। इतने पर भी इसकी असली रीति गुरुगम से जानों, हठप्रदीपिका वाले ने पद्मासन नहीं लिखा परन्तु गोरख पद्धति में लिखा हुआ है।

४ विपरीतकरणी मुद्रा

विपरीत मुद्रा करने का प्रकार यह है कि पृथ्वी पर मस्तक टेककर हाथों से सिर को थामकर मयूर आसन की तरह पैर ऊंचे करके आकाश की तरफ सतर कर देवे। इस रीति से सिर के बल अधर खड़ा होना, उसका नाम विपरीत करणी मुद्रा है। इसके करने का प्रयोजन यही है, कि चन्द्रमा ऊर्ध्व भाग में है, और सूर्य अधोभाग में है, सो जो चन्द्रमा से अमृत झरता है वह सूर्य में पड़कर भस्म हो जाता है। इसलिये विपरीत-मुद्रा करने से चन्द्रमा अधोभाग में हो जाता है, और सूर्य ऊर्ध्व भाग में हो जाता है। सूर्य को अमृत न मिलने से सूर्य निर्बल होकर इड़ा-पिंगला को जोर नहीं दे सकता। जो इसका अभ्यास करे वह पहले दिन एक क्षण, दूसरे दिन दो क्षण, इसी प्रकार से प्रतिदिन बढ़ाता चला जाय। जब एक पहर की मुद्रा होने लगे तब आगे अभ्यास न बढ़ावे। इसके कारण से क्षुधा बहुत लगती है। जो कम खाने वाला है, यदि वह इस क्रिया को करता है, तो कम खाने से उसके शरीर को यह मुद्रा जला देगी। इसलिए इससे कुछ प्रयोजन सिद्धि नहीं होती। न मालूम इन लोगों ने लिखकर क्यों इसकी इतनी महिमा की है ?

खेचरी मुद्रा का कथन

प्रथम खेचरी हो जाने की विधि लिखते हैं, इसके बाद इसके गुणादि और करने की विधि लिखेंगे। सो इसकी पहली विधि यह है कि पहले जिह्वा को होठों के बाहर निकाले, और दोनों हाथों के अंगूठों और तर्जनियों से पकड़कर शनैः शनैः बाहर को खींचे, तथा गौ के थनों से जैसे दूध निकालते हैं उसी रीति से दोनों हाथों से खींचे, वह बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ जाय कि नाक पर होकर भृकुटी के मध्य में जा लगे। जब इस तरह का अभ्यास हो जाय तब उसका छेदन—सोधन किया जाता है। वह दिखाते हैं कि जैसे थूहर के पत्ते की धार तीक्ष्ण होती है, इस तरह का चिकना,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

निर्मल और तीक्ष्ण धार वाला शस्त्र लेकर उससे जिह्वा के नीचे जो नस है उसको पहले लवमात्र छेदे; फिर उसके ऊपर सेन्धा लूण और हर्रों को पीसकर उस छेदी हुई जगह लगावे। परन्तु इस क्रिया करने वाले को दोनों वक्त लवण खाना मना है, तो भी हर्रें और लवण को लगा ले। फिर सात दिन के पीछे आठवें दिन कुछ अधिक छेदे। इस रीति से छः महीने पर्यन्त युक्ति से करे तो जिह्वा के मूल में जो नाड़ी है वह नाड़ी कपाल के छिद्र में जाने लायक होगी। इस रीति से पहले साधन करे। यह रीति ग्रंथों में लिखी है। परन्तु इसकी असल रीति तो यह है कि जिसमें शस्त्रादि से छेदने का कुछ प्रयोजन नहीं है, किन्तु वह रीति गुरु की कृपा के बिना मिलनी कठिन है और वह रीति शास्त्र द्वारा लिखी भी नहीं जाती, क्योंकि गुरु आदि तो योग्य अयोग्य देखकर युक्ति-क्रम बताते हैं, शास्त्र में लिखें तो योग्य अयोग्य की कुछ खबर न पड़े। और बिना योग्य के असल वस्तु नहीं दी जाती। हमने अपने गुरु की बताई रीति आजमाई है। बिना छेदन के जिह्वा अलग कराई है। एक दो जिज्ञासुओं को बताई भी है। उलटकर जिह्वा छिद्रों में पहुंचाई है।

खेचरी मुद्रा के गुण और प्रयोजन

जब जिह्वा की नस अलग हो जाय, तब जिह्वा को तिरछी करके गले में ले जाय, और तीनों नाड़ियों के जो मार्ग अर्थात् नासिका के जो छिद्र, जिसमें इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नासिका के बाहर निकलकर मालूम होती हैं, उनके बन्द करने के वास्ते छिद्रों के ऊपर जिह्वा लगाकर छिद्रों को बन्द कर दे, जिससे इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना इन तीनों नासिका के बाहर न निकल सकें। इसका नाम खेचरी मुद्रा है। इसको कितने ही व्योम-चक्र भी कहते हैं, परन्तु यह व्योम-चक्र नहीं है, क्योंकि व्योम-चक्र भृकुटी के ऊपर है। इसके करने से यह गुण है कि यदि तालु के ऊपर के छिद्रों में लगी हुई जिह्वा, एक घड़ी मात्र भी उस जगह स्थिर रहे, तो सर्प से लेकर जितने ज़हरीले जानवर हैं उनका ज़हर दूर करने की शक्ति उस पुरुष को प्राप्त हो जाती है। उसको किसी जानवर का ज़हर (विष) नहीं चढ़ता और

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इस मुद्रा के करने वाले पुरुष को आलस्य, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मूर्छा आदि विशेष नहीं होते हैं। तालु के ऊपर के सन्मुख जिह्वा लगाये हुए जो स्थिर होकर वह गले के छिद्रों में से पड़ता हुआ चन्द्र-अमृत का पान करता है वह सर्व कार्य की सिद्धि हृदय में धरता है, राग द्वेष की परिहरता है मात्र कर्मों से झगड़ता है, परन्तु अपने समान सर्व जीवों को जान किसी से लड़ता नहीं है, मध्यस्थभाव में प्रवृत्त रहता है। परन्तु इसकी पूर्ण रीति बिना गुरु के नहीं प्राप्त होती। वर्तमान काल में छापा होने से हठयोगादि की पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। इससे कई योगी हो जाते हैं। परन्तु इन पुस्तकों से अपनी जान खो बैठते हैं। इसलिए यदि आत्मार्थी बनकर योगाभ्यास करने की इच्छा हो तो सद्गुरु की विनय, प्रतिपत्ति, शुश्रूषादि करो। जिससे तुम्हारे पर गुरु अनुग्रह करके उसे बतावे, और आशीर्वाद देवे, जिससे तुमको यथावत् प्राप्ति हो जाये, इस खेचरी मुद्रा के विषय में 'हठप्रदीपिका' आदि ग्रंथों में जो प्रक्रिया लिखी है, वह प्रक्रिया यहां नहीं लिखी है। क्योंकि, उसमें गोमांस और अमर-वारुणी (मदिरा) का भक्षण करना और पीना लिखा है।

इसका कुछ खुलासा भी देते है कि छोटी हरडों को बारह पहर अथवा सोलह पहर तक कुंवारी गौ अर्थात् आठ दस महीने की बछिया के पेशाब में भिगोवे। जब वे दो दिन में भीजकर फूल जाये, तब उनको छाया में सुखा लें, सूर्य की धूप न लगने दें फिर उनको कोरे बर्तन में डाल कर सेकें। उन्हें इस तरह सेकें कि जल न जायें और कच्ची भीन रहें। उन हरडों में सेंधा लवण अन्दाज़ से मिलाकर चूर्ण बनावे। उससे सायं और प्रात: दोनों वक्त जिह्वा की जड़ में मालिश करे और दस-दस मिनट ऊपर लिखी रीति से जिह्वा को शनै: शनै: खेंचा करे, बाहर की तरफ ही ले जाया करे, फिर तीन महीने के बाद उलटकर गले की तरफ ही ले जाया करे, छः महीने इस रीति से करेगा तो जिह्वा कागल्या से आगे निकल जायेगी। नव महीनों में छिद्रों के पास में पहुंच जायेगी। जिसकी इच्छा होवे वह विश्वास सहित इस काम को अंगीकार करे तो हमारे लिखे

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अनुसार प्राप्ति हो जायेगी । विशेष गुरुओं के पास जाकर उनसे जिज्ञासा पूर्ण करनी चाहिए, क्योंकि जो आत्मार्थी योगाभ्यास की इच्छा वाले हैं, उनके वास्ते संकेत (इशारा) लिखा है । अन्यमतावलम्बियों का खण्डन भी कर दिखाया है । बिना शस्त्र छेद के खेचरी मुद्रा करना बतला दिया ।

वज्रोली मुद्रा

प्रथम 'हठप्रदीपिका' और 'गोरक्षपद्धति' की प्रक्रिया दिखाकर पीछे किञ्चित् अपनी रीति, जो गुरु-कृपा से पाई है, उसको लिखेंगे । प्रथम मूल का श्लोक लिखेंगे पीछे टीका के अनुसार जो भाषा है उसको लिखेंगे । कदाचित् भाषा में न्यूनता होगी, तो टीका के उतने ही अक्षर दिखाकर पीछे भाषा लिखेंगे । सो प्रथम 'हठप्रदीपिका' के श्लोक लिखते हैं ।

"स्वेच्छया वर्तमानोऽपि, योगोक्तैर्नियमैर्विना ।
वज्रोलीं यो विजानाति, स योगी सिद्धिभाजनम् ।।८३ ।।

तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये, दुर्लभं यस्य कस्यचित् ।
क्षीरं चैकं द्वितीयं तु, नारी च वशवर्तिनी ।। ८४ ।।

मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुञ्चनमभ्यसेत् ।
पुरुषोऽप्यथवा नारी, वज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात् ।। ८५ ।।

यत्रतः शस्तनालेन, फूत्कारं वज्रकन्दरे ।
शनैः-शनैः प्रकुर्वीत, वायुसंचारकारणात् ।। ८६ ।।

नारी भगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत् ।
चलितञ्च निजं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ।। ८७ ।।

एवं संरक्षयन् बिन्दुं, मृत्युं जयति योगवित् ।
मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात् ।। ८८ ।।

सुगन्धो योगिनां देहे, जायते बिन्दुधारणात् ।
यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे, तावत्कालभयं कुतः ।।८९ ।।

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तञ्च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव, रक्षणीयं प्रयत्नतः ।। ९० ।।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ऋतुमत्या रजोऽप्येवं, बीजं बिन्दुञ्च रक्षयेत् ।
मेढेण कर्षयेदूर्ध्वं, सम्यगभ्यासयोगवित् ।। ६१ ।।"

भाषा टीका

"अब वज्रोली के आदि में इसका फल कहते हैं । जो योगाभ्यासी वज्रोली मुद्रा को विशेषकर अपने अनुभव करके जाने, सो योगी योगशास्त्र में कहे हुए ब्रह्मचर्यादि किये बिना अपनी इच्छा करके वर्तमान रहे, अणिमादि अष्ट सिद्धि को भोगने वाला हो ।। ८३ ।। वज्रोली के अभ्यास में दो वस्तु कही है, एक तो दूध पीना दूसरी स्त्री आज्ञाकारी वशवर्तिनी हो ।। ८४ ।।

वज्रोली मुद्रा का प्रकार यह है कि स्त्री-संग के पीछे बिन्दु को क्षरण कहां पड़ना, जिसको पुरुष अथवा स्त्री यत्नपूर्वक इन्द्रिय को ऊपर आकुंचन करके वीर्य को ऊपर खींचने का अभ्यास करे, तो वह वज्रोली सिद्ध होती है ।। ८५ ।। अब वज्रोली की पूर्वांग क्रिया कहते हैं । चांदी की बनी हुई नाल को शनैः शनैः जैसे अग्नि सुलगाने को फूंक मारते हैं, वैसे ही फुंकार से इन्द्रिय के छिद्र में वायु का संचार बारम्बार करे ।

वज्रोखी की साधन क्रिया

वज्रोली की साधन प्रक्रिया यह है कि सीसे की बनी हुई चिकनी हो, इन्द्रिय में प्रवेश करने के योग्य हो, ऐसी चौदह (चतुर्दश) अंगुल की शलाका करा करके उसको इन्द्रिय में प्रवेश कराने का अभ्यास करे । पहले दिन एक अंगुल प्रवेश करे । दूसरे दिन दो अंगुल प्रवेश करे । तीसरे दिन तीन अंगुल प्रवेश करे । इस रीति से क्रम से बारह अंगुल प्रवेश हो जाय तो इन्द्रिय मार्ग शुद्ध होवे । अथवा चौदह अंगुल की शलाका बनवावे, जिसमें दो अंगुल टेड़ी और ऊंचे मुंह वाली होनी चाहिए, वह दो अंगुल बाहर स्थापन करे। इसके पीछे सुनार की अग्नि सुलगाने की नाल के सदृश नाल ग्रहण करके उस नाल का जो अग्रभाग उसको इन्द्रिय में प्रवेश की हुई नाल के दो अंगुल बाहर निकले हुए भाग के मध्य में प्रवेश कर फूत्कार करे । इस प्रकार भली भांति इन्द्रिय मार्ग शुद्ध हो जाय, तब पीछे से इन्द्रिय द्वारा जल को ऊपर चढ़ाने का अम्तास करे । जब जल का आकर्षण होने लग जाय, तब पहले

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

श्लोक में लिखी हुई रीति के अनुसार वीर्य के आकर्षण करने का अभ्यास करे। जब वीर्य का आकर्षण करना सिद्ध हो जाय, तब वज्रोली मुद्रा सिद्ध होती है। जिस मनुष्य को खेचरी मुद्रा, और प्राण जय यह दोनों सिद्ध हो उसको वज्रोली मुद्रा सिद्ध होगी; दूसरे को नहीं ॥ ८६ ॥

जब इस प्रकार वज्रोली मुद्रा का अभ्यास सिद्ध हो जाय, उसके आगे साधन बतलाते हैं। नारीभगे इति। रतिकाल में स्त्री की योनि में वीर्य गिर पड़ा यह मालूम होवे लेकिन गिरे नहीं, उससे पहले जो वीर्य उसको वज्रोली के अभ्यास द्वारा ऊपर को आकर्षण करे। यदि गिरने के पहले बिन्दु को आकर्षण न कर सके तो स्त्री की भग में गिरा हुआ जो अपना वीर्य और स्त्री का रज इन दोनों को ऊपर खींचकर स्थापित करे ॥ ८७ ॥

वज्रोली के गुण वर्णन

"एवमिति। इस रीति से जो वीर्य को स्थिर करता है, वह योगवेत्ता होता है, और मृत्यु को जीत लेता है। परन्तु जो वीर्य का पतन करता है, वह मरण को प्राप्त होता है। इस रीति से वीर्य को धारण करने वाला जीवित होता है। इसलिए बिन्दु को इस रीति से स्थित करे ॥ ८८ ॥

सुगन्धेति। वज्रोली के अभ्यास करने वाले देह में वीर्य को धारण करते हैं, उससे बहुत सुन्दर सुगन्ध पैदा होती है और जब तक बिन्दु स्थित रहता है, तब तक काल का भय नहीं होता है ॥ ८९ ॥

चित्तायत्त मिति। निश्चय जो चित्त चलायमान हो, तो मनुष्य का वीर्य चलायमान होता है। और जो चित्त स्थिर हो तो वीर्य भी स्थिर रहता है। इसलिए चित्त के अधीन वीर्य है, और शुक्र जो स्थिर हो तो जीवन स्थिर हो, जो शुक्र नष्ट हो तो मरण हो, इस लिए शुक्र के अधीन जीवन है, इस वास्ते शुक्र और बिन्दु इन दोनों की अवश्य रक्षा करनी चाहिए ॥ ९० ॥

ऋतुमत्यादि। ऋतुमती स्त्री का रज और अपना बिन्दु इन दोनों को इस रीति से स्थिर करे कि इन्द्रिय करके यत्नपूर्वक रज और बिन्दु को ऊपर आकर्षण करे। वह वज्रोली-अभ्यासवेत्ता योगी जानता है ॥ ९१ ॥"

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यह हठ प्रदीपिका का लेख लिखा, अब 'गोरक्ष-पद्धति' का भी लेख लिखते हैं।

गोरक्ष-पद्धति की रीति से वज्रोली वर्णन

"स्वेच्छया वर्त्तमानोऽपि, योगोक्तैर्नियमैर्विना।
वज्रोलीं यो विजानाति, स योगी सिद्धिभाजनम् ॥ १ ॥
तत्र वस्तुद्वयं वक्ष्ये, दुर्लभं यस्य कस्यचित्।
क्षीरं चैकं द्वितीयन्तु, नारी च वशवर्तिनी ॥ २ ॥
मेहनेन शनैः सम्यगूर्ध्वाकुंचनमभ्यसेत्।
पुरुषोऽप्यथवा नारी, वज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥
यत्नतः शस्तनालेन, फूत्कारं वज्रकन्दरे।
शनैः शनैः प्रकुर्वीत, वायुसञ्चारकारणात् ॥ ४ ॥
नारीभगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलितं च निजं बिन्दुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत् ॥ ५ ॥
एवं संरक्षयन् बिन्दुं, मृत्युं जयति योगवित्।
मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात् ॥ ६ ॥
सुगन्धो योगिनो देहे, जायते बिन्दुधारणात्।
यावद् बिन्दुः स्थिरो देहे, तावत्कालभयं कुतः ॥ ७ ॥
चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तञ्च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव, रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥
ऋतुमत्या रजोऽप्येवं, बीजं बिन्दुञ्च रक्षयेत्।
मेढ्रेण कर्षयेदूर्ध्वं सम्यगभ्यासयोगवित्। ९ ॥

इन श्लोकों का अर्थ इसलिये नहीं लिखते कि जैसा अर्थ 'हठप्रदीपिका' में है' वैसा ही इनका भी है। श्लोकों का लिखना तो ठीक समझा, कुछ भेद होता तो अर्थ अवश्य ही लिखते, क्योंकि निष्प्रयोजन ग्रन्थ को बढ़ाना ठीक नहीं समझा। थोड़े ही से प्रयोजन निकले तो बहुत क्यों बढ़ावें?

अब ऊपर लिखी हुई जो रीति है उससे योग करने वाले को ही योगीन्द्र समझते हैं यह उसका लिखना और ऐसे ही योगीन्द्र समझना असम्भव सा है,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

क्योंकि प्रथम ही योगाभ्यास के आरम्भ में अपथ्यभोजनादि अथवा स्नानादि क्रियाएं, और स्त्री का संग बिलकुल मना किया है। धर्मशास्त्रों में वा स्मृतियों में भी अनेक ऋषियों ने ऐसा ही लिखा है कि जिस जगह स्त्री का चित्र व मूर्ति हो, उस मकान में योगी, सन्यासी यति ब्रह्मचारी आदि को नहीं ठहरना चाहिए और जो कि स्त्री-विषय के आलंकारिक काव्य है उनको भी यति, ब्रह्मचारी, योगी, सन्यासी न पढ़े, क्योंकि पढ़ने से विकार उत्पन्न होता है यदि उस मकान में ठहरने और उस चित्र-मूर्ति को देखने से चित्त की चंचलता और विकार उत्पन्न होता है, तो स्त्री के पास में रहने से क्यों कर चित्त स्थिर रह सकता है ? और योनि में लिंग को देकर क्रिया करना और वीर्य का निकालना और उसको भग में न पड़ने देना, अथवा न रुक सके और पड़ जाय तो उसका वायु के जोर से आकर्षण करके फिर स्तम्भ करना, इससे तो पहले ही न करना श्रेष्ठ है, क्योंकि पहले शरीर को कीचड़ मलकर फिर पानी से धोना, इससे तो कीचड़ न मलना ही श्रेष्ठ है। इस लिए यदि आदिनाथ, मच्छन्दरनाथादि योगियों ने इस बात को अंगीकार किया है, तो उनके योगीन्द्र होने में वा अमर होने में विवेक-सहित बुद्धि से विचार करने वाले को सन्देह होता है। सम्भव है कि स्त्री-संग करने से मोक्ष मानना, "कवलक" (कौलक) मतावलम्बियों के बिना और कोई मतावलम्बी स्वीकार न करेगा। कौलक मत वाले पांच मकार से मोक्ष मानते हैं। वे पांच मकार ये हैं—मांस, मदिरा, मछली, मैथुन, मुद्रा। वे इनकी अंगीकार करते हैं। उनके भी दक्षिणी, वामी, उत्तरादि, काचलियापन्थ, कूंडापन्थ, अधरवीयं, आदि अनेक भेद हैं।

तब तक योग का सच्चा ज्ञान ही होता जब तक आत्मानुभव और अध्यात्म का आत्मार्थी गुरु न मिले। इसलिए मैं नम्रता-पूर्वक पाठक-गणों को कहता हूं, कि जैसा गुरु मुझे मिला, और उन्होंने जो बातें मुझे बताईं, अनुभव कराया, दो मिनट में मानो अमृत का प्याला पिलाया, शासनपति श्री वीर भगवान् के निर्वाण-भूमि पर ध्यान करना फरमाया, मैंने भी उस जगह आकर उन्नीस सौ चौतीस की साल में आसन जमाया, ध्यान

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

के प्रारम्भ से ग्यारहवे दिन अनुभव का आनन्द पाया, उसी के किञ्चित् स्वाद से इतना लेख लिखाया है।

ऊपर की बात से अब हमको यह विचार करना चाहिए कि जब योनि में लिंग देकर क्रिया करना, और वीयं न पड़ने देना, अथवा पड़े हुए को ऊपर चढ़ाते जाना ही यदि 'हठप्रदीपिका' आदि के मत से योगीन्द्रपन हो तो सब कामी मनुष्य भी योगवेत्ता हो जायेंगे।

दूसरी बात यह है कि जो चीज पहले सावुत बनी हुई है, उस चीज में से थोड़ी निकाल कर फिर उसमें मिलावे तो मिलाने से जो घाट पहले था वह घाट न रहेगा। जैसे दही किसी बरतन में जमा हुआ है, उसमें से कुछ निकाल कर फिर पीछे से उसमें मिलावे तो पहले जैसा यथावत् स्वरूप था वैसा कदापि न होगा। यही हाल वीयं का भी है। इस लिए पहले उस वीयं को कदापि न निकालना चाहिए।

तीसरी बात यह भी है कि योनि में लिंग देने से यदि योगवेत्ता होता हो, तो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, समाधि, आदि साधन व्यर्थ हो जायंगे।

चौथा कारण यह है कि गोरक्ष पद्धति के सातवें और हठप्रदीपिका के ८३ वें श्लोक में लिखा है, कि चित्त के स्थिर होने से वीर्य स्थिर होता है। इससे आत्म-अनुभवी—अध्यात्म इसी बात को अंगीकार करेंगे कि चित्त को स्थिर करने से वीर्य आप ही स्थिर हो जाएगा।

पांचवां कथन है कि योनिमें लिंग डाल कर क्रिया करना और वीर्य को न गिरने देना, यह बात शौकीन जार पुरुष भी कर सकते हैं। अथवा दवाई आदि से भी हो सकता है। परन्तु ऐसी क्रिया (वज्रोली) से कदापि चित्त स्थिर न होगा। उलटी विशेष रूप से चित्त की चंचलता हो जाएगी, और चंचलता होने से व्यभिचारादि विशेष करने लगेगा। क्योंकि देखो अग्नि में ज्यों-ज्यों घृत काष्ठादि पड़ेगा, त्यों-त्यों अग्नि विशेष करके प्रज्वलित होगी। इस रीति से जो योनि में लिंग देकर क्रिया करेगा, उसका चित्त विषयासक्त होगा ही और जिस समय वह वीर्य निकलता है सो रुकना भी कठिन है; क्यों

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कि वीर्य निकलते समय जो विषयानन्द होता है, उस विषयानन्द में जगत् फंस रहा है और जरा-मरण करता है, और फिर वह वीर्य भग में पड़ा हुआ पीछे खींचकर ले जावे तो वह वीर्य दही के दृष्टांत के अनुसार कदापि एक-रस न होगा। इसलिए वर्तमान काल में कितने ही लोग इन ग्रन्थों के अनुसार वज्रोली में प्रवृत्त होते हैं और अपने दिल में विचारते हैं कि इस क्रिया के करने से हम योगवेत्ता होकर योगीन्द्र वन जायेंगे। किन्तु वह तो होता नहीं है, उलटे वे लोग भ्रष्ट और पतित हो जाते हैं। इसलिए इन ग्रंथों की रीति आत्मार्थियों के वास्ते उपयुक्त हमारे समझ में नहीं आई, इस कारण से हमने विशेष खोलकर लिखा है, कितने ही वेषधारी इस क्रिया को करके साधुत्व से भ्रष्ट हो गए हैं। भाई, इसकी प्रवृत्ति अन्य मत में ही है जैनमत के साधु भ्रष्ट न हुए, क्योंकि उन्होंने यह क्रिया को अपनाया नहीं है। अन्य मत के साधु काम विकार जन्य प्रवृत्ति कर आपस में बड़ाई करते हैं इसलिए प्रसंग से हमने भी इतनी बात लिख दी है।

वज्रोली की शुद्ध रीति और प्रयोजन

अब हम वज्रोली का प्रयोजन और रीति गुरु की कृपा से जो पाई है वह बतलाते हैं, आत्मार्थी पाठकगणों को सुनाते हैं, कुछ अनुभव भी दिखाते हैं, वीर्य को बचाते हैं, स्त्री का बिलकुल त्याग कराते हैं, अपने स्वरूप को मिलाते हैं। जो बुद्धि पूर्वक विवेक सहित ग्रहण कर श्रद्धा-सहित परिश्रम करेगा उसे स्वरोदय-साधन में सहायता मिलेगी और इससे कुछ विशेष सिद्धि नहीं है। हां विषयी पुरुषों के वास्ते स्त्रियों को प्रसन्न करना, और आप आनन्द लूटना होता है, परन्तु यह काम योगियों का नहीं। इन्द्रिय में गज डालकर छिद्र बढ़ाना भी निष्प्रयोजन है। क्योंकि लघुनीति साफ मार्ग के बिना कदापि न निकलेगी और फूंकनी लगाकर उसमें वायु को फूंक से भरना भी निष्प्रयोजन है। यद्यपि लघुनीति होना, अथवा विषय करने से भी वीर्य का निकलना, इन दोनों बातों का अनुभव जगत् को हो रहा है। परन्तु ख्याल न रखने से उसका रहस्य समझते नहीं हैं। विवेक के साथ विचार करें तो प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यही दिखाते हैं कि जिस समय पुरुष अठारह अथवा बीस वर्ष की आयु में हो, और

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

स्त्री तेरह या चौदह वर्ष की आयु में हो और जब वह लघुनीति करने को बैठे, उस समय गुदा को ऊपर आकुञ्चन करने से लघुनीति (पेशाब) की धार बन्द हो जाती है। और जब आकुंचन छोड़ते हैं तब धार निकलती है। इस रीति से जो मैथुनादि क्रिया करते हैं, तब वीर्य निकलते समय गुदा ऊपर को स्वयं ही आकुञ्चित हो जाती है, और वीर्य रुक जाता है, जब गुदा नीचे को होती है तब वह वीर्य निकलता है। यह सब प्राणवायु का ख्याल है। परन्तु वीर्य और पेशाब रुकने और निकलने का अनुभव सबको है। बल्कि कितने ही मनुष्य श्वास को रोक कर वीर्य को रोकते हैं, और किसी समय उसे रोकने से वीर्य रुककर घाव (क्षत) कर देता है, जिस घाव के होने से सुजाक की बीमारी कहलाती है। यह अनुभव साधारण पुरुषों को भी हो रहा है।

और जो योगी जन हैं उनको यदि कभी कोई कारण (गर्मी आदि) से वीर्य चलायमान हो जाय, तो उसको प्राण अपान की एकता, और नौली चक्र से कुंभक करके लिंग के ऊपर रोक लेते हैं, क्योंकि जिसको नौली-चक्र यथावत् याद है वह पुरुष लिंग से और गुदा से द्रावण (पिघला हुआ घृत, दुग्ध, जल और तेल) चढ़ा सकता है। सो घृत, दुग्ध, शहद आदि लिंग से चढ़ाना केवल लोगों को तमाशा दिखाना है, क्योंकि वीर्य निकल गया वह खराब हो गया, उसके चढ़ाने से सिवाय हानि के और कुछ लाभ नहीं होगा। इसलिए इस वज्रोली का मुख्य तात्पर्य यही है कि स्वर-साधन करने वाले ऐसा कहते है कि लघुनीति चन्द्र स्वर में करे और बड़ीनीति (पाखाना) सूर्य स्वर में करे। लघुनीति को वज्रोली रोक सकती है, यही इसका प्रयोजन है। क्योंकि जब पुरुष अथवा स्त्री पाखाना आदि को जाते हैं उस समय दोनों ही स्वर होते हैं। इस बात को सर्व साधारण जानते हैं। कदाचित् गज डाल कर उसमें फूंकादि लगाकर लिंग को साफ करे, परन्तु जब तक उसको नौलीचक्र न आता होगा, तब तक उससे बस्ती कर्म और वज्रोली कदापि न होगी।

और जो इन ग्रन्थकारों ने ऐसा लिखा है, कि "जिसको वज्रोली होगी, उसी को खेचरी होगी और खेचर होगी तो वज्रोली होगी" यह बात भी ठीक नहीं है। क्योंकि इन दोनों का आपस में कुछ सम्बन्ध नहीं, बल्कि बिना वज्रोली

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

के खेचरी मैंने कराई है, और बिना खेचरी के वज्रोली करते हमने कितने ही मनुष्यों को देखा है। हां, बिना नौली के वज्रोली कदापि न होगी, क्योंकि नौलीकर्म जिसको सिद्ध होगा, वह पुरुष नल उठाकर बाहर की वायु को खींच सकता है, बिना नौली के कुम्भक वायु नहीं खिचती, इसलिए जिसको नौली याद होगी उसको वज्रोली जब करेगा तब ही याद हो जायगी। इस रीति से किञ्चित् वज्रोली की प्रक्रिया दिखाई।

जोली, अम्रोली क्रियायें भी इस वज्रोली का ही भेद है ऐसा 'गोरक्ष-पद्धति आदि में लिखा है और इसका असल भेद ओघड़मत या अघोरियों का आचरण है परन्तु इसके करने से कुछ आत्मा की सिद्धि नहीं। हां, किसी कदर साधन करने से लोगों को चमत्कारादि सिद्धि दिखाने का कारण है। सो इसके लिखने के लिए चित्त तो नहीं चाहता। परन्तु मेरे गुरु ने मुझको बताने में किसी प्रकार का संकोच नहीं रखा। यदि वे कुछ संकोच रखते तो मैं भी संगति पाकर उनके (अघोरियों) के जाल में फंस जाता। सो उन गुरु की चरण-कृपा से और सब हाल जानने से उनके जाल में नहीं आया हूं, उनके घर के हाल को कहकर सर्वज्ञ मत पुख्ता बताता हूं। इस प्रकार लिखे हेतु से किञ्चित् दिखाते हैं कि लघुनीति का पीना और बड़ीनीति का खाना, अर्थात् पाखाना का खाना और पेशाब का पीना उसका नाम जोली है। अघोरी मतवाले ऐसा करते हैं।

अम्रोली

बड़ीनीति को और लघुनीति को मिलाकर कपड़े से छानना, और उसको गरम करके पीना, तथा उसके बोदर [फोकम] को शरीर पर मालिश करना उसका नाम अम्रोली है।

इसे करने वाले लोग एक मन्त्र का जाप भी करते हैं, उस जाप से उनको सिद्धि प्राप्य होती है। इस काम के करने वाले इस संसार को यह तमाशा दिखाते हैं। क्रिया करने में सिद्धि की आशा रखते हैं, इन लोगों को आत्मा के स्वरूप का किञ्चित् भी बोध नहीं है।

अब इस प्रपञ्च को छोड़कर प्रणायामादि दिखाते हैं, प्रथम मल-शुद्धि का उपाय कराते हैं, क्योंकि प्राणायाम से भी मलशुद्धि होती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रणायाम के तीन भेद

एक तो पूरक, दूसरा कुम्भक, तीसरा रेचक। पूरक उसको कहते हैं कि वायु को ऊपर अर्थात् बाहर से अन्दर ले जाना।

कुम्भक उसको कहते हैं कि श्वास को बन्द रखना अर्थात् न तो भीतर ले जाना और न बाहर निकलना।

रेचक नाम उसका है, कि जो वायु रोकी हुई है, उसको बाहर निकालना।

तीनों प्राणायाम करने की रीति

इनकी रीति यह है कि प्रथम पद्मासन अथवा मूलासन लगावे, फिर चन्द्र अर्थात् डाबी [बाम] नासिका से वायु को खींचे—अर्थात् पूरक करे। फिर अंगूठा और अनामिका अंगुली से दोनों नासिका के छिद्रों को बन्द करे, जितनी जिसकी शक्ति हो उतने समय पर्यन्त इस माफिक करना चाहिये। और मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, उड़ियानबन्ध, इन तीनों को करे।

फिर सींधे [दक्षिण] स्वर से वायु का धीरे-धीरे रेचन करे। परन्तु इस रीति से धीरे-धीरे रेचन करे कि जिसमें किसी तरह का शरीर को ज़ोर न पड़े।

फिर दक्षिण स्वर से धीरे-धीरे पूरक करे—अर्थात् प्राणवायु को खींचे। फिर दोनों नासिका के छिद्रों को बन्द करके यथाशक्ति कुम्भक करे।

बाद चन्द्र [बाम] स्वर से बन्धपूर्वक धीरे-धीरे रेचन करे। फिर जिस नाड़ी से रेचन करे, उसी से ही पूरक करे। फिर यथाशक्ति कुम्भक करके बन्ध-पूर्वक दूसरी नाड़ी से रेचक करे। जब तक पसीना और कम्प हो तब तक पूरक और रेचक करता ही रहे। परन्तु जिस नाड़ी से पूरक करे, उससे रेचक न करे, जिससे रेचक करे, उससे पूरक करले तो कोई हानि नही है। इस रेचक को जल्दी-जल्दी न करे—अर्थात् एक साथ न छोड़े; क्योंकि जोर से रेचक करने से बल की हानि होती है।

इस रीति से जो अभ्यास करता है, उसकी नाड़ी तीन या पांच मास में शुद्ध हो जाती है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

८५ समय और पांचतत्त्व

समय परिवर्तनशील है। अनन्तकाल से अनवरत घूम रहा है। न इसकी गति को ही कभी रोका जा सकता है यह स्वतः ही चल रहा है। यह तो हुई बाह्य समय की बात। इस प्रकार अभ्यंतर स्तर में पंच तत्त्व के रूप में यही समय हम लोगों को दूसरे सूत्र में घूमा रहा है। यही हमारे नित्य नैमित्तिक आदि सभी कार्यों मैं लाभ-हानि, जय-पराजय, शुभ-अशुभ कराने में निश्चित कारण बना हुआ है। इसका प्रायः किसी को बोध नहीं है।

गुप्त रूपसे घूमते हुए ये पांच तत्त्व एक के बाद दूसरे क्रमानुसार परिवर्तित होते मालुम होते हैं। जैसे ऋतु के परिवर्तन का बोध हो जाता है, उसी तरह तत्त्व के आगमन की भी जानकारी हो जाती है।

प्रमाण के लिये देखिये—हम सब मनुष्य सब दिन एक ही है; परन्तु हमारे अन्तःकरण के भाव इतनी जल्दी-जल्दी क्यों बदलते हैं ? कभी शुभ कभी अशुभ; कभी क्रुर कभी सदय; कभो उद्दंड कभी विनम्र; कभी शांत तो कभी अशांत; कभी प्रसन्न तो कभी विषण्ण। यह जो बार-बार, शीघ्र-शीघ्र मनोभाव का परिवर्तन होता है; यह तत्त्व के प्रभाव का ही परिणाम है। अभिप्राय यह है कि जिस समय जिस तत्त्व का शरीर में उदय होता है उसी तत्त्व के प्रभावानुसार भाव, विचार होता है।

उदाहरण के लिये—मैंने आप से अपने किसी कार्य के लिये प्रार्थना की; आपने उत्तर में अस्वीकार कर दिया। फिर मैंने दूसरी बार आप से कहा तो उस समय आपने कहा—"अच्छा कर दूंगा। ऐसी बात व्यवहार में बहुधा देखने में आती है। लोग सलाह देते हैं कि अभी उनकी चित्तवृत्ति ठीक नहीं है; कुछ मत कहो। जब देखो चित्तवृत्ति ठीक है, तब कहना; तुम्हारा कहना सफल होगा। यह बात व्यवहार में स्वतः स्पष्ट है। तात्पर्य यह है कि शुभ तत्त्व में जो कहा जाता है वह काम हो जाता है। अशुभ तत्त्व के समय कही गई बात निष्फल हो जाती है। तत्त्व का यह सिद्धान्त ध्रुव सत्य है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इसको प्रातःकाल सूर्य उदय होने के समव (बादलों में लाली मालूम लगे तब) से प्रारम्भ करे, और तीन घड़ी तक करे—

और मध्याह्न को भी तीन घड़ी तक करे। इसी प्रकार सायंकाल में तीन घड़ी करे। इन तीनों काल में अस्सी-अस्सी बार कुम्भक, रेचक, पूरक करे। तीनों काल के ये दो सौ चालीस प्राणायाम हुए।

विचार करके देखिये—मनुष्य सुख में हो या दुःख में, क्रोध में हो या क्षमा में, हंसी में हो या रुदन मैं, खुशी में हो या गमी मैं—एक ही स्थिति मैं बहुत समय तक कोई भी नही रह सकता। चाहे कोई शस्त्र लेकर घात करने को ही क्यों न आवे, यदि किसी तरह वह समय टाल दिया जावे तो टल जाता है। अतएव मनुष्य की सफलता-असफलना में हेतु तत्त्वों की देन है।

तत्त्व क्या है इस पर योगशास्त्र के वचन हैं—

१—पृथ्वी, २—जल, ३—अग्नि, ४—वायु, ५—आकाश। ये पांच तत्त्व हैं। इन्हें परम तत्त्व कहते हैं। उपर्युक्त पांच तत्त्वों का एक के बाद दूसरे का आना जाना निरबाध निर्विच्छिन्न रूप में चलता रहता है। एक निमेष भी इनकी गति में अवरोध नहीं होता।

इन पांच तत्त्वों में पृथ्वी और जल तत्त्व शुभ हैं। शेष तीन तत्त्व—अग्नि, वायु और आकाश तत्त्व अशुभ फल दाता हैं। इस स्वरोदय विज्ञान मैं इन तत्त्वों का विस्तार से दिग्दर्शन कराया गया है।

अयोग्य काल में किये हुए विवाह आदि तथा दीक्षा प्रतिष्ठा आदि कार्य उत्तर काल में उल्टे अशुभ फल को देने वाले दृष्टिपथ में आते हैं। अयोग्य काल में किया हुआ प्रयाण व्यापार आदि के विपरीत परिणाम देखे जाते हैं। इन्हें दूर करने के लिये दैवी सामग्री के सिवाय दूसरी कोई भी सामग्री समर्थ नहीं है; मात्र इतना ही नहीं परन्तु परवशता के कारण होने वाला जन्म, व्याधि और मरणादि भी अयोग्य काल में हुए हों वे भी शान्ति पुष्टि आदि दैवी शक्ति से दूर होते हैं। ऐसे अनेक हेतुओं को लेकर प्रत्येक शुभ महुर्त की आवश्यकता है। उसका प्रतिपादन करने वाला अष्टांग निमित्त शास्त्र है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट प्राणायाम

जघन्य प्राणायाम में पसीना होता है और मध्यस में कंप होता है तथा उत्कृष्ट प्राणायाग में ब्रह्मरन्ध्र होता है। ब्यालीस विपल से कम कुम्भक रहे तो जधन्य प्राणायाम होता है। चौरासी विपल[८६] से कुछ अधिक कुम्भक रहे तो मध्यम प्राणायाम होता है। और बन्धपूर्वक १२५ विपल कुम्भक रहे तो उसको उत्कृष्ट प्राणायाम काल कहते हैं।

जब प्राणायाम स्थिर हो जाता है, तब प्राण ब्रह्मरन्ध्र को प्राप्त होता है। और ब्रह्मरन्ध्र में गया हुआ प्राण जब पच्चीस पल तक स्थित रहे उसको प्रत्याहार कहते हैं। ऐसे ही धारणा भी है। और जब छः घड़ी तक स्थिर रहे, तब ध्यान होता है। और बारह दिन तक स्थिर रहे, तब ध्यान होता है।

प्राणायाम के अभ्यास से जो पसीना हो, उसे शरीर पर तैल की तरह मालिश करे। उस मालिश के होने से शरीर में दृढ़ता—अर्थात् पराक्रम बढ़ता है, शरीर नरम होता है और जड़ता दूर होती है।

जो मनुष्य इस प्राणायाम को करे, वह पहले ऊपर लिखे हुए जो तीन बन्ध हैं उनका अभ्यास करे; क्योंकि जो बिना बन्ध के अभ्यास करेगा, उसके बल वीर्य की हानि होगी, और श्वास-कासादिक की बीमारी भी। इसलिये बन्ध-पूर्वक प्राणायाम करे।

बन्ध लगाने की रीति

बन्ध लगाने की रीति इस प्रकार है कि जिस समय में पूरक करे, उस समय से ही मूलबन्ध को लगावे। अथवा पूरक के अन्त और कुम्भक के आदि में अवश्य करके मूलबन्ध को लगावे और अर्द्धकुम्भक में जालन्धर

८६–६ श्वासोश्वास	=	१ पल	=	२४ सेकंड
६० पल	=	१ घड़ी	=	२४ मिनिट
२॥ घड़ी	=	६० मिनिट	=	१ घण्टा
६० घड़ी	=	एक दिन रात	=	२४ घण्टे
६० विपल	=	एक पल	=	२४ मिनिट
१ महूर्त	=	२ घड़ी	=	४८ मिनिट

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

बन्ध को लगावे। कूम्भक का अन्त और रेचक की आदि में उड़ियान बन्ध लगावे।

जो इन बन्धों में से कोई एक भी बन्ध को न लगावेगा, उसकी अनेक तरह बीमारी की उत्पत्ति होगी। परन्तु हमारा अनुभव ऐसा भी है कि यदि जालन्धर बन्ध न लगावे तो उसमें कोई हानि न होगी, परन्तु मूलबन्ध और उड़ियान बन्ध यत्न पूर्वक अवश्य ही लगावे।

इस प्राणायाम के लिये हमने तीन काल लिखे हैं। परन्तु रात के बारह बजे का चौथा काल भी लिया जाता है। इसलिये चारों काल की संख्या के तीन सौ बीस प्राणायाम होते हैं।

यहां पर हम इतना बता देना आवश्यक समझते हैं कि पूरक कुछ शीघ्रता से भी करेगा तो उसको किसी प्रकार की हानि न होगी। परन्तु रेचक करने में यदि शीघ्रता करेगा तो वायु रोमों द्वारा निकलकर कुष्ठादि रोगों को उत्पन्न करेगी। जैसे बन्धा हुआ हाथी रस्सी आदि टुटने से अथवा शृखला आदि खोलने से भागता है, और अनेक तरह के उपद्रव करता है। वैसे ही कुंभक की रुकी हुई वायु शीघ्रता से रेचक करने से उपद्रव करती है। इसलिये प्राणायाम करने वाले को यत्न-पूर्वक धीरज के साथ सब काम करना चाहिये।

एक बात और भी बताते हैं कि पूरक में दस अक्षरों का जाप है, कुम्भक में सोलह अक्षरों का जाप है और रेचक में भी दस अक्षरों का जाप है। जाप में कोई तो 'प्रणव' (ओंकार) का स्मरण करता है और कोई' 'राम" का, कोई "सोऽहं" का, और कोई "अहंम्" का। इस रीति से अपनी-अपनी उपासना वाले अपने-अपने इष्ट अक्षर का जाप बताते हैं, लोगों को अपने जाल में फंसाते हैं, परन्तु असल भेद नहीं पाते हैं। इसलिये हमारा यह कथन है कि यदि सद्गुरु मिल जाय तो वह कृपा करके आप ही सर्व भेद जिज्ञासु को बतला देगा। कदाचित्त सद्गुरु का संयोग न मिले, और ज़िज्ञासा हो तो प्रणव (ॐ) का ध्यान करे, सर्व के जाल को परिहरे, क्योंकि इस प्रणव अक्षर में उसके शब्दार्थ जानने वाले सब मतावलम्बी अपने-अपने

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इष्ट को मिलाते हैं, और उसकी महिमा सब कोई गाते हैं, परन्तु गाने वाले पन्थवाले इसको उड़ाते हैं, अपने मनःकल्पित शब्द की रटना लगाते हैं, इस ही लिये वह अपना गुरु आदि से जुदा पन्थ चलाते हैं।

इसलिये प्रणव का ध्यान करना ठीक है। इस प्राणायाम के सिद्ध होने से शरीर नीरोग हो जाता है और शरीर नीरोग होने से बुद्धि आदि की प्रकृति स्वच्छ अर्थात् निर्मल रहती है। और प्राणायाम करने वाले की चेष्टा पर अन्य पुरुषों को ओजस्विता प्रतीत होती है। जिसका प्राणायाम अच्छी तरह हो गया है' और चल रहा है, उस मनुष्य को दस्तादि इस प्रकार होगा कि जैसे बन्दूक से गोली निकलती है लेपादि न लगेगा और जिसका प्राणायाम बिगड़े अथवा कमी होय तो उसके पेट में से दस्त में बकरी की सी मेंगनी जाती है, और दुर्गन्धि भी हो जाती है। इसलिये जो प्राणायाम की रीति लिखी है, उस रीति से साधन करे तो यथावत् फल मिलेगा, योगाभ्यास में चित्त चलेगा। इस रीति से प्राणायाम का किंचित भेद दिखाया, जिन्होंने इसका अभ्यास किया उन्होंने ही इसका फल पाया और इसकी साधना से अध्यात्म पद पाया है।

अब हम इस प्रणायाम के अनन्तर जो कहेंगे, वह सब ध्यान और समाधि के मतलब की बात होगी। यहां तक ध्यान और समाधि के पूर्व-कारण बताये गये, क्योंकि आसनों से लेकर प्राणाययाम-पर्यन्त जी बातें लिख आये हैं वे आत्म-धर्म नहीं, किन्तु आत्मधर्म-साधन के पूर्व-कारण हैं।

इन बातों को जो कोई अज्ञानी धर्म जानकर ग्रहण करेगा अथवा ऊपर लिखी बातों को धर्म जानेगा, उस पुरुष को आत्म स्वरूप न मिलेगा, जन्म-मरण में ही वह पिलेगा, कर्म-बन्धन से न टलेगा। अब चक्रों का स्वरूप बतलाते है।

चक्रों का नाम

१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूरक, ४ अनहद, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञा, ७ सहस्रदल।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१ मूलाधार चक्र का वर्णन

इसका प्रकार यह है, कि गुदा से दो अंगुल ऊपर मूलाधार चक्र है, इसको गणेश चक्र भी कहते हैं। इसकी चार पंखड़ियां हैं। इस चक्र का रंग लाल है—जैसे सूर्य के उदय वा अस्त के समय बादल लाल होता है, इस तरह का इसका रंग है और उन चारों पंखड़ियों के ऊपर ये चार अक्षर हैं;—वं, शं, षं, सं। ये चारों पंखड़ियों में इस कदर दमकते हैं कि जेसे अंगूठी आदि में नगीना लगने से वह दमकता है।

इस मूलाधार के पास में कन्द है। वह कन्द चार अंगुल विस्तार वाला है। सो मूलाधार से दो अंगुल ऊंचा, और लिंग चक्र से एक अंगुल नीचा और चार अंगुल विस्तार वाला है, तथा अण्डे के समान गोल आकार वाला है, एवं गुदा ऊपर मेड़ें अर्थात् कन्द के पास बीच में योनि है उसका त्रिकोण आकार है। यह पश्चिम-मुखी है—अर्थात् पीछे को मुख है। बंकनाल अथवा उर्द्धव गमन उसी में होकर है।

कुण्डलिनी नाड़ी

उसी स्थान में सर्वदा कुण्डिलिनी की स्थिति है। यह कुण्डलिनी, सब नाड़ियों को घेरकर साढ़े तीन आंटे (फेर) देकर कुटिल आकृति से अपने मुख में पूंछ को दबाकर सुषुम्ना विवर में स्थित है और सर्प के सदृश है तथा बालक के केश से भी सूक्ष्म और तप्त किये हुए सुवर्ण के सदृश देदीप्यमान है।

और लाल रंग का काम-बीज उसके सिर पर घूमता है। जिस स्थान में कुण्डली स्थित है, उसी स्थान में काम बीज के साथ सुषुम्ना नाड़ी भी स्थित है और शरीर में भ्रमण करती है। कभी ऊर्ध्वगामिनी, कभी अधोगामिनी और कभी जल में प्रवेश करने वाली है।

इसको जगाने की रीति, और कुछ नाड़ियों का वर्णन करेंगे। इस जगह प्रसंगवश किंचित् चिन्ह बताया है, इस देदीप्यमान काम-बीज सहित मूलाधार चक्र का ध्यान करने वाले पुरुष को बारह महीने के भीतर जो शास्त्र कभी श्रवण नहीं किये हैं उन शास्त्रों के रहस्य-सहित भावार्थ समझने की शक्ति

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि जो जिस भाषा में अक्षर बांचना जानेगा, उस भाषा का ग्रन्थ कैसा ही क्लिष्ट (कठिन) क्यों न हो उसके बांचने की और समझनेकी शक्ति हो जायगी। कदाचित् अक्षर न पढ़ सके तो दूसरे से श्रवण करके कर्ता के अभिप्राय को ठीक-ठीक समझ सकेगा और कुछ दिन पर्यन्त निरन्तर इसका ध्यान करे तो उसके सामने सरस्वती नृत्य करती है और कवितादि निर्द्वन्द्वता से करता है।

२ स्वाधिष्ठान चक्र का वर्णन

इस स्वाधिष्ठान चक्र की लिंग के मूल में छः पांखड़ी हैं। उनके ऊपर ये छः अक्षर हैं;—बं, भं, मं, यं, रं, लं। इन्हीं अक्षरों से पांखड़ी शोभायमान है, और इसका रक्त वर्ण है जो कुछ पीला सा झलकता है। शरत्पूर्णिमा के सर्वकला-पूर्ण चन्द्रमा की तरह सफेद वर्ण का चमकीला (बं) बीज सहित जो कोई इस चक्र का ध्यान करे, उसको कविता करने की शक्ति होगी, और सुषुम्ना नाड़ी चलाने की शक्ति को प्राप्त होकर नाद को श्रवण करता हुआ आनन्द को प्राप्त होगा।

३ मणिपूरक चक्र का वर्णन

यह पद्म नाभि की जड़ में है, सुवर्ण के सदृश दस पांखड़ी करके संयुक्त और दसों पांखड़ियों के ऊपर "डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं, ये दस अक्षर हैं। इन अक्षरों से संयुक्त, शोभायमान, देखने वाले को आनन्द देने वाला, सूर्य के समान वह्नि बीज है, और उसके आगे स्वस्तिक (साथिया) है, इस अग्नि बीज का सूर्य के समान प्रकाश है। इस मणिपूरक चक्र का बीज-सहित जो कोई पुरुष ध्यान करता है, उसको सुवर्ण आदि सिद्धि करने की शक्ति हो जाती हैं, और देवताओं के दर्शन होना सुलभ हो जाता है।

४ हृदय कमल-अनहद चक्र का वर्णन

यह अनहद नामक कमल बारह पाखंड़ी का है, और बारह अक्षर करके संयुक्त है। वे अक्षर ये हैं—कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं। इस पद्म का लाल वर्ण है, और इसका वायु बीज है। इसकी पांखड़ी (कली) के बीच में बिजली के समान चमकती हुई त्रिकोणी एक शक्ति है,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उसके बीच में सुवर्ण के समान एक कल्याण रूप लिंग-अर्थात् स्वस्वरूप अनेक अक्षरों करके संयुक्त त्रैलोक्य स्वामी, निर्वाणी, निरंजन, अनाथों का नाथ, साक्षात् बिराजमान दर्शन देता है। इसके मस्तक के ऊपर छिदी हुई मणि चमकती है, उसको साक्षात् उस कल्याण-रूप मूर्ति का दर्शन होता है और नाना प्रकार की सिद्धियां और ज्ञानादि उत्पन्न होते हैं।

सो इसकी पूर्ण विधि तो नाड़ियों का वर्णन और शक्ति-संचार का वर्णन करने के वाद मानसिक पूजन में कहेंगे। परन्तु इस जगह तो उस कल्याण रूप-मूर्ति देखने के वास्ते परमत' और स्वमत वाले बहुत कुछ कह गये हैं; जिसमें स्वमत वालों का किंचित हाल सुनाते हैं। श्री आनन्दघनजी महाराज अपनी 'बहत्तरी' में कहते हैं कि;—

"आशा मारी आसन घर घट में, अजपा जाप जपावे।
आनन्दघन चेतनमय मूरति, नाथ निरंजन पावे ॥१॥"

ज्ञानसारजी में भी वे कहते हैं;—

"हृदय कमल किरण के भीतर, आत्म रूप प्रकाशे।
वाको छोड़ दूरतर खोजे, अन्धा जगत् खुलाशे ॥१॥

इस वास्ते जो कोई आत्मार्थी होगा, वह ही इन बातों को जानेगा और करेगा।

५ विशुद्ध चक्र का वर्णन

इस विशुद्ध चक्र का स्थान कण्ठ में है, और इस पद्म की सोलह पांखड़ी (कली) हैं, तथा इन सोलह पांखड़ियों पर सोलह अक्षर हैं वे ये हैं;—

अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः। इन अक्षरों करके संयुक्त यह चक्र स्वर्ण के समान चमकता है। परन्तु पद्म का रंग धूंए का सा है, और इसका आकाश बीज है। जो कोई पुरुष बीज-सहित विशुद्ध चक्र का ध्यान करेगा, वह पण्डित और योगियों में शिरोमणि और सर्व शास्त्रों के रहस्य को जानने वाला होगा, एवं अनेक तरह की लब्धियां हो जायेंगी, तथा मन की चंचलता भी मिट जायगी।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

६ आज्ञा चक्र का वर्णन

यह आज्ञा चक्र नामक पद्म भृकुटि स्थान में है, और इस पद्म की दो पांखड़ी (कली) हैं और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल शोभायमान है। उन दोनों पांखड़ियों पर, 'हं क्षं' ये दो अक्षर हैं।

इस पद्म का श्वेत वर्ण है, और शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के सदृश देदीप्यमान, परम तेजस्वी' चन्द्रबीज-अर्थात् (ठं) बिराजमान है। इस बीज के साथ उक्त पद्म का जो कोई ध्यान करे वह जो इच्छा करे वही उसको प्राप्त होता है और जो कोई इस पद्म का निरन्तर ध्यान करे उसको पहले तो दीप का सा धूम्राकार (धुधला) सा प्रकाश मालूम होता है; फिर सूर्य का सा प्रकाश हो जाता है। पश्चात् परमानन्द-मय होकर मन की चंचलता मिटाकर आत्म-समाधि में प्राप्त होता है।

इन छः चक्रों का वर्णन तो बहुत पुस्तकों में है, परन्तु सातवें सहस्र दल कमल का गुरु गमता से प्राप्त वर्णन दिखाते हैं।

७—सहस्र-दल कमल चक्र का वर्णन

यह सहस्र-दल कमल नाम का पद्म कपाल में है और इसकी हज़ार पांखड़ी (कली) हैं। कितने ही मनुष्य इसको कोरी कल्पना ही कहते हैं। परन्तु गुरुगम से इसका यथावत् हाल मालूम होता है और जो कुल चक्रों को भेदकर इसमें आकर स्थिति करे वह जड़ समाधि का भेद और जो इसका ध्यान करे वह आज्ञाचक्र, और अनहद चक्र इन दोनों को छोड़कर बाकी चक्रों की प्राप्ति कर सकता है। परन्तु यह अनुमान सिद्धि है। मुख्यता करके इस पद्म से जड़ समाधि वालों का प्रयोजन है।

इस रीति से षट् चक्र का ध्यान लिखा और सातवें का प्रयोजन बताया है, अब नाड़ियों का किंचित् वर्णन करते हैं।

नाड़ियों का वर्णन

नाडियों का विस्तार तो तन्दूलबयालिया सूत्र में वर्णित है और अन्य मतावलम्बी कुल शरीर में ७२००० हज़ार नाड़ी मानते हैं, और वे अहोरात्र के इक्कीस हज़ार छः सौ (२१६००) श्वास-प्रश्वास मानते हैं। परन्तु यह

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मानना ठीक नहीं हो सकता। सर्वज्ञ मतावलम्बी 'तन्दूलबयालिया सूत्र' में करोड़ों नाड़ियां शरीर में कही है। परन्तु साढ़े तीन करोड़ रोमावली सर्व मतावलम्बी अंगीकार करते हैं, सो यह सब सूक्ष्म नाड़ियों के भेद हैं।

और वज्रऋषभनाराच आदि जो संघयण गिनाएं हैं सो नाड़ियों के बंध हैं। इसको यदि 'तन्दूलवयालीया' सूत्र के अनुसार लिखें तो एक ग्रंथ पृथक् ही बन जाए। इसलिए जो मुख्य बातें हैं उन्हीं को गिनाते हैं कि छांटते-छांटते अन्त में मुख्य चौबीस ही नाड़ियां हैं। नाभी के पास में जो कन्द है, उसमें से दस नाड़ियां ऊपर को गई हैं। वे जड़ में से दो-दो मिली हुई निकली हैं। सो उसमें भी चार नाड़ी जुड़ी हुई आगे से फटकर और एक बिलकुल अलग हैं। ये पांच नाड़ियां डाबी तरफ से जीमणी तरफ और इसी तरह दूसरी पांच नाड़ियां जीमनी तरफ से डाबी तरफ ऊपर को गई हैं। इस माफिक दस नाड़ियां नीचे गई हैं। और दो-दो नाड़ी दोनों तरफ तिरछी (तिर्यक्) गई हैं। इस रीति से चौबीस नाड़ियों का वर्णन किया।

इसमें भी दस नाड़ी मुख्य हैं। कितने ही मतावलम्बी इनको दस वायु भी बताते हैं। प्राण अपानादि दश प्राण पृथक् हैं और दश नाड़ियां मुख्यता करके दशों द्वार में रहती हैं।

और जिससे ये नाड़ियां बल खींचती हैं, उसी को ऊपर लिखी दस वायु ठहराते हैं। इन दस नाड़ियों के निर्बल होने से इन्द्रियादि भी निर्बल हो जाती हैं, क्योंकि यह अनुभव की बात है कि जन्म के बाद अन्धा, काना, बहरा हो जाना या नासिका का ग्रंध ग्रहण शक्ति क न रहना, इसी प्रकार जिह्वा का स्वाद कम हो जाना, यह सब नाड़ियों का खेल है।

इस प्रकार नाड़ियों के अनेक विचार हैं। परन्तु हमको तो इस जगह समाधि-प्रभृति योग का वर्णन करना है। इसलिए जिन नाड़ियों से मुख्य प्रयोजन है उन्हीं का वर्णन करते हैं।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, शंखिनी, ये दस मुख्य नाड़ियों के नाम हैं और भी दो चार नाड़ियां योगियों के देखने की हैं वह भी इनके बीच में कहेंगे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

नाड़ियों की उत्पत्ति

यह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाम वाली नाड़ियां तो आज्ञा-चक्र से उत्पन्न हुई हैं और सहस्र दल कमल के पास में होकर मेरु के बराबर में होती हुई पश्चिम मुख से निकलकर गुह्य स्थान में होकर कन्द को भेद कर नाभि में जो कंद है उसमें मिल गई हैं। फिर आगे को नासा द्वारा अन्य चक्रों को भेदन करती हुई निकलती हैं।

और गुह्यद्वार से ऊपर जो मूलाधार चक्र है उसमें व्याप्त सुषुम्ना नाड़ी के बीच में लिंग देश से निकलकर सिर तक पहुंची हुई वज्र-नाम की एक नाड़ी है वह देदीप्यमान चमकने वाली है। यह नाड़ी योगीश्वरों को ध्यान में प्रतीत होती है, जो मकड़ी के तार से भी सूक्ष्म है और सुषुम्ना नाड़ी उक्त छओं पद्मों की नाल को भेद कर गई है। वैसे ही चित्रनाड़ी भी उसी छिद्र से ऊपर को चली गई है और इसी के बीच में एक ब्रह्मनाड़ी बिजली के समान देदीप्यमान है और वह नाड़ी सुषुम्ना से भी मोहनीय स्वरूप वाली है। जिनको शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ है और जिनका आचरण शुद्ध है उनके देखने में यह नाड़ी ठीक-ठीक आती है, न कि प्रत्येक मनुष्य इसको देख सकता है।

कुण्डली चलाने का उपाय

इस कुण्डली के, कुण्डलिनी, नागन, बालरण्डा, शक्ति आदि कई नाम हैं। यह कुण्डलिनी नामक नाड़ी सब नाड़ियों के ऊपर स्थित होकर मणि-पूरक चक्र कर्णिका में आवृत करके ब्रह्मरन्ध्र के द्वार को रोक कर सर्वदा रहती है और सुषुम्ना को नहीं जाने देती है। इसलिए प्राण-वायु और अपान-वायु को धोंकने वाला—अर्थात् उत्तेजित् करने वाला जो पुरुष है वह उस प्राण और अपान वायु की एकता से उत्तेजित हुई जो अग्नि उससे जागृत होकर मन और प्राणवायु सहित सुषुम्ना को सूची तंतु न्याय से ऊपर ले जाता है। जैसे सूई में तंतु (धागा) पोया हुआ हो तो वह सुई कपड़े के अनेक सूतों को भेदकर तंतु-सहित ऊपर को निकल जाती है वैसे ही वह करने वाला पुरुष मन और प्राण वायु के साथ सुषुम्ना नाड़ी को ऊपर ले

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जाकर आनन्द को प्राप्त होता है।

अथवा सोते हुए सर्प के समान कुण्डली नाड़ी है। उसको जागृत करने के वास्ते पहले अपानवायु और प्राणवायु से विधिपूर्वक बीच की अग्नि के स्वरूप को तेज करे। अग्नि की तेजी से उसे जगाकर जैसे अति वेग से चलता हुआ सर्प समान गति को छोड़कर कुटिल गति से जाता है, वैसे ही करने वाला ज्योतिमयस्वरूप होकर सुषुम्ना मार्ग से लय हो जाता है।

जैसे ताले में कुंजी लगाने से ताला खुलकर कपाट (किवाड़) खुल जाते हैं वैसे ही कुण्डली करके सुषुम्ना रूप कुंजी (ताली) से आत्म-स्वरूप कपाट खुल जाता है।

दूसरी रीति से शक्ति-चालनादि का वर्णन

दूसरा प्रकार यह है कि वज्र-आसन लगाकर हाथों से पगों (पैरों) की एड़ी पकड़ कर कंद स्थान को दृढ़ता से पीड़न करे और उस वक्त में वज्रासन से ही धोंकनी-कुम्भक करके वायु को प्रचलित करे, उस वायु के प्रचलित होने से अग्नि प्रज्वलित होती है, उस प्रज्वलित अग्नि की गर्मी से वह बाल-रंडा मुख फाड़ देती है। उस समय भी सुषुम्ना करके योगश्वर अपने स्वरूप का आनन्द पाता है।

अथवा, नाभि स्थान में सूर्य नाड़ी को आकुंचन कर कुंडली को चलावे, या चार घड़ी पर्यन्त निर्भय होकर शक्ति चालन करे तो कुंडली कुछ सुषुम्ना में ऊपर को उठे तब प्राणवायु आप ही सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है।

इस शक्ति के चलाने में नौली-चक्र जौर भस्त्रिका, कुम्भक और महामुद्रा ये तीनों बहुत उपयोगी है। जो पुरुष इनका विशेष रूप से अभ्यास करेगा वही इस बालरंडा को जगाकर सुषुम्ना के संग होकर अपने आत्मस्वरूप आनन्द को प्राप्त करेगा। परन्तु ये सब बातें वायु के साधन से होती हैं। इसलिए वायु के नाम दिखाते हैं :—१ प्राण २ अपान ३ समान ४ उदान ५ व्यान ६ नाग ७ कूर्म ८ कृकल ९ देवदत्त १० धनंजय। ये दस वायु सर्व शरीर में रहती हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

वायुश्रों का स्थान

प्राणवायु हृदय में रहती है और श्वास-प्रश्वास को बाहर-भीतर निकालती है और जठराग्नि से अन्न पानादि को परिपक्व करती है। अपानवायु मूलाधार से मल-मूत्र को बाहर निकालती है। समान वायु नाभि में रहकर सब नाड़ियों को यथास्थान रखती है। उदान वायु कण्ठ में रहकर शरीर की वृद्धि करती है। व्यानवायु सर्व शरीर में व्याप्त है। वह लेना छोड़ना (आदान-उत्सर्ग धर्म) करती है। नागवायु उद्गार अर्थात् डकार कराती है कूर्मवायु नेत्रों के पलकों को ऊपर-नीचे लाती है। कृकल वायु नासिका से छींक कराती है। देवदत्त वायु जंभाई (जृम्भा) कराती हे। धनंजय सर्वशरीर में रहती है। इनको दश प्राण भी कहते हैं। परन्तु मुख्यता जो कुछ है वह श्वास-प्रश्वास की है। जो कुछ काम जगत में हो रहा है वह सब इसकी कृपा है।

इस आर्यावर्त से कितने ही मनुष्यों ने योगाभ्यास का भेद पाया है। अरबस्थान वाले मुसलमागों ने यहां से योगाभ्यास को पाकर इसका नाम अपने संकेत में (हवसेदम) रख लिया है ; और अंग्रेज लोग 'मैस्मेरिज़म' कहते हैं। ये सब खेल मन-वायु के साथ होने से यथावत् सिद्ध होता है। क्योंकि मन-वायु की एकता होगी, तब चित्त को एकाग्र कर जिस काम में लगावेगा, उस कार्य में अवश्य प्रवृत्त होगा। क्योंकि चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है ऐसा पतंजलिने योग-दर्शन में लिखा है ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।।२।।'' इसका अर्थ यह है कि 'युज्यतेऽसौ योगः' जो युक्त किया जाय उसको योग कहते हैं। 'चित्तवृत्तिनिरोधः, चित्तस्य वृत्तयः चित्तवृत्तयः चित्तवृत्तीनां निरोध इति चित्तवृत्तिनिरोधः' चित्त की वृत्तियों को रोकने को—चित्त की वृत्तियों के निरोध को—योग कहते हैं।

इसलिए इस जगह मन का ठहराना अवश्य ही है। जब तक मन की चंचलता न मिटेगी तब तक योगाभ्यास या और कार्य नहीं हो सकता है।

इसलिए प्रसंगवश मन ठहराने का दृष्टान्त दिखाते हैं, जिसका बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि से विचार करें। वह दृष्टान्त इस तरह है—

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मन ठहराने पर एक दृष्टान्त

एक ब्राह्मण अन्न मांग कर खाता था। उसके पास में और कुछ नहीं था। वह ब्राह्मण प्रतिदिन जंगल में दिशा (पाखाना) फिरने जाता था। वहां से उठकर एक आक के वृक्ष के नीचे आकर जो कुछ पानी हाथ धोने से बचता वह आक के पेड़ के ऊपर डाल देता और उस जगह लोटा शुद्धकर आप हाथ साफ कर चला जाता था। इस रीति से पानी डालते-डालते चिर-काल हो गया। उस ब्राह्मण के एक कन्या थी। वह विवाह के योग्य हुई थी, परन्तु उस ब्राह्मण के पास इतना धन नहीं था कि अपनी पुत्री का विवाह कर सकता।

एक दिन उस कन्या को बड़ी हुई देखकर वह चिन्तित होता हुआ दिशा फिरने के लिए गया और उस स्थान पर विचारने लगा कि हाय ! मेरी बेटी इतनी बड़ी हो गई और मेरे पास एक पैसा नहीं, इसका विवाह किस प्रकार करूंगा ? यह विचार करते-करते अपनी गुदा को धोने लगा तो धोते-धोते जितना पानी लोटे में था वह सब गिरा दिया और वहां से उठकर जिस आक के वृक्ष के समीप सदा लोटा मांजता था, वहीं मांजने लगा। परन्तु जल न बचने से उस आक पर पानी नहीं डाला। तब उस आक के वृक्ष पर रहने वाला एक भूत बोला, अरे विप्र ! मुझको सदा जल पिलाता था, आज क्यों न पिलाया ? उस समय ब्राह्मण बोला कि अरे भाई तू कौन है ? जब उसने जवाब दिया कि मैं इस जगह का रहने वाला भूत हूं। तब ब्राह्मण बोला, मैंने तुझको इतने दिन पानी पिलाया, उसका फल आज तक कुछ न पाया। तब वह भूत कहने लगा, तुझे क्या चाहिए ? उस समय वह ब्राह्मण कहने लगा कि मेरी बेटी विवाह के योग्य हो गई है और मेरे पास कोई द्रव्य नहीं है, क्योंकि मैं भिक्षा मांगकर खाता हूं और भिक्षा भी उतनी ही लाता हूं, कि जितनी से मेरा पेट भरे, इसलिए मेरे पास धन एकत्र नहीं हुआ और बिना धन के कन्या का विवाह कैसे कर सकता हूं ? इस चिन्ता में तुझको जल न मिला।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इस वचन को सुनकर भूत कहने लगा कि हे विप्र! तू किसी प्रकार सोच न कर। मैं तेरे वास्ते पांच हज़ार रुपये का उपाय करता हूं, बन्दर रूप धरता हूं, तेरे साथ चलता हूं, परन्तु तू अपने मुख से मेरी कीमत न कहना। जो कोई तुझसे पूछे तो कहना कि यह बन्दर अपनी कीमत कह देगा। इतना कहकर वह भूत बन्दर बन गया, और ब्राह्मण के साथ बातें करता हुआ नगर में पहुंचा तब वह ब्राह्मण जहां सेठ साहूकारों की दुकानें थीं, वहां उसको ले गया।

अब जो कोई साहूकार उस बन्दर की बातें सुनता वही उसको लेने के लिए तैयार होने लगता। जब यह बन्दर अपनी बात को प्रगट करता, तब उसे सुनकर सब चुप हो जाते और बन्दर को मोल न ले सके थे।

इस रीति से वह ब्राह्मण घूमता-घूमता एक बड़े सेठ के पास पहुंचा, जो कि उस नगरी में सबसे बड़ा था और जिसकी देश देशान्तरों में जगह-जगह पर दुकानें थीं। उस जगह वह बन्दर नाना प्रकार की अच्छी-अच्छी बातें करने लगा। वह साहूकार उस बन्दर की बातें सुनकर खुश हुआ और ब्राह्मण से पूछा कि तुम इसको बेचते हो? तब ब्राह्मण बोला, कि हां, बेचता हूं। तब सेठ ने कहा कि इसकी कीमत क्या है? तब ब्राह्मण ने जवाब दिया कि, कीमत इस बन्दर ही से पूछ लो। तब सेठ ने बंदर को पूछा कि हे बंदर! तेरी क्या कीमत है? तब बंदर बोला कि सेठजी पहले मेरे से एक बात की प्रतिज्ञा कर लो तो पीछे मैं अपनी कीमत कहूंगा। तब सेठ बोला कि तू किस बात की प्रतिज्ञा कराना चाहता है? तब वह बंदर बोला मैं बेकाम नहीं बैठूंगा, निरन्तर काम करता रहूंगा, यदि तुम मुझको काम न बताओगे तो मैं तुम्हारा भक्षण कर लूंगा। पहले इस बात की प्रतिज्ञा करो तो मैं अपनी कीमत आपको बताऊंगा। इस बात को सुनकर सेठ ने विचार किया कि मेरे यहां सैंकड़ों हज़ारों आदमी काम करते हैं, तो यह अकेला बिचारा बंदर कितना कार्य करेगा, इसको बैठने को कब फुर्सत मिलेगी? इतना विचार करके हंसा और कहने लगा, कि हे बंदर! मैंने तेरी बात स्वीकार की, अब अपनी कीमत कह दे। तब वह बंदर कहने

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लगा कि पांच हज़ार रुपया इस ब्राह्मण को दे दो, मैं तुम्हारा हो चुका । उसी समय सेठ ने उस ब्राह्मण को पांच हज़ार रुपया देकर बिदा किया ।

जब सेठ उस बंदर से काम कराने लगा तब बंदर भी आज्ञा के अनुसार चलने लगा, तत्काल उस काम को करके आने लगा और दूसरे काम की इजाज़त मांगने लगा । इस प्रकार सेठजी ने दो तीन दिन काम चलाया ।

परन्तु अन्त में परेशान होकर अपने चित्त में विचारने लगा, कि मैंने बन्दर क्या मोल लिया अपना काल मोल लिया । इस प्रकार विचार करता हुआ उस बन्दर को बैठा कर अपने घर चला गया और घर में बैठ कर अपना प्राण बचाने का विचार करने लगा, कि इस बन्दर से प्राण कैसे बचाऊं, किस जगह जाऊं, क्या उपाय लगाऊं इत्यादि सोच में बैठा हुआ विचार कर रहा था ।

उसी समय कोई ज्ञानी गुरु परोपकारी भिक्षा के वास्ते भ्रमण करते हुए उसके घर चले आये, और उस सेठ को देखकर कहने लगे कि हे देवानुप्रिय ! ऐसी तुझको क्या चिन्ता है जो उग्र सोच में बैठा हुआ है ?

तब वह सेठ खड़ा होकर गुरु महाराज को प्रणाम करके प्रार्थना करने लगा, कि हे स्वामिन् ! मैंने एक बन्दर मोल लिया था, वह बन्दर इतना चंचल और ऐसी मीठी-मीठी बातें करता था, कि उसको देखते ही मेरा चित्त उस पर मोहित हो गया । तब मैंने उसके मालिक से कीमत पूछी । उस समय बन्दर बेचने वाला कहने लगा, कि मैं इसकी कीमत नहीं कह सकता । यदि तुमको लेना हो तो इसी बन्दर से ही पूछो, यह बन्दर आप अपनी कीमत कहेगा । जब मैंने बन्दर से कीमत पूछी, कि तेरी क्या कीमत है ? उस समय वह बन्दर कहने लगा कि हे सेठ ! पहले मेरी एक बात की प्रतिज्ञा करो, उसके बाद कीमत पूछना । जब मैंने कहा कि हे बन्दर ? किस बात का इकरार कराता है ? तब बन्दर कहने लगा कि काम सदा करता रहूंगा, कभी निकम्मा न रहूंना, जो तुम मुझको काम न बताओगे, तो मैं तुम्हारा भक्षण कर लूंगा । पहले इस प्रतिज्ञा को मंजूर करो तो मैं अपनी कीमत कहूं । जब मैंने इस बात को सुना, तब दिल में सोचा कि मेरे यहां हज़ारों

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मनुष्य काम करते हैं, इस बेचारे को निकम्मा रहने का कब समय मिलेगा ? ऐसा विचार कर उससे कहा कि मैंने तेरी प्रतिज्ञा स्वीकृत की, अब तू अपनी कीमत कह । तब उसने अपनी कीमत कही, मैंने उसके कहने के अनुसार उसके मालिक को कीमत देकर बन्दर को मोल ले लिया । उसको जो-जो काम बताया, सो वह तत्काल कर लाया, इस रीति से दो चार दिन में काम बताता रहा, जब कि वह हर एक काम को करने लगा, तब मैं उसके काम को देखकर घबराया, कि मैं इससे जिस काम को कहता हूं उसको तत्काल ही कर लाता है । इसको मैं क्या काम बताऊं ? जब मैंने उसके करने के योग्य कोई काम न देखा तब उस बन्दर को दुकान पर छोड़कर घर पर चला आया । जो मैं दुकान पर जाऊं, और उसको काम न बताऊं तो वह मुझे खा जायेगा । इस सोच में बैठा हूं, सो हे भगवन् ! उस बन्दर से मुझ को प्राण बचाना कठिन हो गया है ।

इस बात को सुनकर गुरु महाराज कहने लगे, कि हे देवानुप्रिय ! वह बन्दर नहीं हैं, किन्तु भूत है, उसको काम करने में अथवा आने जाने में देर नहीं लगती । सो हम अब तुझको उपाय बताते हैं, जिससे तू उससे बच जायेगा, जो तू वह उपाय करेगा तो वह बन्दर तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा । और जो तू न करेगा तो तेरा प्राण उस बन्दर से कदापि न बचेगा ।

उपरोक्त वचनों को सुनकर सेठ के मन को धैर्य हुआ और हाथ जोड़कर विनती करने लगा हे भगवन् । कृपा करके शीघ्र ही ऐसा उपाय बताइये, कि जिससे मैं इसके फन्दे से छूटूं ।

तब गुरु महाराज कहने लगे, कि हे देवानुप्रिय ! तू अपनी दुकान के आगे एक बांस गड़वा दे, और उस बन्दर के गले में जंजीर डालकर उस बांस में अटका कर उस बन्दर को हुक्म दे, कि तू इस बांस पर चढ़ और उतर, यही तुम्हें काम बताया है, और तेरे लिए कोई काम होगा तो शृंखला से जंजीर को खोलकर अपना काम करवा लूंगा । इतना कहकर फिर जंजीर से बांध कर चढ़ना उतरना बता देना । इस उपाय से बन्दर तेरे को नहीं खायेगा, तावेदार बनाही रहेगा । यह दृष्टान्त कहा ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अब इसका अर्थ उतार कर दिखाते हैं, कि यह मन रूपी बन्दर इस जीव के साथ लगा हुआ है। सो यह कभी स्थिर अर्थात् खाली नहीं बैठता। इस मन रूपी बन्दर के वास्ते जो कोई सद्गुरु मिले, और योग्य समझ कर यथावत् आलम्बन रूप बांस का गाड़ना बताकर मन रूपी बन्दर को शृंखला से बांधकर इस बांस पर चढ़ना उतरना बतावे, तो यह मन रूपी बन्दर भव्य जीव के वश में आवे दुर्गति से रुक जावेगा, आत्मा का स्वरूप यथावत् पावेगा, इसमें अनेक प्रकार के चमत्कार दर्शावे, या जो जिज्ञासा वाला चाहना करके लावे वह हो क्योंकि ऊपर लिखे दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिकके अनुसार मैंने कितने मनुष्यों को बतलाया था, और अनुभव भी कराया था, परन्तु जिज्ञासा अर्थात् चाहना बिना आगे को कुछ न पूछा। उतने ही में तृप्त होकर कर्त्तव्य छोड़ बैठे।

सो यह बात जाति कुल के जैनियों के सिवाय और भी कितने ही मतावलम्बियों को ऊपर लिखे अनुसार बताया, अबलम्बन बताकर उनके मन को ठहराया, परन्तु मैंने उनमें आत्मार्थ न पाया, क्योंकि उन्होंने मेरे को चमत्कार दिखाने को कहा इसलिये मेरा भी चित्त घबराया, अपात्र जानकर जो कुछ बताया उससे भी पछताया, आगे को बताने में मेरा दिल न हुलसाया। क्योंकि शास्त्रों में ऐसा लिखा है, कि जो जिज्ञासु आत्मार्थी विशेष चाहने वाला, शील, संतोष, क्षमादि गुणों करके सहित, निनय-सम्पन्न और श्रद्धा अर्थात् वचन के ऊपर विश्वास करने वाला हो और यदि गुरु परीक्षा के लिए अनेक प्रकार से दुर्वचनादि, ताड़ना, अथवा विपरीत आचरण करके उसके चित्त को विक्षिप्त करे, तो भी वह जिज्ञासु गुरु की चरण-सेवा, भक्ति, विनय, आदि से न्यून न हो, उसको ही वस्तु बताना। सर्वमतावलम्बी इस बात को अंगीकार करते हैं। और अपने-अपने जिज्ञासुओं को इस रीति से सुनाते भी हैं। परन्तु उन जिज्ञासुओं को गुरु वाक्य पर विश्वास न होने से लाभ नहीं होता।

देखो जिस योगी में योगाभ्यास द्वारा मन-वायु को एक करके श्वास बढ़ाना अथवा घटाना ये दोनों प्रकार की शक्तियां हैं, उस पुरुष की

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सामर्थ्य है कि जिस जगह चाहे उस जगह पर पहुंच जाये। इस विषय का एक दृष्टान्त दिखाते हैं—

जिस समय स्वामी शंकराचार्य ने मंडन मिश्र को जीतकर संन्यास दिया। उस समय उसकी स्त्री सरसवाणी आकाश में जाती थी, उस समय शंकराचार्य ने उसको रोककर कहा कि तू मुझ से जो प्रश्न करेगी उसका मैं उत्तर दूंगा। उस समय सरसवाणी ने शंकराचार्य का तिरस्कार करने के लिए नायिका के भेद पूछे। इस प्रश्न को सुनकर शंकराचार्य को उत्तर न आया, तब सरसवाणी से छः महीने के वास्ते उत्तर देने की प्रतिज्ञा कर अन्यत्र गया। तब एक नगर में राजा का मृतक देखकर उसके शरीर में प्रवेश कर गया। यह परकाय[८७] (दूसरे के शरीर) में प्रवेश करने का अर्थ यही है कि वे उस मन वायु की एकता करके श्वास के मार्ग से अपने तैजस शरीर को उस राजा के मृतक शरीर में ले गए। यह हाल शंकर-दिग्विजय में लिखा है, वहां से देखो। हमको तो इतना परिचय देना था कि इस मनोवायु की एकता से जो कोई श्वास को बढ़ाकर जो काम करेगा सो सिद्ध कर लेगा।

दूसरा, श्री जैनमत के सिद्धान्तों में भी ऐसा कहा है, कि जो तेतीस सागर

८७—**परकाय प्रवेश करने की विधि**—हठ योग में। ब्रह्मरंध्र से निकल कर और परकाय में अपान (गुदा) मार्ग से प्रवेश करे। वहां जाकर नाभि कमल का आश्रय लेकर सुषुम्ना नाड़ी में से होकर हृदय कमल में जाना। वहां जाकर अपनी वायु द्वारा उसके प्राण के प्रचार को रोकना। वह वायु वहां तक रोकना कि वह शरीरधारी देह से चेष्टा रहित होकर नीचे गिर जाये। अन्तर्मुहूर्त में उस देह से विमुक्त होने पर अपनी तरफ से इन्द्रियों की क्रिया प्रगट होने पर योग का जानकार अपने शरीर की तरह उस शरीर से सर्व क्रिया में प्रवृत्ति करे। आधा दिन अथवा एक दिन पर शरीर में क्रीड़ा करके बुद्धिमान पीछे उपर्युक्त विधि से अपने शरीर में वापिस प्रवेश करे। यह परकाय प्रवेश (दूसरे की काया में प्रवेश करना) आत्मा के कल्याण में सर्वथा बाधक है इसलिये मुमुक्षु आत्माओं को इसे न तो महत्व देना चाहिये और नहीं साधन करने की आवश्यकता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

की आयु वाले देवता हैं, उनको यदि द्रव्यानुयोग के सूक्ष्म सिद्धान्तों में कहीं षड्द्रव्य की चर्चा में संदेह उत्पन्न होवे, तो जिनेन्द्र भगवान् इस क्षेत्र में बैठे हुए ही मन-वायु की एकता से इन देवताओं के संशय दूर कर देते हैं। इस तरह मनवायु की एकता से श्वास का खेल सद्गुरुओं ने बताया है जिसका अनुभव इस चिदानन्द ने भी पाया है।

योगशास्त्र में हेमचन्द्रचार्य ने भी ऐसा लिखा है कि जो मनुष्य मन-वायु की एकता कर लेता है वह मनुष्य हजार कोस पर बैठे हुए मनुष्य के शरीर को अपने श्वास-बल से वश कर डालता है।

हमने इस जगह किंचित् परिचय लिखा है सद्गुरुओं ने अपने जिज्ञासुओं को विशेष कर दिखाया है जो उन गुरुओं ने अनुभव कराया है वह लेखनी से लिखने में नहीं आ सकता, गुंगे को गुड़ खाना बताया, उसने खाकर स्वाद लिया, पर जिह्वा से कहने न पाया, जिसने पाया उसने छिपाया।

जैन सिद्धान्त में पांच प्रकार का शरीर कहा है, जिनके नाम ये हैं— कार्मण, तैजस, औदारिक, वैक्रिय और आहारक। इन पांच प्रकार के शरीरों में चौरासी लक्ष योनियों का समावेश है। इन पांच शरीरों से रहित संसारी जीव तो कोई नहीं है, और जो इन पांच शरीरों से रहित है, वह है सिद्ध भगवान् जो निराकार, निरंजन, ज्योतिस्वरूप, परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दमय, स्वरूप-भोगी, स्वस्वरूप रमण, अव्याबाध, अनवगाही, अमूर्त, अनाहारी अव्यवहारी, अचल, अविनाशी, अलख-स्वरूप हैं। बाकी कुल जीव इन पांच शरीरों से सहित हैं। वैक्रिय शरीर नरक गति और देवगति वाले का होता है। आहारक शरीर १४ पूर्वधारी मुनि किसी कारण से धारण करता है और औदारिक शरीर सर्व मनुष्य और तिर्यञ्च योनि वालों को मिलता है।

वैक्रियवाले देवों की चार निकाय है—१. भवनपति, २—वानव्यंतर-व्यंतर, ३. ज्योतिषी, ४. वैमानिक। इन चारों निकायों में अनेक जातियां देवताओं की हैं। जैसे मनुष्यों में चार वर्ण छत्तीस कौमें प्रसिद्ध हैं, परन्तु जाति भेद नाना हो रहे हैं, जैसे ब्राह्मणों में पांच गौड़ और पांच द्राविड़,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इन दश को मुख्य कहते हैं, परन्तु सैकड़ों तरह की ब्राह्मणों में जातियां प्रसिद्ध हैं। यदि सब जातियों के नाम लिखावें तो एक ग्रंथ पृथक ही बन जाय। वैसे ही क्षत्रियों में चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी प्रसिद्ध हैं, परन्तु इनमें भी अनेक तरह के भेद हैं इसी प्रकार वैश्यों में साढ़े बारह न्यात बाजती हैं, परन्तु उनमें अनेक जातियां हैं, ऐसे ही शूद्रों में भी अनेक तरह के हैं। वैसे ही चार निकाय के देवताओं में मनुष्यों की तरह अनेक प्रकार की जातियां हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, खबीश, जिन्द, मसान, राक्षस, झोटिंग, काचाकलुआ, आदि नीच जाति के देव हैं, भैरव-वीरादि इनसे उत्तम हैं, यक्ष यक्षणी उनसे उत्तम है। इस रीति से देवताओं की जातियां हैं। ये सब वैक्रिय शरीर वाले हैं।

यह वैक्रिय शरीर वाले औदारिक शरीर वाले की दृष्टि में नहीं आते। इसलिये यदि वे इच्छा करें तो औदारिक शरीर वाले के शरीर में घुसकर इच्छानुसार बातें करें, अथवा अपने मनुष्य जन्म के औदारिक शरीर के अनुसार वैक्रिय शरीर को बनाकर प्रत्यक्ष दिखाई दें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यह आश्चर्य उन्हीं को उत्पन्न होता है जिनको यथावत् सद्गुरु का योग नहीं मिला। उन भूत-प्रेतादि की बातों में अन्तर भी पड़ता है, इसका कारण यह है कि जैसे मनुष्यों में क्षुद्र मनुष्य, अपनी तारीफ अनभिज्ञों (अनजानों) के सामने अनेक प्रकार से करता है, अपनी शक्ति से बाहिर की बात सुनाता है, चित्त में विचार कुछ नहीं लगता हैं; उसी प्रकार वे भूत-प्रेतादि भी अपनी तुच्छ शक्ति को बिना बिचारे अनजान मनुष्यों के सामने अनेक तरह के झूठ-सत्य दर्शाते हैं, कोरे गाल बजाते हैं, अपनी शक्ति से बाहिर बात कर झूठे बन जाते हैं। इसलिए उनके वचन में असंभवता होनी ठीक है। जिस रीति से इस मर्त्यलोक में जैसे-जैसे मनुष्यों की जाति, कुल, उत्तम-उत्तम होते हैं और उनके बल, बुद्धि, प्रभाव भी अधिक-अधिक होते हैं वे पुरुष वैसा ही वचन निकालते हैं कि जिस काम को कर सकें। वे अपने वित्त से बाहिर वचन को न निकालेंगे, अपनी प्रतिज्ञा को पालेंगे, ऊंच नीच को संभालेंगे,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लोगों के चित्त में कदापि भ्रम न डालेंगे। वैसे ही देवता भी जिस-जिस निकाय में जैसी-जैसी जाति में उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार अपनी जाति के अनुसार जिस मनुष्य का तीव्र पुण्य होगा, उसके पास वे आवेंगे, अपने कहने के अनुसार कर दिखावेंगे, जरा भी विलम्ब न लगावेंगे, काम कर तत्क्षण अदृश हो जावेंगे।

इसका विशेष वर्णन तो समाधि के भेद में समाधि-स्थित पुरुष के वर्णन में करेंगे।

मानसी पूजा की रीति

पुरुष मानसी पूजा के योग्य तब होता है, जब कि वह आधार और भावना को यथावत् धारण करे। इसलिए हमको इस जगह आधार और भावना अवश्य ही लिखनी पड़ी है। क्योंकि जो पुरुष धारणा धारण करने के योग्य नहीं, वह मानसी पूजा के भी योग्य नहीं हो सकता। इसलिए मानसी पूजा के अन्तर्गत 'हठ-प्रदीपिका' के अन्दर जो १६ (सोलह) आधार लिखे हैं उनको बतलाते हैं:—१ अंगुष्ठ, २ गुल्फ, ३ जानु, ४ उरू, ५ सीवनी, ६ लिंग, ७ नाभि, ८ हृदय, ९ ग्रीवा, १० कंठदेश, ११ लम्बिका, १२ नासिका, १३ भ्रूमध्य, १४ ललाट, १५ मूर्धा, १६ ब्रह्मरन्ध्र। इतने नाम गिनाकर इस ग्रन्थ वाले ने गोरक्ष सिद्धान्त का नाम लिया है। और 'गोरक्ष पद्धति' में मूल में तो ये नाम खुले लिखे नहीं है, उसकी भाषा करने वालों ने मूल श्लोक को लिखकर अन्य ग्रन्थों से वे नाम लिखे हैं। सो मुझे अनुमान से मालुम होता है कि, उस भाषा करने वाले ने 'गोरक्षसिद्धांन्तादि' अथवा किसी गुरु से जानकर वे नाम लिखे होंगे। वह मूल श्लोक इस प्रकार है:—

"षट्चक्रं षोडशाधारं, द्विलक्ष्यं व्योमपंचकम्।
स्वदेहे येन जानन्ति, कथं सिध्यन्ति योगिनः ॥१३॥"

भाषा—छः चक्र और सोलह आधार, दो लक्ष्य और पांच आकाश इन चीजों को जो योगी स्व-देह में नहीं जानता, उसको सिद्धि क्यों कर होगी? अर्थात् बिना जानने वाले को योगसिद्धि कदापि न होगी।

अब जो भाषा बनाने वाले ने सोलह तरह के आधार लिखे हैं वे दिखाते

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हैं। उन सोलह आधारों का प्रयोजन तो उस पुस्तक से देखो, क्योंकि उस सबको लिखने से ग्रन्थ अधिक बढ़ जायेगा, इसलिये नाममात्र ही दिखाते हैं—१ पग का अंगूठा, २ मूलाधार, ३ गुह्याधार, ४ वज्रोली, ५ उड्डीयान-बन्ध, ६ नाभिमण्डलाधार, ७ हृदयाधार, ८ कण्ठाधार, ९ क्षुद्रकंठाधार, १० जिह्वामूलाधार, ११ जिह्वा का अधोभागाधार, १२ अर्द्धदन्तमूलाधार, १३ नासिकाग्राधार, १४ नासिकामूलाधार, १५ भ्रूमध्याधार, १६ नेत्राधार। ये सोलह आधार हैं।

दूसरी रीति के आधारों का वर्णन

१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूर ४ अनाहत, ५ विशुद्ध, ६ आज्ञाचक्र, ७ बिन्दु, ८ अर्धेन्दु, ९ रोधिनी, १० नाद, ११ नादान्त, १२ शक्ति, १३ व्यापिका, १४ शमनी, १५ रोधिनी, १६ ध्रुवमण्डल ये १६ आधारों के नाम हैं। ब्रह्म तथा अपने में अभेद समझ कर भावना करने से सिद्धि होती है।

अब दो लक्ष्य कहने हैं—एक तो बाह्य दूसरा आभ्यन्तरिक है। देखने के उपयोगी भ्रूमध्य तथा नासिका इत्यादि बाह्य लक्ष्य हैं। मूलाधार चक्र, हृदयकमल इत्यादि आभ्यन्तरिक लक्ष्य हैं।

पांच प्रकार के आकाश

पहला श्वेतवर्ण ज्योतिरूप आकाश है, इसके भीतर रक्तवर्ण ज्योति रूप नेकाश हैं, इसके भीतर धूमवर्ण ज्योतिरूप महा आकाश है, इसके भीतर नीलवर्ण ज्योतिरूप महा तत्त्वाकाश है, इसके भीतर बिजली के वर्ण का ज्योतिरूप सूर्याकाश है। ये पांच आकाश हैं। ये ६ चक्र १४ आधार, २ लक्ष्य, ५ आकाश शरीर में हैं। इनको जो योगी नहीं पहिचानता, उसको योग सिद्धि नहीं होती।

इस रीति के आधार का वर्णन किया, 'गोरक्षपद्धति' का लेख भी लिख दिया है फिर दिल से विचार किया कि अनुभव से आधार-लक्ष्य-भावना का भी वर्णन करना चाहिए। अब जो-जो मुख्य प्रयोजन आधार लक्ष्य और भावना के हैं, उनका वर्णन करते हैं; आधार नाम उसका है कि जो आधेय

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

को रक्खे। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे स्तम्भ पट्टी को धारण करता है वैसे ही जो जिसको धारण करता है, वह उसका आधार है, सो आधार संसार में अनेक हैं। इस योगसिद्धि में आधार ये हैं—(१) एक उपादान आधार, (२) निमित्त आधार, (३) मुख्याधार, (४) गौणाधार, (५) द्रव्याधार, (६) भावाधार, (७) स्वाधार, (८) पराधार, (९) बाह्याधार (१०) आभ्यन्तराधार (११) उपचरित आधार (१२) अनुपचरित आधार। इस रीति से इन आधारों के अनेक भेद हैं। विशेष गुरुगम से जानना चाहिए, हमने ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से नहीं लिखा।

लक्ष्यार्थ कथन

लक्ष्य वह है जो लक्षण से पहिचाना जाय अथवा लक्ष्य नाम वस्तु दिखाने का भी है और लक्ष्य नाम निशान का भी है, सो इस योगाभ्यास में वस्तु का देखना वही लक्ष्य है।

भावनार्थ का वर्णन

भावना का अर्थ इस प्रकार है कि 'भावयतीति भावना'। तात्पर्य यह है कि विचार करना। उस विचारी हुई वस्तु में सत्य को ग्रहण करे असत्य को छोड़े।

'गोरक्षपद्धति' में जो पांच आकाश लिखे हैं सो पंचतत्त्वादि पांच पद, अर्हन्त, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु ये हैं। क्योंकि आकाश एक है, पांच नहीं हैं, परन्तु तत्त्वों की अपेक्षा से पांच आकाश मान कर कहा है। इस रीति से इतना अर्थ कहा। अब मतलब बतलाते हैं कि ऊपर लिखे आधारों को समझ कर जानें और हमारे लिखे चारों भेदों को पहचानें तो योग-सिद्धि यथावत् घट में आवेगी, बिना इनके योगाभ्यास संभव नहीं है।

प्रश्न—आपने ऊपर लिखे आधारों को अंगीकार न किया और दूसरे ही आधार बताये, तो क्या बुद्धिमानों ने ऊपर लिखे आधारों को व्यर्थ ही कहा है?"

उत्तर—हे देवानुप्रिय! ऊपर लिखे आधार जो बुद्धिमानों ने लिखे हैं वे आधार नहीं हैं, किन्तु कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य उसको कहते हैं कि जो करने के

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

योग्य हो और आधार वह है कि जिसके आश्रय रहे। इसलिए बुद्धिमान् बुद्धि-पूर्वक पक्षपात को छोड़कर विचार करेगा, तो हमारे लिखने के अनुसार ही अंगीकार करेगा और जो बुद्धिमानों ने सोलह आधार बतलाये हैं, वे गौणाधार के अन्तर्गत हो जावेंगे, कुछ अनुपचरित में मिल जायेंगे।

आधारों का स्वरूप वर्णन

उपादान आधार तो अपनी आत्मा है, क्योंकि सर्व गुणादि आत्मा में है; इसलिए आत्मा आधार है, अथवा योगसिद्धि तिरोधान भाव से आत्मा में ही है, इस कारण से भी उपादान आधार आत्मा ही है। यह मनुष्य शरीर निमित्ताधार है, क्योंकि जब तक मनुष्य का शरीर न मिलेगा, तब तक कदापि योगसिद्धि न होगी तथा आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति केवलज्ञान तथा मोक्ष प्राप्ति भी न होगी; इसलिए शरीर निमित्ताधार है। इस शरीर रूप निमित्ताधार में बुद्धिमानों के लिखे १६ आधार भी अन्तर्गत हो जावेंगे। तीसरा मुख्याधार शरीर है और चौथे गौणाधार में पाद, गुल्फ, जानु आदि शरीर के अवयव जानो, पांचवां द्रव्याधार—हम ऊपर बन्ध, आसन, मुद्रा और कुम्भकादिक जो कह आए हैं, उनको यथावत् करना वह द्रव्याधार है। जिस द्रव्य को करे उसका भाव प्रकट होकर लय हो जाना भाव आधार कहलाता है। सातवां स्वाधार आत्मा ही है, उसके अतिरिक्त और दूसरा नहीं। आठवां पराधार-गुरु और देव का आधार है। ६ वां बाह्यधार वह है कि जो ऊपर लिखी बातें हैं, उनको करके प्रत्यक्ष में हर एक मनुष्य को दिखाना। अन्तरंग की रुचि से जिसके वास्ते जो क्रिया कही है, उस समय करे, वह १० वां आभ्यन्तराधार है। देव के अभाव में, देव की प्रतिमा, चित्र, बिम्ब, आदि को देखकर शान्त-ध्यानारूढ़ जो आधार है वह उपचरिताधार है। इस आधार से अन्तरंग हृदय कमल में शान्तिरूप आकार वाले आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है; इसलिए इसको उपचरिताधार कहते हैं। मूलाधार से लेकर आज्ञा-पद्म तक देखना, और नाड़ी आदि को देखकर यथावत् उनमें स्थित होना; वह अनुपचरिताधार कहलाता है। इस रीति से सब आधारों का वर्णन किया।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

लक्ष्य का वर्णन

लक्ष्य वह है कि श्री वीतराग सर्वज्ञदेव की प्रतिमा को यथावत् बहुमान से देखकर उस लक्ष्य के अनुसार अपने हृदय कमल के ऊपर जो लक्ष्य है, उसको अभेद करके जानना, व देखना, इसी के वास्ते श्री वीतराग सर्वज्ञदेव ने दो निक्षेपों नाम, स्थापना से ही भव्य जीव का उद्धार बताया है, तीर्थंकरों का द्रव्य-भाव किसी जीव के काम न आया। क्योंकि द्रव्य और भाव निक्षेपा दिखलाई नहीं देते। इस प्रकार लक्ष्य का वर्णन करने के बाद अब भावना का स्वरूप बतलाते हैं।

ये भावना चार हैं, १. मैत्री भावना २. प्रमोद भावना, ३. मध्यस्थ भावना ४. करुणा भावना।

१. मैत्री भावना

सब जीव मेरे मित्र हैं, किसी का बुरा न हो, अर्थात् किसी का बुरा न बिचारना, और अपने समान जानकर मित्रता रखना, यह मैत्री भावना है।

२. प्रमोद भावना

दूसरे गुण जिनको देखकर, उनके गुणों के ऊपर राग प्रकट करना, उस राग से जो अपने चित्त में आनन्द होता है, उनके समान गुणी बनने की उत्कंठा होती है उसी का नाम प्रमोद भावना है।

३. मध्यस्थ भावना

मध्यस्थ भावना यह है, कि जो अपने को माने, पूजे, भक्ति आदि करे और अन्य कोई अपनी निन्दा करे, न मान करे, न पूजन-भक्ति करे, उन दोनों के ऊपर मध्यस्थ रहे अर्थात् समान भाव रखे। यदि किसी मिथ्यात्वी पर राग नहीं, तो द्वेष भी न करना चाहिए, क्योंकि जो उत्तम पुरुष हैं, उनको हिंसादि करने वाले जीवों पर भी करुणा उत्पन्न होती है, उस करुणा के बल से उपदेश देते हैं, उस उपदेश से जो जीव-हिंसादि छोड़कर अच्छे मार्ग पर आवे, तब तो उनको शुद्ध मार्ग दिखलाना, कदाचित् मार्ग में न आवे, तो उनके ऊपर द्वेष भी न करना, अपने दिल में ऐसा विचारना कि यह जीव अज्ञान है, और इसके कर्म परिणाम ऐसा ही है; ऐसा जो भाव उसका नाम मध्यस्थ भावना हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

४. करुणा भावना

इस संसार में सर्व जीवों को अपने सदृश समझ कर किसी जीव की हिंसा न करे, अथवा धर्महीन जानकर उसके ऊपर करुणा से उसका दुःख दूर करे, या ऐसा विचार करे कि यह जीव किस समय में धर्म पावेगा; इसको करुणा भावना कहते हैं। इन भावनाओं को भावें।

अब जिन पांच तत्त्वों को अभेद करके आधार करे, उनको दिखाते हैं—

जिस समय आत्म-साधन में प्रवृत्त हो, उस समय समझे कि मैं साधु हुआ, उस समय उसका साधुत्व से अभेद हो गया। जब उपाधि को दूर किया और आत्मा का अध्ययन करने लगा, तब उपाध्यायपद से अभेद हो गया, और उपाध्याय से अभेद होकर साधन का जो कालापन वह दूर होकर हरापन हो गया। जिस समय आत्मा ज्ञान, दर्शन और चरित्र रूप आचार में प्रवृत्ति हुई, उस समय आचार्य पद में अभेद हुआ। जब चार अरि (दुश्मन) अर्थात् ज्ञाना-वरणादि वैरियों को मारा, उस समय अरिहंत तत्त्व से अभेद हुआ, और अरिहंत तत्त्व में मिला। जिस समय तेज रूप प्रताप बढ़ा, और कुल पुद्गलादि को तेज रूप अग्नि में जलाया, तब सिद्धरूप तत्त्व में अभेद हो गया।

इस रीति से आधार आदि चार भेदों का वर्णन लिखा है। जिन पर गुरु की कृपा हुई, उन्होंने इसका अनुभव पूरा पाया, सर्वज्ञों ने सिद्धान्तों में अनेक रीति से दर्शाया है हमने तो यहां ग्रन्थ विस्तृत हो जाने के भय से किञ्चित स्वरूप ही दिखाया है।

⁸⁸मानसी पूजा की विधि

मानसी पूजा का विधान इस प्रकार है, कि जो ऊपर लिखी बातों से युक्त होगा, वही पुरुष मानसी-पूजन कर सकता है; क्योंकि देखो, जिन कमलादि चक्रों का प्रथम वर्णन किया है, उनको देखने के वास्ते तैयार होवे तो उसके बाद मान-सिक पूजन करे; उसी का नाम मानसिक पूजन है। उस जगह जो वस्तु अर्थात् कुल सामग्री जो कि मन से बनाई हुई है, मन से ही उसकी शुद्धि करना और जो द्रव्य जिस आकार का है उसी आकार का उसको मन से कल्पे, और जिस

८८. मानसी पूजा की विधि परिशिष्ठ में देखें।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

रीति से मन्दिर में प्रतिमा का या यन्त्रों का पूजन करते हैं, उसी रीति-पूर्वक मन से उस जगह पूजन करे, फिर स्तुति आदि करे, फिर उसका ध्यान करे, तब यथावत् फल पावे, उस रीति से अपने को गुण प्रकट करावे, दूसरी ओर कहीं चित्त को न ले जावे, तो यथावत् स्वरूप को पावे।

समाधि के भेदों का वर्णन

समाधि के मुख्य दो भेद हैं—

१. जड़ समाधि, २. चेतन समाधि।

चेतन समाधि के भी दो भेद हैं—

१. पिपीलिका मार्ग २. विहंग मार्ग। विहंग मार्ग के भी दो भेद हैं—
१. युञ्जान योगी, २. युक्त योगी। ये छः भेद समाधि के हैं।

जड़ समाधि के भेदों का वर्णन

पाषाण, लकड़ी अथवा मुर्दे (शव) के शरीर के समान चेष्टा करके रहना सुषुप्ति से भी जड़ हो जाना जड़-समाधि का लक्षण है; क्योंकि सुषुप्ति से जागे तब ऐसा भान रहता है कि मैं ऐसा सोया कि कुछ खबर नहीं रही, सो सुषुप्ति में तो इतना ज्ञान भी है, परन्तु जड़ समाधि में इतना भी ज्ञान नहीं रहता है। वैसे ही जड़ समाधि वाला प्राणवायु को साधन कर श्वास को कपाल में ले जाता है, और जितने दिवस का नियम करे वह जो अपने साधक है उनको कह रखे कि मेरी समाधि उस दिन खुलेगी, तो वे मनुष्य आकर उसी के अनुसार यत्न करके सावधान कर लेते हैं।

जड़ समाधि का साधन

इसके साधन की विधि यह है कि पहले जो हमने षट्कर्मादि लिखे हैं उसमें से कितनी एक क्रिया करते हैं, पीछे प्राणायाम करते हैं और कुम्भक को बढ़ाते हैं, सो बढ़ाते-बढ़ाते घण्टों के कुम्भक होने लगे, फिर उससे भी बढ़ाते-बढ़ाते दिनों की कुम्भक करने लगे, इस रीति से करते-करते महीनों की कुम्भक हो जाते है।

फिर उस कुम्भक वाले का ऐसा हाल हो जाता है कि वह जब तक बन्द मकान में रहे तब तक जड़ समाधि में बना रहे। जब कि वह बन्द मकान खुले

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

और बाह्य पवन उसके रोम की नाड़ियों द्वारा पहुंचने लगे तब उसको चेतना होती है और जो साधक लोग पास में हैं, वे भी उपचार करते हैं, जिससे बहुत सावधान होकर बात-चीत करने लगता है।

क्योंकि जिस समय में जो पुरुष जड़ समाधि लगाता है, उस समय श्रोत्र, चक्षु, नासिका और मुखादि सर्व द्वारों को रूई आदि लगाकर ऊपर से मोम लगाया जाता है। फिर उस समाधि वाले पुरुष को चाहें तो किसी स्थानादि व सन्दूकादि में बन्द करके रख दो, अथवा पृथ्वी में गाड़ दो, जितने दिन की प्रतिज्ञा हो, उतने दिन के बाद जो वह निकाल लिया जाय तब तो उसका जीवन है, नहीं तो कुछ दिनों में उसी जगह नष्ट हो जाएगा। इसलिए प्रतिज्ञा पर साधक पुरुष निकाल लेते हैं। इस समाधि के लगाने वाले नटादिक भी होते हैं और प्रायः करके वैरागी साधुओं में इसका प्रचार विशेष रूप से है, क्योंकि कुछ दिन के पहले एक हरिदास जी साधु ने राजा रणजीतसिंह के समय में राजाजी के सामने भी कई बार समाधि लगाई थी और 'हरिदास समाधि' नाम की एक पुस्तक भी छपी है, उसमें हरिदास जी का समाधि वगैरह लगाने का सर्व वृत्तान्त लिखा है।

हमने तो एक नमूना दिखाया है, दूसरा एक मनुष्य जड़ समाधि लगाने वाला हमने भी देखा है। यह विक्रम संवत् १९३७ या ३८ की बात है। आज भी [ग्रंथ लिखने के समय] शायद वह मनुष्य जीवित हो तो आश्चर्य नहीं। यह समाधि वाला पुरुष, जोधपुर के राज्य में नागोर से ८-९ कोस पर मुदाड़ ग्राम में दो ढाई मास रहा था, जिस ग्राम का जमींदार बाण्टे है। वह समाधि वाला पुरुष पांच दस बार मेरे पास भी आया था और मैंने जब उससे पहले पूछा तब तो नट गया, परन्तु फिर उसने अपना समाधि लगाने का सर्व वृत्तान्त बता दिया।

फिर मैंने उससे पूछा कि तुम जो समाधि लगाते हो उस समाधि में किन-किन चिह्नों से शरीर का हाल मालूम होता है और तुमको क्या आनन्द आता है?

तब वह मनुष्य बोला, कि शरीर में कुछ नहीं दीखता; केवल शून्याकार

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अर्थात् अन्धकार मालूम होता है और जितना मैं समाधि में चढ़ रहा हूं, उससे विशेष विलम्भ लगने से भीतर से बेचैन हूं। सो अभी तो मेरा थोड़ा ही अभ्यास हुआ है, अधिक होने से बेचैनी बन्द हो जाएगी और एक बार मैंने उससे कहकर अपने सामने समाधि लगवाई, उस समय वह मनुष्य जड़ रूप होकर शून्याकार हो गया, और उसके शरीर के अवयव कुछ कठोर प्रतीत होने लगे। यह बात मेरे प्रत्यक्ष देखने में आई, सो मैंने भी पाठकगण को लिखकर दिखाई, जड़ समाधि की रीति बताई, इसमें कुछ मतलब न देखा भाई, इस जड़ समाधि ने तृष्णा भी न मिटाई। यदि किसी को संदेह हो कि भला वह समाधि लगाता है तो तृष्णा क्यों न मिटी? तो हम कहते हैं कि वह राजपूत जिसको हमने समाधि लगाते देखा था, प्रातः काल से लेकर खेती तथा अन्त इतना काम करता था कि शाम तक उसमें लगा ही रहता था और रात्रि को समाधि लगाता था और हरिदास जी की समाधि नामक पुस्तक देखकर संदेह मिट जाएगा, क्योंकि रणजीतसिंह के सामने दो तीन अंग्रेज लोगों ने समाधि देखने की इच्छा प्रकट की, उस समय हरिदासजी ने कहा, कि मैं समाधि लगाऊं तो तुम मुझको क्या दोगे? उस समय अंग्रेजों ने जो उत्तर उसको दिया, उस पर वह क्रुद्ध हो गया और समाधि न लगाई।

इस रीति से इस जड़ समाधि की प्रक्रिया बताई, यह समाधि हमारे मन न भाई, इस समाधि से तो ईश्वर-भक्ति करके करो चित्त की सफाई, अन्तःकरण शुद्ध होने से ज्ञान-बृद्धि हो जाए, जिससे चेतन समाधि मिलेगी आप से आई।

प्रश्न—आपने इस समाधि की प्रक्रिया बताकर बिलकुल श्रद्धा को दूर कर दिया, क्योंकि मनुष्यों में प्रसिद्ध है कि समाधि लगाने वाला तो काल को जीत कर अपनी आयु बढ़ा लेता है और अमर हो जाता है, फिर आपने ऐसा क्यों लिखा है, समाधि को नट विद्या कैसे बताया, तुम्हारे चित्त में कुछ ख्याल न आया?

उत्तर—हे देवानिप्रिय? यह तुम्हारा कथन शास्त्र और बुद्धि से प्रतिकूल है, क्योंकि देखो, प्रथम तो अवतारादि हुए, जिन्होंने कुल सृष्टि की रचना की और सांसारिक व्यवहार और योग आदि का सब जगत् में परिचय कराया, फिर

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उन्होंने जिस शरीर को धारण किया उस शरीर की आयु को क्यों न बढ़ाया, काल को क्यों न हटाया ?

और भी एक दूसरी बात सुनो, कि आदिनाथ से लेकर मच्छन्दरनाथ, जलन्धर नाथ, गोरक्षनाथादि अनेक योगीन्द्र योगाभ्यास कर-करके ग्रंथ रच गए, समाधि में पच गए, हठ योग में नाम अपना कर गए, शरीर को छोड़कर हंस ले उठ गए। तो कहो यदि समाधि में आयु बढ़ती है तो उन्होंने अपनी आयु क्यों न बढ़ाई ? उनकी शरीर मूर्ति अब देखने में न आई, तेरी आयु बढ़ाने की बात क्यों कर विश्वास कर ले भाई ?

अब इस जगह पर कोई ऐसा कहे कि गोरक्षनाथ, गोपीचंद्र, भर्तृहरि आदि योगीन्द्र अमर हैं, परन्तु संसारी लोगों को दिखाई नहीं देते और कभी-कभी किसी को मिलते भी हैं परचा भी बता देते हैं, ऐसी लोगों में प्रसिद्धि है।

इसका समाधान यह है कि गोपीचन्द्र, भार्तृहरि, गोरक्षनाथादि अमर हैं, वे नाम करके अमर हैं, परन्तु शरीर करके नहीं हैं। यहां पर मुझे दोहा का स्मरण हुआ है, वह इस स्थान पर उपयुक्त जानकर लिखता हूं—

दोहा

"सुत नहीं अबला जन सके, मन नहीं सिन्ध समाय।
धर्म न पावक में जले, नाम काल नहीं खाय॥ १॥

इसलिए जिन-जिन पुरुषों का नाम बाल-गोपाल आदि जानते हैं और लेते हैं, लोग उनकी महिमा गाते हैं, और पिता, पितामह, प्रपितामह, अथवा उनके भाई बेटों का नाम कोई नहीं लेता, इसलिए उनका नाम अमर है। यदि वे शरीर करके वर्तमान हैं, तो सब मनुष्यों को दर्शन क्यों नहीं देते हैं ? जो तुम ऐसा कहो कि सांसारिक लोग उनको बहुत सतावें इसलिए दर्शन नहीं देते। तो हम कहते हैं, कि जिस समय वे घर छोड़कर योगी बने थे, उस समय योग साध कर भिक्षा लाते थे और घर-घर फिरते थे और मनुष्यों से मिलते थे, उपदेश भी देते थे, तो अब यदि उनका शरीर है तो भिक्षा के बिना किस प्रकार रहते होंगे ? यदि तुम कहो कि बन में रहते हैं, कन्द-मूल फल खाते हैं, आतम-ध्यान लगाते हैं, घर-घर पर भिक्षा के वास्ते आवाज नहीं लगाते, दुनियादारी

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

के झगड़ों से अपने को छिपाते हैं।

यह कहना भी तुम्हारा अयुक्त है, क्योंकि जिन उपाधियों का नाम अब लिया, वे पहले भी थीं, जब उन्होंने योग लेकर आत्मा का साधन किया, तब मनुष्यों ने उनके गुण से उनको पहचाना था, उस समय में भी वह वन था, और कन्द-मूल-फलादि भी जैसे तब थे, वैसे अब भी हैं, तो फिर उस समय में भिक्षा मांगना और इस समय न मांगना, किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

दूसरा, अब जैसे सांसारिक लोग स्वार्थ सिद्धि के वास्ते योगियों को सताते हैं, उसी प्रकार उस समय में भी स्वार्थ सिद्धि के वास्ते खोजते फिरते होंगे। बल्कि जैसा उस समय लोगों का योगियों के वचन पर विश्वास था, वैसा इस समय नहीं रहा। क्योंकि दुःखगर्भित और मोहगर्भित वैराग्य वाले सिर मुण्डा कर वाह्यक्रियादि दिखाते हैं, मिल्लत हथफेरी आदि करके लोगों को चमत्कार दिखाते हैं, आखिर में झूठ, कपट, धूर्त्तता के फंद खुल जाते हैं, फिर मनुष्यों को प्रत्येक के ऊपर से विश्वास उठ जाता है और जो पहले के योगी महात्मा थे, वे ऐसा नहीं करते थे। इसलिए आपके कथनानुसार वे योगी जगत् में पहले की तरह भ्रमण करें तो बहुत लोगों का उपकार हो, मनुष्यों को विश्वास हो जावे, उन साधुओं को अदत्ता अर्थात् चोरी का दोष भी न लगे, और आरम्भ से भी बच जाएं।

इसलिए जैसा उपकार उनके प्रत्यक्ष फिरने में है, वैसा गुप्त रहने में नहीं, बल्कि जगत् और उनकी दोनों की हानि है और जो मनुष्य लोगों में प्रसिद्धि करते हैं कि हमको भर्तृहरि आदि योगी और शुकदेवादि महात्मा मिले थे उनसे जब हमने दण्डवत् प्रणामादि किया, चरण कमल पकड़ कर प्रार्थना की, तब उन्होंने हमारे ऊपर कृपा करके योग बताया, उससे हमने यह फल पाया, ऐसा कहने वाले पुरुष महा असत्यवादी, कपटी, अपनी आत्मा को डुबोने वाले हैं, वे लोग उन महात्माओं का नाम लेकर लोगों को बहकाते हैं, अपने को पूजाते हैं, लोगों को ठगने का जाल फैलाते हैं। हां, कितने ही आत्मार्थी, मनुष्य पूर्वतादि वनों में रहते है और आस-पास के ग्रामों में मौका पाकर भिक्षा ले जाते हैं, फिर अपना आत्म-ध्यान जमाते हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ऐसा कोई महात्मा भाग्य से किसी को मिल जाये, तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि प्रायः करके यह बात कितने ही मनुष्यों को हुई है, परन्तु जिनको ऐसे महात्माओं का समागम हुआ है, वे पुरुष ऊपर लिखे महात्माओं को न बतावेंगे, क्योंकि यह बात अनुमान से सिद्ध होती है कि कबीर आदि अनेक पुरुषों ने जिनको गुरु किया था, उनके समीप तो उनको मिल गया, और आत्मा की लटक बता गया। उस लटके से उन्होंने पहले गुरु से पृथक् अपने नाम का पंथ चलाया, साखी आदि दोहा कवित्त कह कर ग्रन्थ भी बनाया।

मैंने भी राजगृही के पर्वत पर रात्रि के समय एक महात्मा का दर्शन पाया था उन्होंने मुझे उपदेश सुनाया और कई तरह के संदेह को मिटाया, उन्होंने मेरे चित्त के संदेह को ऐसा मिटाया फिर मुझे किसी तरह का विकल्प न आया। ऊपर लिखे योगी महात्माओं को भी मैंने शरीर सहित होने का प्रश्न पूछा उत्तर में उनके न होने का अनुभव कराया, उसी ही अनुभव से मैंने भी पाठकगण को समझाने के वास्ते लिखा है।

दूसरी बात यह है कि जो शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि जितनी आयु लिखी है, उसमें कमी-बेशी करने को कोई समर्थ नहीं है और यह बात लोक में प्रसिद्ध भी है कि विधाता के लेख को कोई नहीं मिटा सकता। तब जो समाधि वाला अपने समाधि से अधिक आयु कर लेगा तो विधाता से भी अधिक विधाता हो जायेगा, विधाता का लेख सब खो जायेगा।

इसलिए समाधि लगाने वाले शरीर से अमर नहीं होते। किन्तु उस दशा में जीव शरीर छोड़कर सिद्धावस्था में अमर हो जायेगा, अपनी आत्मा में से मोह भगा जायेगा, जन्ममरण को खो जायेगा, तिरोभाव से आविर्भाव हो जायेगा। इसलिए समाधि वाला शरीर सहित कभी अमर न होगा। तीसरी बात जो कि स्वरोदय में लिखी है, वह यह है कि :—

"चार समाधि-लीन नर, षट् शुभ ध्यान मंझार।
तूष्णीभाव बैठा जु दस, बोलत द्वादश धार ॥४१२॥
चालत सोलस सोवतां, चलत श्वास बावीस।
नारी भोगवतां जानजो, घटत श्वास छत्तीस ॥"४१३॥

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मेरे द्वारा कृत स्वरोदय में ये ऊपर लिखे दोनों दोहे हैं। दूसरे स्वरोदय के ग्रन्थों में तो विशेष श्वासों का जाना कहा है। अब हम इस जगह पर विचार करते हैं, कि जब इस रीति से स्वरोदय वाले कहते हैं तो वे फिर आयु क्यों नहीं बढ़ा लेते यह निश्चय न हुआ।

हे समाधि वालो ! भला समाधि में तुम अपनी आयु बढ़ा लेते हो, तो हम को तो बताओ कि रास्ता चलने में अथवा सोने में अथवा स्त्री के भोग आदि में और भागने में जो विशेष श्वास घटता है तो क्यों ? ७२० श्वास एक मुहूर्त के कहे हैं, सो इस नासिका की रीति से गिनाए हैं, अथवा किसी और जगह से शरीर में गिनाए हैं ? तो सब लोग ऐसा ही कहते हैं कि नासिका के गिनाए हैं।

तब हम इस स्थान पर पाठकगण को एक अनुभव कराते हैं, उस अनुभव को बुद्धिपूर्वक विचार करके अपने चित्त में अनुभव करना और अनुभव करके जो वर्तमान काल के योगी बने फिरते हैं, उनको पूछने से उनके भेद खुल जावेंगे, जाल सब दूर हो जावेंगे, शेखी करने से हट जावेंगे।

वह अनुभव इस रीति से है कि जिस समय मनुष्य साधारण स्वभाव से बैठा है, उस समय श्वास जल्दी बाहर से भीतर को जाता है और शीघ्र ही बाहर को चला आता है और जब जोर का काम पड़े, अथवा स्त्री-भोग अथवा भागना आदि क्रियाओं के करने से श्वास देरी में बाहर से भीतर जाता है और भीतर से बाहर आता है, इस अनुभव को जिसकी इच्छा हो, वह करके देखे, तो जो काम देरी से होगा वह काम अधिक रहेगा। इस रीति से जो विषयादि करने वाले, अथवा भागने वाले, अथवा सोने वाले हैं, इनकी आयु अधिक होनी चाहिए ?

यदि इस जगह गुरु सेवा के बिना मात्र पुस्तकें पढ़कर बुद्धि-विचक्षणता वाले और न्याय-व्याकरणादि पढ़ने वाले ऐसा कहें कि उन भागना और विषयादि क्रियाओं में श्वास तो यही है, परन्तु अंगुलों की गणना से श्वासादिक की हवा दूर जाती है, इसलिए आयुकर्म टूटता है। इस रीति से नासिका के ही श्वास जानो। इस जगह हमारा यह कथन है कि जब अंगुलों के ऊपर संख्या

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मान कर नासिका के श्वास गिनाए, तो आकाश तत्त्व के बिना जितने तत्त्व हैं वे सब आयु के घटाने वाले हो जायेंगे, क्योंकि नासिका के भीतर आकाश तत्त्व चलता है, बाकी शेष चार तत्त्व, आठ, बारह, सोलह, अंगुल तक चलते हैं और कम होने से तत्त्वों की खबर नहीं पड़ती, तो फिर तत्त्वों का कथन शिवजी से लेकर सब योगियों का वृथा हो जायेगा।

इसलिए गुरु की चरण सेवा करके धारो तो तुम को मालूम पड़े, कि समाधि वालों को ही यथावत् तत्त्व मालूम पड़ते हैं, न कि नाक में हाथ लगाने से, या सूं—सां करने से। इसलिए जो तुम्हारा प्रश्न था कि समाधि वाले आयु बढ़ा लेते हैं, सो न बना।

चौथी बात यह है कि जो हरिदास की पुस्तकों में लिखा है कि "हरिदास ने अंग्रेजों पर क्रोध करके पीछे राजा रणजीतसिंह के कहने से समाधि लगाई, फिर समाधि से निकल कर कुछ उनके हाथ न आया, तब क्रोध कर झाड़ी में रहकर शरीर को छोड़ कर परभव की निद्रा में सो गया। कुछ दिनों के बाद हरिदास जी के शिष्यों से उनके परमधाम होने का समाचार राजा रणजीतसिंह ने सुना, तब बहुत खेद चित्त में किया और शिष्यों को दम दिलासा दिया।" अब पाठकों को विचार करना चाहिए कि हरिदास जी समाधि लगा कर छः महीने तक जमीन में गड़े रहते थे, तो फिर क्यों न उन्होंने काल को जीत कर अपने शरीर की आयु बढ़ाई? नाहक में क्यों देह गंवाई? उनकी समाधि की पुस्तक में १०० सौ वर्ष से कम आयु की ही अनुमान से गणना है भाई, समाधि वालों को शरीर से रहना असंभव हो समाई, जागृत समाधि कहने की बेला आई, इस रीति से जड़ समाधि का किंचित् भेद दिया दिखाई।

चेतन समाधि का वर्णन

इस चेतन समाधि के दो भेद ऊपर लिखे हैं, उनमें प्रथम पिपीलिका भेद का वर्णन करते हैं। पिपीलिका अर्थात् चींटी जैसे सहारे से चढ़ती है, बिना सहारे के आकाश में नहीं चल सकती और विहंगम नाम पक्षी का है, सो पंख वाला जानवर बिना आश्रय के आकाश में उड़ता है। यह इन दोनों शब्दों का अर्थ हुआ। इनका तात्पयर्थि यह है कि अन्य दर्शन वाले आलम्बन के द्वारा जो

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

समाधि करते हैं वह पिपीलिका समाधि के अन्तर्गत होती है। दर्शनों के भी कई भेद हैं, जिनका थोड़ा सा उल्लेख करना यहां आवश्यक मालूम होता है—

वेदान्ती लोग अद्वैत को ही सिद्ध अर्थात् एक पदार्थ मानते हैं। सांख्य मत प्रकृति और पुरुष और पुरुषों में भी नानापन, इस रीति से दो पदार्थ मानता है और लोग बन्धन अर्थात् माया से छूट जाना उसी का नाम मोक्ष मानते हैं, परन्तु इन दोनों में इतना विशेष है, कि सांख्य मतवाला तो प्रकृति से पृथक् हो जाना, उसी को मोक्ष कहता है और वेदान्ती माया से छूटकर ब्रह्म में एक हो जाना, उसी को मोक्ष कहता है। सो वेदांत में दो भेद हैं; १ पूर्व मीमांसा २ उत्तर मीमांसा। पूर्व मीमासा तो केवल कर्म को ही अंगीकार करता है और उत्तर मीमांसा में भी चार सम्प्रदाय हैं। नैयायिक सोलह पदार्थ मानता है, और २१ गुण के ध्वंस को ही मोक्ष मानता है। जैसे जड़ समाधि में जड़ समान होता है, वैसे जड़ हो जाना ही इसके मत में मोक्ष है। वैशेषिक छः पदार्थ मानता है और सब नैयायिक की तरह जानो। इन नैयायिक और वैशेषिक वालों के बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं, सो पदार्थ निर्णय में हैं, हमने तो नाम मात्र कहा है।

बौद्धमत वाला चार पदार्थ मानता है, सो उसके कई भेद हैं जैसे क्षणिक-वादी, शून्यवादी आदि और सब दुःखों से छूट जाना ही इनके मत में मोक्ष है।

जैनी लोग मुख्य तो दो ही पदार्थ मानते हैं, १ जीव, २ अजीव। और ८ कर्मों का नाश करके सिद्ध-शिला के ऊपर जाना उसको मोक्ष मानते हैं। सो ऊपर लिखे सर्व मतों के अनेक भेद हो रहे हैं। इन्होंमें कोई तो सृष्टि का कर्त्ता मानता है, कोई नहीं मानता है। ऐसे ही कोई किसी पदार्थ को मानता है और कोई किसी पदार्थ को नहीं मानता। सो पदार्थ मानने, न मानने के ऊपर अनेक ग्रन्थ संस्कृत आदि भाषाओं में रचे हुए हैं। इन शास्त्रों में प्रमाण दे देकर अपने-अपने पदार्थ सिद्ध करते हैं। गुरु ने मुझे सर्वज्ञ वीतराग के स्याद्वाद धर्म पर दृढ़ कराया, दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्य वालों ने जैन धर्म में बखेड़ा मचाया, इस कारण से मेरे आनन्द में विघ्न आया' चिदानन्द नाम पाकर अपनी हंसी कराया।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

शब्दों के अर्थ तथा उनके नाम

१ ओम्, २ सोऽहं, ३ राम, 'राम' को कोई 'रं' भी कहते हैं, ४ हंस, ५ कोहग।

१—ओम्[८९]

ओंकार शब्द को सर्वमतावलम्बी शास्त्रानुसार ईश्वर का रूप मान कर इसकी उपासना करते हैं। वेद, पुराण, स्मृति, उपनिषदादि वैष्णव लोगों के ग्रन्थों में ओंकार को ब्रह्मरूप परमात्मा मानकर उपासना करना कहा है, और

८९ ओम् को सब मत मतान्तरों ने भगवान् का सर्वोत्तम-उत्कृष्ट नाम माना है, क्योंकि इसके द्वारा भगवान् में स्थित उन समस्त शक्तियों का ज्ञान होता है जो कि उस में अन्य चेतनों की अपेक्षा विशेष कही जा सकती हैं। हम यहां पर जैन दृष्टि से ही इसके विशेष अर्थों का प्रतिपादन करेंगे। जैनागमों में "ओम्" शब्द का अर्थ निम्न प्रकार से किया गया हैं यथा—

(क) "अरिहंता—असरीरा—आयरिय— उवज्भाय—मुणिणो।
पंचक्खर-निप्पण्णो ओंकारो पंचपरमिट्ठी" ॥१॥

अर्थात्—अरिहंत, अशरीरी (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय, मुनि (साधु) इन पांच परमेष्ठियों के आदि के पांच अक्षरों से ओं-कार का निर्माण हुआ है जैसे कि (१) अरिहंत—अ। (२) अशरीरी—अ। (३) आचार्य—आ। (४) उपाध्याय—उ। (५) मुनि—म्। अ+अ+आ+उ+म्=ओम्।

आदि के तीनों अवर्णों को 'अक: सवर्णे दीर्घ: सूत्र से दीर्घ करने पर तथा उससे पर 'उकार' के साथ 'आद्गुण:' सूत्र से गुण एकादेश करने पर तथा 'म्' का पर सम्बन्ध होने पर 'ओम्' शब्द सिद्ध होता है। अर्थात इस मैं पंच परमेष्ठी का समावेश होता है।

उपर्युक्त पांचों पदों के आद्य अक्षरों के योग से 'ओम्' बना है तात्पर्य यह है कि विभिन्न शक्तियों, गुणों तथा विशेषताओं के बोधक पांचों पदों के द्वारा जो अर्थ बोधित होते हैं वे सब जिसमें विद्यमान हों अर्थात् जो सर्वगुणागार सर्वज्ञ, सर्वदु:खरहित जीव है वह 'ओम्' शब्द का वाच्य है। इस में साकार निराकार ईश्वर का तथा सद्गुरुओं का समावेश है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इसकी महिमा ऊपर लिखित ग्रन्थों में है। यदि मैं लिखूं, तो लिखते-लिखते आयु व्यतीत हो जाय, परन्तु इसकी महिमा का अन्त न हो। यदि सरस्वती, बृहस्पति, शेष भी लिखें तो भी सम्पूर्ण न हो। तथा जैन मतावलम्बी इस ओंकार को पंच परमेष्ठी मानकर उपासना करते हैं। और बौद्धादि जितने मत हैं, वे सब इस ओंकार को अपना इष्टदेव मानकर उपासना करते हैं। बल्कि ओंकार बिना अन्य कोई मन्त्रादिक भी नहीं बोलते हैं। इस रीति से ओंकार शब्द को जगत् गाता है।

२—'सोहं' का अर्थ

सोऽहं शब्द जो है, इसकी अध्यात्मिक लोग रटना करते हैं। 'सः' जो परमात्मा, है 'ऽहं' वही मैं हूं। इस कथन से परमात्मा का अभेद-रूप ध्यान करके परमात्मा होता है, क्योंकि हकार करके भीतर को घुसा और सकार करके समा गया। इस रीति से इस 'सोऽहं' शब्द की महिमा अध्यात्मिक लोग गाते

(ख) निम्नलिखित गाथा भी 'ओम्' शब्द की व्याख्या कर रही है—

''आययचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहोभागं जाणइ।

उड्ढभागं जाणइ तिरयं भागं जाणइ'' ॥२॥

अर्थात्—जो महापुरुष इहलोक तथा परलोक में होने वाला समस्त अपायादि को प्रत्यक्षतः अच्छी तरह जानता है; जिसके ज्ञान में कोई पदार्थ बाधक नहीं बन सकता; जो सांसारिक विषयों से उत्पन्न होने वाले समस्त सुखों को विषतुल्य समझकर शम—सुख को प्राप्त कर चुका है; वही आयत चक्षु; दीर्घदर्शी; तीनों लोकों को जानने वाला पूर्ण ज्ञानी महापुरुष है।

उपरिनिर्दिष्ट 'अहोभागं जाणइ, उड्ढं भागं जाणइ' तिरयं भागं जाणइ' इन तोनों वाक्यों के आद्य अक्षरों को मिलाने से भी 'ओम्' सिद्ध होता है। यथा—(१) अहोभागं = अधोभागम्—अ (२) उड्ढभागं = ऊर्ध्वभागम्—ऊ। (३) तिरियं भागं = मध्यभागम्—म्। (तिरियं शब्क मध्यार्थक है) पूर्ववत् ''आद्गुणः'' सूत्र से गुण करने पर 'ओम् शब्द सिद्ध होता है।

जो व्यक्ति तीनों लोकों में होने वाली समस्त क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान रखता है, वह दीर्घदर्शी सर्वज्ञ पुरुष 'ओम्' शब्द वाच्य है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हैं, शास्त्रों में इसको बताते हैं, इसके ध्यान से परमात्मपद पाते हैं, हकार को सकार में लय करने से समाधि में समाते हैं।

३—'राम' का अर्थ

यह शब्द क्रीडार्थक 'रमु' धातु से सिद्ध होता है। इसका अर्थ यह है कि 'रमते इति' 'रामः' आत्मा में रमण करना; उसी का नाम राम है। इसलिये जो अपनी आत्मा में रमेगा, वह पापों से छूटकर परमात्मा हो जायगा। इस रमण-रूपी राम से ही बाल्मीकि आदि अनेक मुनिजन आत्मा में रमण कर परम पद को प्राप्त हुए। अनेकों ने राम-राम गाया, उसी स्वरूप में रटना लगायी जिसने अपने स्वरूप में लय लगाई वही मोक्ष-पद पाया, जैसा इस राम शब्द का अर्थ था, वैसा हमने पाठकगण को दिखाया है। इस राम शब्द के अन्तर्गत 'रम्' शब्द भी है, परन्तु इसकी प्रसिद्धि कम है, इसे प्रत्येक मनुष्य नहीं जानता।

'हंस' का अर्थ

गोरक्षपद्धति के प्रथम शतक के ४३ वें श्लोक में जीव इस मन्त्र का प्रतिदिन स्वतः ही दिन भर में २१६०० जाप करता है। और ४४ वें ४५ वे श्लोक तक इसकी ऐसी महिमा लिखी है कि मोक्ष के देने वाला यह ही अजपा गायत्री है। वे तीनों श्लोक यहां उद्धृत करता हूं—

षट्शतानि त्वहोरात्रे, सहस्राण्येकविंशतिः।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा ॥४३॥
अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदायिनि।
अस्याः संकल्पमत्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥
अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥४५॥

अक्षर हं तथा स के मेल से हंस शब्द बना है। इसका अर्थ भी सोऽहं के समान समझें।

इनका अर्थ तो सुस्पष्ट है, अथवा इनकी छपी हुई पुस्तक में देखो। अन्तर्गत समेत इन पांच का वर्णन किंचित् दिखाया है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

५—कोऽहं का अर्थ

अब कबीर-पन्थियों के घर के 'कोऽहं' शब्द का भी भावार्थ कहते हैं। 'को' कौन हूं 'हं' मैं; ऐसा अर्थ इसका होता है।

किसी के आलम्बन अर्थात् दूसरे के सहारे से वृत्तियों का थामना उसका नाम पिपीलिका मार्ग है, और निरालम्ब होकर आत्मा में स्थिर होना, वह विहंग मार्ग है।

अब मनुष्य जो अनहद-अनहद कहा करते हैं, उसका विचार किंचित् पाठक-गण को दिखाता हूं, अनहद शब्द का अर्थ भी लगाता हूं। 'अनहद' इस शब्द में 'नञ् समास' है, इसलिये इसका अर्थ ऐसा है कि, नहीं है हद (सीमा)। जिसकी उसको अनहद कहते हैं। सो यह शब्द जिसके पीछे लगेगा वही वस्तु सीमाओं से रहित हो जायगी, अर्थात् उसका आदि और अन्त न होगा। जब नाद के साथ में लगाया जायगा तब 'अनहद नाद' ऐसा कहेंगे, इसलिये उसको चाहे शब्द कहो या नाद कहो। सो यह नाद-शब्द अजीव अर्थात् आकाश का है। 'शब्दगुणकमाकाशम्' ऐसा न्याय शास्त्र में कहा है और स्याद्वादी जिन धर्म में इस शब्द को पौद्गलिक कहा है। इस शब्द के दो भेद हैं—१ ध्वनि-रूप, । २ वर्णरूप यह वर्णरूप में तो हिन्दी, संस्कृत भाषादि अक्षरों में होते हैं। और ध्वनिरूप, भेरी' बांसुरी, सारंगी सितार, पखावज आदि बाजों से अथवा हथेली, चुटकी आदि बजाने से होता है। आत्मा में लय होना, तथा उस जगह ध्वनि का श्रवण करना असम्भव है। इसलिये ध्वनि का कथन जिज्ञासुओं के लिये रोचक वचन उपचार से है, क्योंकि आत्मलय होने में ध्वनि का कुछ काम नहीं।

इस जगह ऐसी शंका उत्पन्न होती है, कि गोरखनाथ आदि योगिओं ने जिसको योगाभ्यास में सुना उसे अनहद नाद बताया है और उसे लोगों ने साखीपद में गाया है तुमने क्यों इसका निशेध किया है ?

इस शंका का समाधान यह है कि हमने इस अनहद नाद निषेध नहीं किया किन्तु शब्दार्थ दिखाया है, क्योंकि इस अनहद शब्द को युञ्जान-योगियों ने सुनकर गाया है गुरु गम से इसका भी भेद पाया है। अनहद नाद झूठा नहीं

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है परन्तु लोगों ने इसका असल मर्म नहीं पाया है। जिन्होंने पाया उन्होंने छिपाया, क्योंकि देखो जिस समय में युञ्जानयोगी योजना—अर्थात् आत्मा में बाह्यवृत्तियों का त्याग कर एकाग्र होने की इच्छा करता है, उस समय आकाश में जो सर्व प्रकार के शब्द हो रहे हैं, वे पहिले तो मिले हुए गुंजार रूप से प्रतीत होते हैं। सो इसका अनुभव बताते हैं कि एकान्त में बैठ कर कानों में अंगुली देकर बुद्धिपूर्वक विचार करे तो गुंजार शब्द सुनाई देता है। उस गुंजार रूप प्रतीति में मन लगता चला जाता है, ज्यों-ज्यों एकाग्रता होती है, वैसे-वैसे ही जुदे-जुदे शब्द की प्रतीति होती चली जाती है। अन्त में वह आनन्द-सहित आत्मा में लय हो जाता है, क्योंकि इस चार गति के जीवों में हर्ष और शोक बना हुआ है, सो शोक से तो रोना, पीटना और हर्ष होने से गाना, बजाना, ये दोनों सदा होते हैं, कोई समय खाली नहीं होता। इसलिये इसको अनहद नाद बताया है। मैंने गुरु कृपा से यह भेद पाकर अनुभव करके बताया है।

युक्त योगी का स्वरूप

दूसरा युक्त योगी वह है, जो कि बाह्य वृत्ति से निवृत्त होकर आत्म वृत्ति में रमण करे इन्द्रियों के होने पर भी अतीन्द्रिय ज्ञान से भूत, भविष्यत् और वर्तमान का, चौदह राज अर्थात् चौदह भवन, जिसको अर्बी में चौदह तबक कहते हैं, इनका भाव न्यूनाधिक किंचित् भी न बखाने, उसका नाम युक्त योगी है।

यहां पर युक्त योगी और युंजानयोगी का तात्पर्य ऐसा है, कि युक्तयोगी तो जब तक शरीर का आयु कर्म है, तब तक जो हम युक्तयोगी की विधि लिख आये हैं, वह उसी के अनुसार शरीर छोड़ने के अन्त तक एक रस बना रहेगा। न्यूनाधिक कुछ भी न होगा। और युञ्जानयोगी जिस समय में योजना करे, उस समय में जिस वस्तु की योजना की हो, उसी वस्तु का सर्वज्ञ हो जाये, क्योंकि जिस समय पिण्डस्थ ध्यान की योजना करे, तो पिण्ड रूप चौदह राज की भावना को जैनमत में लोकनाल कहते हैं और वैष्णव मत में विराट स्वरूप कहते हैं। इस पिण्डस्थ ध्यान वाले को अनेक शक्तियां उत्पन्न हो जाती हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

परन्तु उन शक्तियों के असंख्यात भेद हैं। जैसी-जैसी जिसको शक्ति होगी, उसी के अनुसार सिद्धि दिखावेगा।

अब हम इस स्थान पर यह दिखाते हैं, कि जो हम पहले 'मृतक-मिलाप' के प्रसंग में कह आये थे कि भूतादि प्रत्यक्ष इसलिए नहीं होते, कि बताने वाला उनका यथावत स्वरूप नहीं जानता, इसके वास्ते हमने समाधि का नाम लिया था उसको यहां दिखाते हैं।

जो पिण्डस्थ ध्यान वाला अपनी शक्ति के अनुसार जितने पिण्ड की वस्तु उसको यथावत् दीखेगी, उसी वस्तु के क्रिया गुण से परिचित होकर उसको अपने मतलब में ले आवेगा। तात्पर्य यह है कि जो युंजानयोगी योजना करके पिण्डस्थ ध्यान में जितना पिण्ड अर्थात् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चार निकाय के देवताओं में जितनी उसकी शक्ति होगी उसके अनुसार देवताओं का स्वरूप जानकर उसको मन्त्र में गर्भित कर जिसको बतावेगा, उसी को सिद्ध हो जायेगा। दो दिन चार दिन का काम नहीं, हजार दो हजार माला फेरने का भी काम नहीं, जैसे किसी मनुष्य को आवाज देकर बुलाता हैं तब वह मनुष्य एक आवाज को सुने, दूसरी को सुने, आखिर तीसरी आवाज में तो आ ही जाता है, वैसे ही मनुष्य की तरह जो भूतप्रेतादि देवता हैं वे भी तीसरी बार मन्त्र पढ़ने से आ जाते हैं।

ऊपर लिखित व्यवस्था के न होने से इस समय में उक्त गति हो रही है। इसका कारण यही है कि ऊपर लिखे के अनुसार लोगों की व्यवस्था तो नहीं है केवल पुस्तकों को देखकर बताते हैं, गुरु बन जाते हैं लोगों को ठग कर खाते हैं, जिज्ञासुओं का विश्वास उठाते हैं। सिद्ध हो गया तब तो सिद्ध बने ही हुए हैं, नहीं तो बहाना बतलाते हैं सो दिखाते हैं। वैष्णव मतवाले कहते हैं कि शिवजी ने मन्त्र कील दिये इससे सिद्ध नहीं होते। और जैनी लोग कहते हैं कि फलाने मन्त्र की फलानी गाथा भण्डार कर दी है इसलिए यह सिद्ध न हुआ। अब दूसरा मन्त्र बता देगे। परन्तु भोले मनुष्य कीलने और भण्डारने का मतलब नहीं जानते हैं। इसलिए अपनी बुद्धि के अनुसार पाठक गण को वह रहस्य दिखाता हूं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जिस समय जिस आचार्य ने देखा कि इस जिज्ञासु को उपद्रव है, वह उपद्रव उस देवता के संयोग से मिट जायेगा, उस समय उस देवता के नाम को ऊपर लिखी रीति से जानकर मन्त्र में लगाया, मन्त्र जिज्ञासु को बताया, गुरु ने हुक्म फरमाया, तीन बार पढ़ने से जिज्ञासु को प्रत्यक्ष हो आया, उसी समय उसका काम बजाया । देखिये, जिस समय वराहमिहिर मर कर नीच योनि का देवता बना और श्रावकों को उपद्रव करने लगा उस समय श्रावकों के उपकार के लिये श्रीभद्रबाहु स्वामी ने श्री पार्श्वनाथ स्वामी की मन्त्र गर्भित 'उवसग्गरहरं' की स्तुति बनाई, फिर श्रावकों ने गुणा (जप किया) और धरणेन्द्र तथा पद्मावती आई, उन्होंने उन्हें अपना दुःख कहा जिसको उन देवों ने उसी समय दूर किया, उपद्रव मिटने के बाद भी गृहस्थियों ने हर समय उनको बुलाया और घर का काम सौंपा । अनेक काम कराया जब उनका चित्त घबराया तब गुरु महाराज से आकर प्रार्थना करने लगे कि स्वामिनाथ ! जो उपद्रव करने वाला था उसको तो हमने दण्ड देकर समझा दिया इसलिए उपद्रव तो अब कुछ नहीं है परन्तु श्रावक लोग हम को चैन नहीं लेने देते हर समय बुलाते हैं घर का काम तराते हैं हम घड़ी भर भी चैन नहीं पाते हैं । इसलिए आप कृपा कर इस फन्दे से हमें छुड़ाओ, जो किसी का ऐसा ही काम होगा तो हम वहां बैठे ही कर देंगे । यह सुनकर गुरु महाराज कहने लगे कि तुम अपने स्थान को जाओ इस नाम से फिर मत आओ, नाम की स्थापना मिटाई, धरणेन्द्र पद्मावती अपने घर को गये, इस रीति से गाथा का भण्डार हो गया ।

कदाचित् कोई अपनी जिद्द करके गाथा का भण्डार ऐसे न माने तो गाथा प्रत्येक स्थान पर मिल जाती है, फिर उसके पढ़ने से धरणेन्द्र और पद्मावती क्यों नहीं आते हैं ? इसी विषय में हम दूसरा भी दृष्टान्त लिखते हैं—

जैसे किसी मनुष्य के देश, नगर ग्राम में उसके माता-पिता या नगर के लोग नाम लेकर बोलते थे परन्तु जब वह साधु हो जाता है, तब गुरु पहला नाम उठाकर दूसरा नाम देते हैं, तब वह प्रथम नाम से कदापि नहीं बोलता है । इसी रीति के अनुसार नाम का भण्डार मानो, ऐसे ही गाथा का भण्डार भी मानो ऐसे ही महादेव की कीलन भी जानो, व्यर्थ की बातों में विश्वास मत करो,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यह ठगों से बचने का हमारा मूल-मन्त्र पहचानो, जिससे कभी संकट न हो। इसी रीति से समाधि के भेद कहे गये हैं।

अब धारणा, ध्यान, समाधि किस को कहते हैं, तथा शास्त्रकार उसका भावार्थ क्या बताते हैं सो दिखाते हैं। पहले इनका शब्दार्थ बताते हैं।

ध्येय वस्तु को समझ कर उसको ज्ञेय, हेय, उपादेय रूप से धारे, अथवा हेय को छोड़कर उपादेय को धारे, उसका नाम धारणा है। ध्येय वस्तु को ठह-राना—उसमें मन को लगाना, उसका नाम ध्यान है। ध्यान से अधिक बाह्य वृत्तियों को त्याग कर आत्म स्वरूप में लग जाना, उसका नाम समाधि है।

अब "गोरक्षपद्धति' की रीति से धारणादि पहले दिखाते हैं। वहां धारणा ६ श्लोकों में कही है। इस जगह हम वहां के थोड़े आवश्यक श्लोक लिख कर दिखावेंगे। ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से अधिक नहीं लिख सकते।

"आसनेन समापुक्तः प्राणायामेन संयुतः।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो, धारणाञ्च समभ्यसेत् ॥ ५२ ॥

हृदये पञ्च भूतानां, धारणा च पृथक् पृथक्।
मनसो निश्चलत्वेन, धारणा साऽभिधीयते ॥ ५३ ॥

कर्मणा मनसा वाचा, धारणाः पञ्च दुर्लभाः।
विज्ञाय सततं योगी, सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ॥ ६० ॥

अर्थ—आसन का और प्राणायाम का साधन स्थिर करके इन्द्रिय वृत्ति को रोकने की सामर्थ्य होने के बाद धारणा का अभ्यास करे। हृदय में मन और प्राण को निश्चल करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्च-भूतों को पृथक्-पृथक् धारण करना उसका नाम धारणा है।

इसके आगे जो श्लोक हैं, उन सब में पांचों तत्त्वों का बीज सहित और देवता समेत चक्रों में ध्यान करना कहा है अथवा हृदय में ध्यान करना कहा है वह उस पुस्तक से देखो। जो कर्म अर्थात् अनुष्ठान से, मन के चिंतन से, वचन अर्थात् शास्त्र-संज्ञा के प्रमाण मानने से निरूपण कर पांचों धारणाओं को जानकर अभ्यास करता है वह सर्व दुःखों से मुक्त होता है, यह धारणा हुई।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

ध्यान का वर्णन

ध्यान के विषय में उक्त ग्रन्थ में बीस श्लोक हैं। यहां भी हम आगे पीछे के श्लोक लिखकर मतलब दिखा देते हैं।

"स्मृत्येव धर्म चिन्तायां, धातुरेक: प्रपद्यते।
यच्चित्ते निर्मला चिन्ता, तद्धि ध्यानं प्रचक्षते॥ ६१॥
अश्वमेधसहस्राणि, वाजपेयशतानि च।
एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ६२॥

अर्थ—'स्मृ' धातु चिन्ता समान्य का वाचक है। सो चित्त में योग-शास्त्रोक्ति प्रकार से हृदय को निर्मल करके आत्म तत्त्व का स्मरण करना ध्यान कहाता है। आगे के श्लोकों में कुल चक्रों का ध्यान कहा है सो उस ग्रंथ से देखो। अन्तिम श्लोक का अर्थ यह है कि सहस्रों अश्वमेघ, सैकड़ों वाजपेय यज्ञों का फल भी केवल एक ध्यानावस्था के फल का सोलहवां अंश (हिस्से) के समान भी नहीं है, अर्थात् यज्ञादि साधनों में भी श्रेष्ठ ध्यान योग है।

समाधि का वर्णन

यह समाधि उक्त ग्रन्थ में १५ श्लोकों में कही है। सो जो-जो श्लोक मुख्य दिखाने योग्य हैं, उनको लिखकर दिखाते हैं—

"उपाधिश्च तथा तत्त्वं, द्वयमेतदुहाहृतम्।
उपाधि: प्रोच्यते वर्णस्तत्त्वमात्माभिधीयते॥ ८१॥"

अर्थ—आत्मा के प्रकाश होने वाले को उपाधि तथा आत्मचैतन्य को तत्त्व कहते हैं।। उपाधि और तत्त्व ये दोनों विचार्य हैं। उपाधि प्रणव रूप वर्ण "ओं" है। तत्त्व आत्मा कहता है।

"उपाधेरन्यथा ज्ञानं तत्त्व संस्थितिरन्यथा।
समस्तोपाधि विध्वंसी, सदाभ्यासेन जायते॥ ८२॥"

अर्थ—उपाधि से यथार्थ वैषयिक अन्य ही है अर्थात् वह विपरीत बोधक है। जैसे स्फटिक तो स्वच्छ श्वेतमात्र है, परन्तु उसमें लाल, पीला, नीला आदि रंग, उपाधि के सम्बन्ध से उसी रंग के समान होता है, वैसे ही शरीर सेभिन्न निर्विकार शुद्ध आत्मा, विषय वासनाओं के संसर्ग से "अहं सुखी"

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

"अहं दुःखी" इत्यादि अभिमान करता है । जब अपनी निर्मल बुद्धि से उपाधि पृथक् माने तब आत्मस्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है । जैसे रक्तादि रंग के संसर्ग से स्फटिक भी वैसा ही मालूम होता है परन्तु बुद्धि से जाने कि स्फटिक तो शुक्ल ही है, किन्तु रक्तादि रङ्ग रूप उपाधि विकार से मिथ्या रंग देखा जाता है वेसे ही इन्द्रिय धर्मों से व्याप्त भी जीवात्मा यथार्थ आनन्द से अद्वैतानन्द स्वरूप है। सुख-दुःख का इसमें सम्बन्ध नहीं है । जब ऐसा ज्ञान योगाभ्यास से होता है तब योगी उपाधि जाल का विनाश करने में समर्थ होता है ।

"शब्दादीनाञ्च तन्मात्रं, यावत्कर्णादिषु स्थितम् ।
तावदेवं स्मृतं ध्यानं, समाधिः स्यादतः परम् ।। ८३ ।।"

अर्थ—ध्यान एवं समाधि का अवस्था भेद कहते हैं कि ध्यानावस्था में स्थिर रहते योगी के कर्णादि इन्द्रियों में शब्दादि विषयों का सूक्ष्म भाग जब तक प्राप्त होता है, तब तक ही ध्यानावस्था रहती है । जब आत्मा में पञ्चेद्रिय वृत्ति लीन हो जाये, तब आत्मा में अर्थ मात्र के भान वाली अवस्था समाधि कहलाती है ।

"यत्सर्वद्वन्द्वयोरैक्यं, जीवात्मपरमात्मनोः ।
समस्तनष्ठसंकल्पः समाधिः सोऽभिधीयते ।।८५।।
अम्बुसैन्धवयोरैक्यं, यथा भवति योगतः ।
तथात्म-मनसोरैक्यं, समाधिः सोऽभिधीयते ।।८६।।
यदा संक्षीयते प्राणो, मानसञ्च प्रलीयते ।
यदा समरसत्वञ्च, समाधिः सोऽभिधीयते ।।८७।।
न गन्धं न रसं रूपं, न च स्पर्शं न निःस्वनम् ।
नात्मानं न परं वेत्ति, योगी युक्तः समाधिना ।।८८।।"

अर्थात्—भूख-प्यास, शीत-उष्ण, सुख-दुःखादि द्वन्द्व कहाते है । इन से पीड़ा तथा उद्वेग न होने का नाम ऐक्य है । इस अवस्था को पाकर जीवात्मा-परमात्मा को कारण मात्र रूप से एक जानना, समस्त मानसी तरंगों से रहित होना, समाधि कहलाती है ।

जीवात्मा तथा परमात्मा के, तथा आत्मा और मन के—एक न होने से

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सिद्धि नहीं होती । इसलिये दृष्टान्त सहित दिखाते हैं, कि जैसे जल में सैंधा नमक (लवण) देने से दोनों का ऐक्य दीखता है, वैसे मन बाह्य विषयों से विमुख हो और अन्तर्मुख आत्माकार-वृत्ति होकर आत्मा और मन का ऐक्य होता है, ऐसे जीवात्मा परमात्मा के एकपन को समाधि कहते हैं ।

मन और प्राण को एकत्र करके स्थिर रूप से आत्मा की भावना करने वाले योगी का जब प्राण वायु आत्मा में ही लीन हो जाता है, तब अन्त:करण लीन होता है, जल और सैन्धव की तरह जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता होती है, इसको ही समाधि कहते हैं ।

योगी की समाधि में रहने की अवस्था कहते हैं । जो योगी समाधि में एकत्व को प्राप्त हो जाता है, उसकी सब इन्द्रियां मन में लीनता को प्राप्त हो गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, इन पांचों विषयों को नहीं जानतीं । कोई वस्तु को अपनी वा पराई कुछ नहीं जानता, जीवात्मा तथा परमात्मा को पृथक् नहीं मानता, एक ही समझता है; इस प्रकार ध्यान में लीन होने से और किसी प्रकार का भान नहीं होता ।

इस रीति से समाधि कही, यह वर्णन गोरक्षपद्धिति का है । इस में जो भाषा लिखी गई है, वह बेंकटेश्वर छापाखाने की पुस्तक छपी हुई है, उसके अनुसार हमने लिखा है, अपनी तरफ से श्लोकों का अर्थ नहीं बनाया है; यह पाठकों को ध्यान रहे ।

अब हम इन तीन अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में जो न्यूनाधिकता है, सो पाठकों को दिखाते हैं । जो धारणा में ध्येय का स्वरूप कहा है, उस ध्येयरूप धारणा को करेगा, तो आत्म-स्वरूप कदापि न मिलेगा, क्योंकि उस धारणा में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, और चक्रादि को ध्येयरूप मान-कर धारणा करना यह आत्म-स्वरूप न हुआ । किन्तु प्रकृति रूप अर्थात् माया पुद्गलरूप धारणा हुई, जिससे आत्म स्वरूप मिलना असम्भव है । हां, इस ध्येयरूप धारणा से ध्यान करे तो सिद्धियों का कारण-भूत युंजान् योग अर्थात् पिण्डस्थ ध्यान होगा न कि आत्म-स्वरूप की इच्छा वालों के वास्ते जो ध्येय रूप धारणा है, उसे आगे कहेंगे । इस जगह' तो जिस ग्रन्थ के अनुसार कहते हैं, उसी का दिखाना ठीक है । जब धारणा ठीक न हुई, तब ध्यान किसका

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

करे ? इस रीति के धारणा-रूप ध्यान से आत्म-समाधि कदापि न बनेगी। और समाधि मन की तरंगों का न होना, और मन का आत्माकार-वृत्ति होकर कुछ भी दशा नहीं जानता, यह जो ८८ नम्बर के श्लोक में कहा है यह बात असम्भव है, क्योंकि आत्म-समाधि वाले को त्रिकाल का ज्ञान होता है, और अपने को अपने स्वरूप का साक्षात्कार होता है, वैसे ही परवस्तु भी अव्यवहित होने पर भी प्रतीत होती है, इसी का नाम सर्वज्ञ है। "स्वद्रष्टा" ऐसा योग-दर्शन में पतंजली ऋषि भी कहते हैं, इसलिये आत्मसमाधि में स्थित को सर्वज्ञ मानो, स्व-पर का अनजान मत पहिचानो। अस्तु।

अब श्रीपतंजलि ऋषि के योग'दर्शन के अनुसार धारणा, ध्यान और समाधि को दिखाता हूं।

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (३१) पदार्थ (देशबन्धः) नाभि आदि स्थानों में स्थिर करना, (चित्तस्य) चित्त की (धारणा)धारणा कहलाती है। भाषा—चित्त को नाभि आदि स्थानों में स्थिर करने का नाम धारणा है।

व्यासदेव का भाष्य—नाभिचक्रे हृदय-पुण्डरी के मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्रे इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति बन्धो धारणा ॥१॥ भाष्य का पदार्थ—(नाभिचक्रे) नाभि स्थान में (हृदय-पुण्डरीके) हृदय कमल में (मूर्ध्नि) कपाल में (ज्योतिषि) भ्रूमध्य में, (नासिकाग्रे) नासिका के अग्रभाग में (जिह्वाग्रे) जिह्वा के अग्रभाग में (इत्येव-मादिषु देशेषु) इत्यादि स्थानों में (बाह्येवा विषये) अथवा बाह्य विषयों में (चित्तस्य) चित्त का (वृत्तिमात्रेण बन्धः) वृत्तियों के द्वारा स्थिर होना (इति बन्धो धारणा) यह स्थिर होना धारणा कहलाती है।

भाष्य का भावार्थ—नाभि आदि अन्तर्देशों में या बाह्य देशों में वृत्ति के द्वारा जो चित्त को स्थिर किया जाता है, उसको धारणा कहते हैं।

सूत्र विवेचन—बाह्य विषय का अभिप्राय यह है, कि इन्द्रियों के जो रूपादि स्थूल अर्थात् तन्मात्रा है, उनमें चित्त को लगाना भी धारणा शब्द का वाच्य है। आजकल जो हठयोग वाले षट्चक्र-भेदन का अभ्यास किया करते हैं, वे भी इसी सूत्र के अभ्यास से करते हैं। और थियोसाफिष्ट इसी सूत्र से बाह्य विषय अर्थात् किसी बिन्दु-विशेष या वस्तु-विशेष में चित्त के लगाने का अभ्यास

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

किया करते हैं। परन्तु यह सब क्रिया योगियों को हानि पहुंचाती है।

ध्यान का वर्णन

सूत्र—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥२॥

अर्थ—(तत्र) नाभि आदि स्थानों में (प्रत्ययैकतानता) ज्ञान की स्थिरता, जो अन्य उपायों से प्राप्त नहीं होती वह (ध्तानम्) ध्यान कहाता है।

सूत्र की भाषाटीका—नाभि आदि देशों में जो ध्येय का ज्ञान होता है उसको ध्यान कहते हैं।

व्यास का भाष्य (तस्मिन्देशे) उन नाभि आदि स्थानों में ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता) ध्येय के अवलम्बन के ज्ञान में लय हो जाना (असदृश: प्रवाह:) अनुपम ज्ञान का प्रवाह (प्रत्ययान्तरेण परामृष्ट:) और ज्ञान से जो सम्बन्ध रखता हो (ध्यान्म) उसे ध्यान कहते हैं॥२॥

भाषा का भावार्थ—नाभि आदि स्थानों में ध्येय के ज्ञान में चित्त का लय हो जाना, और उसमें दूसरे ज्ञान का अभाव होना इमको ध्यान कहते हैं।

समाधि का वर्णन

सूत्र—तदेवार्थ मात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि : ॥३॥

अर्थ—(तदेव) वही ध्यान (अर्थमात्रनिर्भासम्) अर्थ मात्र रह जाय, (स्वरूपशून्यमिव) स्वरूप-शून्य सा प्रतीत हो, (समाधि:) उसको समाधि कहते हैं।

भाष्य का पदार्थ—(इदरत्र बोध्यम्) ऐसा यहां जाना चाहिये, (ध्यातृ-ध्येयध्यानकलनावद् ध्यानम्) ध्यान करने वाला और जिसका ध्यान किया जाय तथा ध्यान, इन तीनों का प्रभेद जिसमें प्रतीत हो, वह ध्यान कहलाता है। (तद्रहितं समाधि:) उस भेद से रहित को समाधि कहते हैं। (इति ध्यान-समाध्योर्विभाग:) यही ध्यान और समाधि में भेद है। (अस्य च समाधि-रूपस्यांग स्यांगियोगसंप्रज्ञातयोगादयं भेद:) इस समाधि रूप योगांग का अंगसम्प्रज्ञात-योग से यही भेद है, (यदत्र चिन्तारूपतया नि:शेषतो ध्येयरूपं न भासते) जिस समाधि में चिन्ता विनष्ट हो जाने के कारण ध्येय का स्वरूप प्रकाशित नहीं होता। (सम्प्रज्ञाते) सम्प्रज्ञात में, (साक्षात्कारोदये समाध्यविषया अपि विषया

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

भासन्ते) साक्षात्कार के उदय होने से समाधि के अगम्य विषय भी प्रतीत होते हैं, (तथा च साक्षात्कारयुक्त एकाग्रकाले संप्रज्ञातयोगः (साक्षात्कार के उदय होने से समाधि के अगम्य विषय भी प्रतीत होने लगता है। (प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमेव यदा भवति) ज्ञान स्वरूप से शून्य के समान हो जाता है। (ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते) ध्याता में जब ध्येय के स्वभाव का आवेश हो जाता है तब समाधि होती है ॥३॥

प्रथम पाद का तृतीय सूत्र लिखकर दिखाते हैं—

सूत्र—"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ॥३॥

अर्थ—(तदा तस्मिन्काले, काले देति दा प्रत्ययः, तच्छब्दो हि पूर्व-परामर्शकः) उस समय, (द्रष्टुः पश्यतीति द्रष्टा तस्य, दृशेस्तृच् इति दृशेः तृच् प्रत्ययः) देखनेवाले की अर्थात् निर्विकल्प समाधिस्थ जीव की, (स्वरूपेः स्वस्य रूपं स्वरूपं तस्मिन्) आत्म चिन्तन में, (अवस्थानम्, वस्थानं वा अव-तिष्ठति विचार्यते अनेनास्मिन्वेत्यस्थानम्, द्वितीयपक्षे भागुरिऋषेर्मतेनाकार-लोपः, पूर्वंतु ',एङः पदान्तादति" इति सूत्रेणाकारस्य पूर्वरूपत्वम्) बिचार किया जाय जिससे, उसको अवस्थान कहते हैं।

भाष्य का भावार्थ—जब सम्प्रज्ञात योग में चित्त की स्थिति हो जाती है, तब जीव केवल अपने स्वरूप का विचार और दर्शन करता है। जैसे कैवल्य-मोक्ष में ज्ञान शक्ति रहती है। उस शक्ति का साफल्य तब ही होता है, जब किसी ज्ञेय पदार्थ से सम्वन्ध हो। तब उस निर्विकल्प समाधि में ज्ञेय क्या है? इसका उत्तर यही है कि उस सम्प्रज्ञात योग में केवल अपना स्वरूप ही ज्ञेय है। क्योंकि जबतक द्रष्टा बाह्य स्वरूपों को देखता है तब तक वह अपने स्वरूप को नहीं जान सकता।

सूत्र—'वृत्तिसारूप्यमितरत्र" ॥४॥

भावार्थ—निरुद्धावस्था के अतिरिक्त जौर दशाओं में चित्तवृत्ति के रूप को धारण कर लेता है"।

इस रीति से पातंजल योगसूत्र का लेख दिखाया, परन्तु धारणा में ध्येय वस्तु का यथावत् स्वरूप न आया। जब धारणा यथावत् न हुई तो ध्यान भी

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यथावत् न होगा। और समाधि का स्वरूप तो ठीक है; परन्तु धारणा और ध्यान के ठीक न होने से समाधि में भी भ्रम होता है। परन्तु प्रथम पाद के तृतीय सूत्रानुसार अपने स्वरूप को देखना यह समाधि का यथावत् लक्षण बनता है। विशेष पातंजल योग-दर्शन में देखो, इस जगह तो प्रक्रिया मात्र दिखाई है। प्रथक्-प्रथक् प्रक्रिया होने से अनेक तरह के भ्रम उत्पन्न होते हैं। जब तक रहस्य बताने वाला यथावत् गुरु न मिले, तब तक यथावत् रहस्य प्राप्त होना कठिन है और बिना यथावत् गुरु के कर्ता का अभिप्राय भी नहीं मिलता। उस अभिप्राय के मिले बिना जिज्ञासु की शंका दूर नहीं होती जब तक शंका दूर न होगी, तब तक विश्वास न होगा, तथा बिना विश्वास के यथावत् प्रवृति नहीं होती, और बिना यथावत् प्रवृत्ति के उसका फल नहीं होता। इसलिये हमारा सज्जन पुरुषों से कथन है कि विवाद को छोड़कर बुद्धि-पूर्वक विचार-कर पदार्थ में अपेक्षा-सहित वस्तु का ग्रहण करना, और एकान्त को न खींचना, तब ही कार्य की सिद्धि होगी। एकान्त का खींचना है सो ही अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्व है; इसलिये स्याद्वाद को अंगीकार करना चाहिये।

वर्तमान समय में तो स्याद्वाद मतवाले भी एकान्त खींचते हैं, क्योंकि हुण्डावसर्पिणी काल, पंचम आरा और असंयतीकी पूजा इत्यादि कारणों से दुःख गर्भित सम्प्रदाय, गच्छादिक की मारा मारी में जाति कुल के जैनियों में झगड़ा कर एकान्त पक्ष को थापने लगे। जब आपस में ही स्याद्वादी नाम धरा कर एकान्त खींचने लगे हों और दूसरों को एकांत कहकर विरोध दिखावें उसमें तो कहना ही क्या? परन्तु १५ भेद सिद्धों के होने से अनुमान होता है कि वीतराग सर्वज्ञ देव का किसी से विरोध न था और उन्होंने जैसा अपने ज्ञान में देखा वैसा ही कहा, इसलिए वे वीतराग हैं और सबकी अपेक्षा को वे अपने ज्ञान में जानते हैं। इसलिये सब पर समता भाव लाना, किसी से विरोध न करना—न कराना, उसके वचन को सुन उसकी अपेक्षा से उसको समझाना, मूढ़ता को निकालकर शुद्धमार्ग पर लाना, यही सर्वज्ञों का फरमाना है, उसकी अपेक्षा को छोड़कर झगड़ा न मचाना और स्याद्वादमत के अनुसार अपने दिल को ठहराना चाहिए। सर्वज्ञों के कथन में विवाद इसीलिए नहीं है, कि वे सर्व की अपेक्षा जानते

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हैं और जब कोई सर्वज्ञ मतवाले के पास में आता है, उस आने वाले को उसकी वास्तविक अपेक्षा से समझा देते हैं। जो अपेक्षा को नहीं समझाने वाले हैं, उन्हीं से झगड़ा होता है। सो सर्व मतावलम्बी एक-एक अपेक्षा को लेकर एकांत पकड़ बैठे हैं, इसीलिए झगड़ा हो गया है किन्तु मुझे तो सर्व मतानुयायी इस स्याद्वाद सर्वज्ञ मत से बाहर कोई नहीं दीखता है।

श्री आनन्दघनजी महाराज ने २१वें श्रीनमीनाथ जी के स्तवन में षड्दर्शनों का अंग-उपांग मिलाकर श्री नमीनाथ जी का शरीर बनाया है। मैं इस जगह किंचित् एकता करके दिखाता हूं। जैन मत में मुख्य दो पदार्थों की मान्यताहै जीव और अजीव। इन दो पदार्थों के अनेक भेद करके जिज्ञासुओं को समझाया है। इन दो पदार्थों से अतिरिक्त पदार्थ को मानने वाला कोई नहीं है। कोई जीव को एक ही मानता है, कोई अनेक। कोई अजीव को मानता है, कोई दोनों को मानता है। इससे बाहर कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।

वेदान्ती अद्वैत अर्थात् एक ब्रह्म को मानता है, तो देखो श्री ठाणांग जी के पहले ठाने में "एगे आया" ऐसा पाठ है, तो देखो एक कहने से अद्वैत सिद्ध हो गया। दूसरा सर्वज्ञों ने ऐसा भी फरमाया है, कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य ये चार गुण और असंख्यात प्रदेश जीव के हैं वे भव्य, अभव्य, सिद्ध और संसारी सर्व के बराबर हैं। वे चार गुण और असंख्यात प्रदेश किसी के न्यूनाधिक नहीं। इस रीतिसे कहना और आपस में अन्तर न होना, इस अपेक्षा से अंगीकार करे तो अद्वैतवादी से कुछ विरोध नहीं। सामान्य अपेक्षा से उसने भी सर्वज्ञ विरुद्ध कथन नहीं किया। इस "एगे आया" शब्द को लेकर अद्वैत को लेकर अद्वैत को सिद्ध कर दिया।

नैयायिक जो कर्ता मानता है, सो एक अंश में उसका कर्तापन भी सिद्ध होता है, क्योंकि यह जीव अपने स्वभाव का कर्ता है। यदि यहां कोई ऐसी शंका करे, कि नैयायिक तो सृष्टि का कर्ता मानता है, तो हम कहते हैं, कि जीव अनादि काल से सृष्टि का कर्ता बना हुआ है। इसलिए कुछ दोष नहीं प्रतीत होता। कदाचित् कोई यह कहे, कि वह तो ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानता है। तो हम कहते हैं, कि वह सृष्टि का निमित्त कारण मानता है,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

परन्तु उपादान कारण तो और पदार्थ को ही मानता है। यदि कोई ऐसा कहे, कि जैन में तो निमित्त-कारण कोई ईश्वर है नहीं। इसका समाधान ऐसा है कि "स्याद्वाद अनुभव रत्नाकर" हमारा रचा हुआ है, उसमें जो नैयायिक मत दिखाया है, वहां जीव और ईश्वर की एकता कर दिखाई है, सो देखो।

इस जगह ऐसी शंका होती है, कि कर्तापन का विरोध मिटा, परन्तु निमित्त कारण ईश्वर का समाधान न हुआ। इसका उत्तर ऐसा है कि इस सृष्टि के रचने में तथा जन्म-मरण करने में जीव निमित्त कारण है, क्योंकि निश्चय अर्थात् नियम-पूर्वक जीव अपने गुण का कर्ता है और जन्म, मरण आदि का कर्ता नहीं, क्योंकि जन्म-मरणादि सुख-दुःख पौद्‌गलिक हैं, सो निश्चय नय करके उपादान पुद्‌गल कर्ता है और जीव निमित्त है। यदि उसको उपादान कारण मान लेंगे, तब तो जीव का अभव्यादि स्वभान न रहेगा। जब अभव्यादि स्वभाव जीव में न रहा तो अजीव हो जाएगा। इस रीति से निमित्त भी बन गया।

अब यहां यह सन्देह होता है, कि नैयायिक तो नाना ईश्वर नहीं मानता है। तो हम कहते हैं, कि नैयायिक ने आत्मा एक मानी है, इसको जहां द्रव्य की गणना की है, वहां पर देखो। हमने तो विरोध मिटाकर झगड़ा मिटा दिया। अब इस जगह यह सन्देह होता है, कि नैयायिक मोक्ष में आत्मा को जड़वत् मानता है, तब विरोध कहां मिटा? उत्तर—नैयायिक जो जड़वत् मानता है, उसका कारण यह है कि मोक्ष में हिलना, चलना, इशारा करना, शब्द-उच्चारणादि कुछ नहीं है, इसलिए उसकी समझ के अनुसार कहता है, क्योंकि किसी ने यह दोहा ठीक ही कहा है।

"जितनी जाकी बुद्ध है, उतनी कहे बनाय।
बुरा न ताका मानिये, लेन कहां से जाय ?।"

सांख्यवादी कहता है कि "पुरुषः पलाशवत्"—पुरुष ढाक के पत्ते की तरह है, अर्थात् जैसे ढाक के पत्ते के ऊपर पानी पड़ता है, परन्तु भीतर प्रविष्ट नहीं होता, इसी प्रकार पुरुष अर्थात् आत्मा में प्रकृति का लेप नहीं है। वेदान्ती भी ब्रह्म को कूटस्थ, सच्चिदानन्द रूप मानते हैं, माया की उपाधि में सर्व प्रपंच हो रहा है। तब देखो सर्वज्ञ वीतरागने भी अपने ज्ञान में देखा कि

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जीव के असंख्यात प्रदेशों को कर्मों की वर्गणा ने आच्छादन किया है, जैसे सूर्य को बादल आच्छादित कर लेता है, वैसे ही जीव को कर्मों ने आच्छादित कर रखा है। परन्तु जीव और कर्म का मेल नहीं, इस आशय को लेकर सांख्य कहता है कि पुरुष (आत्मा) निर्लेप है।

प्रश्न—आपने यह बतलाया कि जिस प्रकार मेघ सूर्य को आच्छादित कर देता है, इसी प्रकार कर्म जीव को आच्छादित कर देते हैं। परन्तु शास्त्रों में जीव की कर्मों के साथ क्षीर-नीर (जैसे दूध और जल मिलने से एक रूप दीखते हैं) की तरह एकता कही है।

उत्तर—हे देवानुप्रिय! तुमने शास्त्र का नाम सुन लिया है, परन्तु शास्त्रकारों के रहस्य को नहीं जानते हो। यदि गुरुगम से शास्त्र-श्रवण किया होता, तो इस प्रकार का कुतर्क तुम्हारे चित्त में नहीं उत्पन्न होता। दुःख-गर्भित वेषधारियों को विसराओ, अध्यात्मी गुरु को पाओ, तो फिर ऐसे विकल्प न उठा पाओगे, स्याद्वादमय जैनधर्म के रहस्य को हृदयमें जमाओ। जैसे बादलसूर्य का आच्छादन करता है, वैसे ही कर्म जीवका आच्छादन कर देते हैं, ऐसा श्री पन्नवणा सूत्र में कहा है, हमने कुछ मनःकल्पित नहीं कहा और तुमने जो क्षीर-नीर का नाम लिया, उस क्षीर-नीर-न्याय को भी आचार्य कहते हैं। उन आचार्यों का अभिप्राय ऐसा है कि जीव और कर्म का संयोग-सम्बन्ध होने से तदाकार होकर, वे क्षीर-नीर-न्याय से रहते हैं, क्योंकि दूध और जल संयोग-सम्बन्ध से तदाकार स्थूल बुद्धि वालों को दीखते हैं, परन्तु आपस में पृथक्-पृथक् हैं, क्योंकि संयोग-सम्बन्ध वाली वस्तु समवाय सम्बन्ध के अनुसार कदापि नहीं हो सकती। देखो, दूध और जल मिलाकर चूल्हे पर गर्म करो तो जब तक जल है, तब तक दूध न जलेगा, केवल जल ही जलेगा, यह अनुभव बुद्धिमानों को प्रत्यक्ष हो रहा है। यदि दोनों एक ही होते तो दोनों को ही जलना चाहिए था। इसलिए उन आचार्यों को क्षीर-नीर-न्याय, जीव-कर्म के सम्बन्ध में कहना तो लोलीभाव से है। जो कुछ मेरी बुद्धि में आया वह मैंने पाठक गण को लिखकर दिखा दिया। इस मेरे कथन में जो वीतराग की आज्ञा से विरुद्ध हो तो मैं मिथ्या दुक्कड़ (दुष्कृत) देता हूं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मीमांसा में कर्मों की मुख्यता मानी गई है, सो किसी अपेक्षा से उसका भी कथन ठीक है, क्योंकि जैन सिद्धांतों में भी कर्म के वश पड़ा हुआ जीव नाना प्रकार के नाच नाचता है और कर्म का कर्त्ता कर्म ही है। इसी आशय से मीमांसा कर्म की मुख्यता मानता है।

बौद्धमत वाला पदार्थ को क्षणिक मानता है, सो बौद्ध भी इस स्याद्वाद सर्वज्ञ के आशय का अंश लेकर क्षणिकता का अंगीकार करता है, क्योंकि सर्वज्ञ वीतराग ने सर्व पदार्थ को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य-युक्त कहा है; उत्पाद अर्थात् उत्पन्न होना, व्यय—अर्थात् विनाश होना और ध्रौव्य स्थिर रहना कहाता है। सो इस उत्पाद-व्यय की अपेक्षा से बौद्ध ने क्षणिकता को अंगीकार किया है।

इस रीति से आस्तिकों का विरोध मिटाया, जैन सिद्धांत से विरुद्ध न लिखाया, स्याद्वाद्व सिद्धांत का रहस्य दिखाया, अपेक्षा से हमने सबको एक मिलाया, १५ भेद से सिद्ध होना सर्वज्ञ ने फरमाया। क्योंकि जैन मत में नय का समझना बहुत आवश्यक है और अपेक्षा का समझना भी बहुत जरूरी है। जब तक अपेक्षा और नय को न जानेगा, तब तक जैन-धर्म को भी न समझे। बिना जैन-धर्म समझे रागद्वेष न मिटावेगा, शान्ति बिना वेष को लजावेगा, दुःख से वैराग्य लेकर लोगों को लड़ावेगा, आपस में राग-द्वेष करावेगा, लोगों का माल खाकर अपने को पूजावेगा, इसीलिये वह अपना अनन्त संसार बढ़ावेगा। खेद का विषय तो यह है कि स्याद्वादी जैनधर्म में भी सम्प्रदाय तथा गच्छादि मत-भेदों ने अड्डा जमा लिया है और कदाग्रह में जकड़ कर एकांतवाद अपनाकर वीतराग सर्वज्ञ के मत की खिल्ली उड़ा रहे हैं।

अब श्री वीतराग सर्वज्ञदेव ने जिस रीति से ध्येय का स्वरूप कहा है, उसके अनुसार ध्येय का स्वरूप बतलाते हैं। उस ध्येय का ज्ञान-सहित विचार करके जो हेय अर्थात् छोड़ने योग्य है उसको छोड़े और जो उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य हो उसको ग्रहण करे। उस ग्रहण किये हुए को धारणा में लावे, उस धारणा के ध्यान के बाद समाधि होगी। इसलिये अब हमको पदार्थों का कहना आवश्यक हुआ, क्योंकि जब तक पदार्थ का वर्णन न करेंगे, तब तक आत्म-रूप ध्येय का बोध कदापि न होगा, पदार्थ के ज्ञान में

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रतिपक्षी का जानना आवश्यक है; कहा भी है "पदार्थज्ञाने प्रतिपक्षीनियामकः"। इसलिए जब आत्मरूप ध्येय की धारणा करनी है, तो अनात्मा जो हेय पदार्थ हैं उसका आत्मा से भिन्न दिखाकर त्याग करावे और आत्मा को ही ध्येय रूप धारणा से ध्यान करावे तो समाधि प्राप्त होगी। क्योंकि आत्मा से अनात्मा का अनादि संयोग है। इसलिए जब आत्मा और अनात्मा दोनों का स्वरूप दिखाकर अनात्मा में ग्लानि उत्पन्न करा दे और आत्मा में रुचि करावे तब उस आत्मा रूप ध्येय की धारणा यथावत् सिद्ध होगी, क्योंकि बिना ग्लानि के दूसरी जगह रुचि नहीं होती। इसलिए यहां एक दृष्टान्त ग्लानि और रुचि पर दिखाते हैं।

एक नगर में एक बहुत मातवर धनाढ्य साहूकार रहता था। उसका नाम लक्ष्मीसागर था। उसके एक पुत्र था। वह बालक अति सुन्दर तथा चतुर था और व्यापार, बातचीत, उठना, बैठना आदि सब बातों में लायक और बुद्धिमान् था। परन्तु उसमें एक दोष यह था कि वह वेश्या-गमन करता था। इस व्यसन के होने से उसने लाखों रुपये खर्च कर दिये। यह दोष उसके पिता को विदित हो गया, तब उसने इसके दूर करने के लिये अनेक प्रयत्न परोक्ष में किए जिससे कि यह दोष दूर हो जाए और उसको मालूम पड़े। परन्तु उस लड़के का व्यसन न छूटा, तब सेठ ने विचारा, कि इसके वास्ते कोई ऐसा उपाय करूं, जिससे इसको वेश्या के यहां जाने से ग्लानि हो तथा अपनी स्त्री में रुचि करे, तब इसका यह व्यसन छूटेगा। इसलिये अब मुझको उचित है कि इसको प्रत्यक्ष भेजूं, क्योंकि चोरी से जाने से बहुत खर्चा पड़ता है। यह विचार कर एक रोज़ अपने पुत्र से कहने लगा कि हे प्रिय पुत्र! जिस समय चार घड़ी दिन बाकी रहे उस समय तुम सैर करने को चले जाया करो और पहर डेढ़ पहर रात के व्यतीत हो जाने पर लौट आया करो, तुमको जितने रुपयों की आवश्यकता हो, उतने रोकड़िये से ले जाया करो। यदि इस आयु में ही मोज-शौक न करोगे तो फिर कब करोगे? क्योंकि धन का उपार्जन सुख भोगने के लिए ही किया जाता है। इसलिये तुम अपने दिल में किसी प्रकार की फिक्र न करो। ऐसा अपने पिता के मुख से सुनकर अपने चित्त में वह बालक बहुत प्रसन्न हुआ,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

क्योंकि पिता का भय भी जाता रहा। परन्तु सेठ अपने चित्त में उस लड़के के हृदय में ग्लानि उत्पन्न कराने के लिए उपाय सोचने लगा तथा उस लड़के को विश्वास दिलाने के लिए प्रतिदिन सायंकाल को चार घड़ी दिन रहने से ही वह सेठ अपने पुत्र से कह देता था कि तेरे भ्रमण का समय ही गया और यहकाम तो पीछे से भी होता रहेगा। इस रीति से जब दो चार महीने हो गए तब तो वह साहूकार का पुत्र वेश्या के यहां अधिक जाने लगा और नाच-रंग कराने लगा और रुपया खूब उड़ाने लगा। यार-दोस्तों को भी बुलाने लगा, क्योंकि पहले तो पिता का भय था और अब तो पिता ने आप ही जाने की आज्ञा दे दी थी। ऐसा करते-करते चन्द दिन व्यतीत हो जाने के बाद एक दिन उसके पिताने विचार किया, कि आज इस समय न जाने दूं और प्रातः समय इसको भेजूं, तो शायद इसको ग्लानि हो जाए। ऐसा विचार कर उस साहूकार ने उस दिन दूकान पर विशेष काम फैलाया और अपने पुत्र को फरमाया कि हे पुत्र! आज कुछ विशेष काम दूकान पर है। यदि आज यह दूकान का काम न होगा, तो विशेष हानि होगी, इसलिए आज तुम इस समय न जाओ, बल्कि इसके बदले प्रातःकाल सैर कर आना। यह सुनकर साहूकार का लड़का अपने दिल में विचारने लगा, कि यथार्थ में काम आज अधिक है। जो मैं चला जाऊंगा तो लाखों रुपयों की हानि होगी। यह विचार कर उस दिन न गया, काम-काज को समाप्त करके अपने घर जाकर सो गया। फिर उस साहूकार ने प्रातः समय, जबकि पीले बादल हुए, अपने पुत्र को जगाया और कहने लगा, कि तू कल सायंकाल को सैर करने नहीं गया था, सो इस समय सैर कर आ। उस समय वह साहूकार का पुत्र उठा और पिता के कहने से सैर करने को चल दिया। तब उस साहूकार ने घर में आकर अपनी स्त्री से कहा कि तू अपनी पुत्र-वधू-से कह दे कि जिस समय तेरा पति वेश्या के घर से आवे, उस समय तू उसका विशेष हाव-भाव से सत्कार करना, जिससे उसका वेश्या-गमन छूट जाए। इतना सुनकर वह स्त्री अपनी पुत्र-वधू को समझा आई। इधर साहूकार का पुत्र जिस वेश्या के पास जाता था, उसके पास पहुंचा और जिसका रूप सायं-काल को देखकर मोहित होता था, सो प्रातःकाल उसको सोती हुई देखकर

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मोहित होना तो दूर रहा, प्रत्युत ग्लानि होने लगी; क्योंकि सायंकाल को तो उसका स्वरूप अच्छा मालुम होता था और प्रातःकाल को उस वेश्या के केश तो बिखरे हुए थे और आंखों में गीढ़े आ रही थीं तथा मुख काजल से काला हो रहा था, रात्रि को पान खाने से होठों पर काली पपड़ी जमी हुई थी, मैले-कुचैले कपड़े पहने हुई डाकिन की तरह सो रही थी, अपने रूप को खो रही थी, उस समय देखने वालों को दुखदाई हो रही थी।

इस रीति का हाल उस वेश्या का देखकर साहूकार के पुत्र के चित्त में ग्लानि उत्पन्न हुई और कहने लगा कि हाय-हाय! इन चूड़ैलों के पीछे मैंने लाखों रुपये निष्फल व्यय किये, इन डाकनियों ने सायंकाल को कपट कर मेरे को मोहित किया तथा मुझको अपनी आबरू से भी खोया, अब मैंने इनका चुडैलपन का हाल पा लिया, इसलिये मेरा दिल भी इनसे भर गया। अब कदापि इनके पास न आऊंगा, अपने धनको भी बचाऊंग। मनुष्यों में अपयश भी न उठाना, बड़ों के नाम को न लजाना, अपने मान को बढ़ाना ही उचित है। ऐसा विचार कर अपने घर को चला आया, उसको आता देखकर उसकी स्त्री मुसकराने लगी और दोनों की चार नजर होते ही उस साहूकार के पुत्र को अपनी स्त्री के ऊपर ऐसा अनुराग हुआ कि उन वेश्याओं को भूल गया और उनके जाने का पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने ऐसी रूपवती, सुशीला और आज्ञाकारिणी अपनी पत्नी को छोड़कर उन डाकिनियों की संगति में पड़कर अपना अपयश किया। यह सोचकर उसने अपने चित्त में प्रतिज्ञा की; कि आज से मैं वेश्या के यहां न जाकर घर पर ही चित्त लगाऊंगा। इस प्रतिज्ञा को करके अपने वाणिज्य-व्यापार में प्रवृत्त हुआ।

जब सायंकाल हुआ तो उस लक्ष्मीसागर सेठ ने कहा, कि हे पुत्र! अब इस काम को छोड़ो, क्योंकि पर्यटन का समय हो गया है, इसलिए पर्यटन करने के वास्ते जाओ। उस समय वह लड़का चुप हो गया। फिर कुछ काल के बाद साहूकार ने कहा, कि हे पुत्र! तुम निःसंदेह जाओ, क्योंकि यह तुम्हारी आयु आनन्द उठाने की है, तथा घर में धन भी बहुत है, इसलिये तुम किसी बात की चिन्ता न करो।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

यह सुनकर साहूकार का पुत्र कहने लगा कि हे पिताजी ! अब मैं वेश्याओं के यहां न जाऊंगा, क्योंकि मुझको वहां जाने से ग्लानि उत्पन्न होती है, इसलिए मेरा चित्त वहां जाने को नहीं करता है। आप मुझको शरमिन्दा न करें, मुझको वहां जाने से लज्जा आती है, तथा उनके यहां जाना मुझको दु:ख देता है। यह वृत्तान्त अपने पुत्र के मुख से सुनकर उस साहूकार ने चित्त में विचार किया कि मेरा उपाय तो सफल हो गया, क्योंकि इसका चित्त उनसे हट गया। फिर वह लड़का वेश्या के स्थान पर कभी नहीं गया, और वेश्या-गमन के व्यसन को छोड़कर अपने घर में संतोष किया।

इस दृष्टान्त का दार्ष्टान्तिक अर्थ पाठक गण को समझाते है, कि जैसे उस साहूकार ने वेश्या-गमन छुड़ाने के अनेक प्रयत्न किये, परन्तु ग्लानि के अतिरिक्त कोई उपाय सफल न हुआ। इसी रीति से जब तक आत्मा का स्वरूप जानकर अनात्मा में ग्लानि न होगी, तब तक आसन, प्रणायाम, मुद्रा, कुम्भक, चक्रादि कितने ही उपाय करो, कदापि अनात्मा न छूटेगी। इसलिए जब अनात्मा-रूप ध्येय में ग्लानि होकर हेय होगा, उस समय रुचि-रूप आत्मा को उपादेय अर्थात् ग्रहण करेगा। इसलिए पदार्थ का कहना आवश्यक मालूम होता है, सो पदार्थ दिखाते हैं।

पदार्थ-निरूपण

श्री वीतराग सर्वज्ञ देव ने दो पदार्थ बताये हैं—जीव और अजीव। इन दो पदार्थों के छ: द्रव्य होते हैं, जिसमें एक तो जीव द्रव्य है, और पांच अजीव द्रव्य हैं, जिसमें भी चार तो मुख्य हैं, और एक उपचार से हैं। सो इनके नाम गिनाते हैं १ आकाशास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय, ३ अधर्मास्तिकाय ४ पुग्दलास्तिकाय, ये चार तो मुख्य हैं और पांचवां काल द्रव्य उपचार से है।

इन छ: द्रव्यों के गुण और पर्याय गिनाते हैं। प्रथम जीव द्रव्य के चार गुण और चार पर्याय ये हैं। गुण—१ अनन्त ज्ञान, २ अनन्त दर्शन, ३ अनन्त चारित्र, ४ अनन्त वीर्य। पर्याय—१ अव्याबाध, २ अनवगाह, ३ अमूर्तिक, ४ अगुरुलघु।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

आकाशास्तिकाय के गुण-पर्यायों का वर्णन

गुण—अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ अवगाहना-दान। पर्याय—१ स्कंध २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरुलघु।

धर्मास्तिकाय के गुण-पर्याय

गुण—१ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ गति-सहायता। पर्याय—१ स्कन्द २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरुलघु।

अधर्मास्तिकाय के गुण-पर्याय

गुण—१ अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ स्थिति सहायता। पर्याय—१ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश, ४ अगुरुलघु।

पुद्गलास्तिकाय के गुण-पर्याय

गुण—१ रूपी, २ अचेतन, ३ सक्रिय, ४ पूरण-गलन-बिखरन-सड़न। पर्याय—१ वर्ण, २ गन्ध, ३ रस, ४ स्पर्श अगुरुलघु सहित।

कालद्रव्य के गुण-पर्याय

गुण -अरूपी, २ अचेतन, ३ अक्रिय, ४ नया-पुराना-वर्तना लक्षण। पर्याय—१ अतीत, २ अनागत, ३ वर्तमान, ४ अगुरुलघु।

ये छः द्रव्यों के गुण पर्याय कहे। ऊपर लिखी रीति से छओं द्रव्यों को जाने और इसमें से पांच प्रकार के अजीव को छोड़कर एक जीव द्रव्य को ग्रहण करे। इसका विशेष विस्तार तथा खण्डन-मण्डन सिद्धान्तों में बहुत लिखा है। तथा 'द्रव्य अनुभवरत्नाकर' ग्रंथ हमारा रचा हुआ है, उसमें आदि से लेकर अन्त तक सर्व द्रव्यों का ही प्रतिपादन किया है, सो वहां देखो। यहां पर ग्रंथ विस्तृत हो जाने के भय से विस्तार से नहीं लिखा। इस जगह तो केवल हमको जीव अर्थात् आत्मा का वर्णन करके जिज्ञासुओं के लिए आत्मा को सिद्ध कर ध्येयरूप धारणा से ध्यान और समाधि करनी है। इसलिए जीव द्रव्य को ५७ प्रकार से सिद्ध करते हैं।

५७ प्रकारों के नाम

१ निश्चय, २ व्यवहार, ३ द्रव्य, ४ भाव, ५ सामान्य, ६ विशेष, ७ नाम-निक्षेप, ८ स्थापना-निक्षेप, ९ द्रव्य-निक्षेप, १० भाव-निक्षेप, ११ प्रत्यक्ष-प्रमाण,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१२ अनुमान-प्रमाण, १३ उपमान-प्रमाण, १४ आगम-प्रमाण, १५ द्रव्य, १६ क्षेत्र १७ काल, १८ भाव, १९ अनादि-अनन्त, २० अनादि-सान्त, २१ सादि-सान्त, २२ सादि-अनन्त, २३ नित्य पक्ष, २४ अनित्य पक्ष, २५ एक पक्ष, २६ अनेक पक्ष, २७ सत्पक्ष, २८ असत्पक्ष, २९ वक्तव्य-पक्ष, ३० अवक्तव्य-पक्ष, ३१ भेद-स्वभाव, ३२ अभेद-स्वभाव, ३३ भव्य-स्वभाव, ३४ अभव्य-स्वभाव, ३५ नित्य-स्वभाव, ३६ अनित्य-स्वभाव, ३७ परम-स्वभाव ३८ कर्ता, ३९ कर्म, ४० करण ४१ सम्प्रदान, ४२ अपादान, ४३ सम्बन्ध, ४४ अधिकरण, ४५ नैगम नय, ४६ संग्रह नय, ४७ व्यवहार नय, ४८ शब्द नय, ४९ समभिरूढ़ नय, ५० एवं-भूत नय, ५१ स्यादस्ति, ५२ स्यान्नास्ति, ५३ स्यादस्ति-नास्ति, ५४ स्याद-वक्तव्य, ५५ स्यादस्ति-अवक्तव्य ५६ स्यान्नास्ति-अवक्तव्य, ५७ स्यादस्ति-नास्ति युगपदवक्तव्य। ये ५७ नाम कहे। अब इनका विस्तार से वर्णन करते हैं।

१. निश्चय से जीव का स्वरूप—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य, अव्याबाध, अलख, अजर, अमर, अविकारी, निरञ्जन, अविनाशी, अचल, अकल, चिदानन्द-स्वरूप, अनन्त-गुण जिसमें हैं उसको निश्चय से जीव कहते हैं।

२. व्यवहार से जीव का स्वरूप—सूक्ष्म, २ बादर, ३ त्रस, ४ स्थावर; उस स्थावर में पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, तेजकाय, वनस्पतिकाय; त्रस में भी दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, भेद हैं। इस जीव के शास्त्रों में १४ और ५६३ भेद भी बतलाये हैं और भी अनेक रीति से शास्त्रों में इसके भेद कहे हैं। सो वहां से देखो। इस रीति से व्यवहार द्वारा जीव का स्वरूप कहा है।

३. जिस समय जिस गति का आयुकर्म और प्राण का बंध करे उस समय वह द्रव्य-जीव होता है।

४. भाव जीव उसको कहते हैं कि जिस गति का आयु बन्धन किया था, उस गति में आकर जो प्राण वा इन्द्रियों को प्रकट भोगने लगा हो, उसको भाव जीव कहते हैं।

५. सामान्य करके तो चेतना जीव का लक्षण है। उस चेतना के दो भेद

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हैं। १ अव्यक्त चेतना, २ व्यक्त चेतना। अव्यक्त चेतना पृथ्वी आदि पांच स्थावरों में है। व्यक्त चेतना दोइन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय त्रस में है।

६. जिसमें छः लक्षण हों वह ही विशेष जीव हैं, यदुक्तं श्री उत्तराध्ययन सूत्रे—

"नाणं च दंसणं चेव, चरितं च तवो तहा।
वीर्यं चोवओगं च, एयं जीवस्स लक्खणं॥"

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य और उपयोग यह जीव के लक्षण हैं।

यदि यहां कोई ऐसी शंका करे कि स्थावर वनस्पति आदि में छः लक्षण क्यों कर बनेंगे और इन छः लक्षणों के न होने से उनका जीव मानना किस प्रकार सिद्ध होगा? इसका उत्तर यह है कि हे देवानुप्रिय! पक्षपात को छाड़ कर ज्ञान-दृष्टि से बुद्धिपूर्वक विचार कर हमारी युक्ति को देखोगे, तो वनस्पति आदि पांच स्थावरों में ये छओं लक्षण प्रतीत होंगे। सो आत्मार्थियों के वास्ते हम कुछ युक्ति दिखाते हैं, छओं लक्षण बताते हैं, तुम्हारा सन्देह भगाते हैं, विवाद को मिटाते हैं, क्योंकि देखो जो वनस्पति हैं उसको भी सुख-दुःख का भान है। वह दुःख होने से मुरझाई हुई मालूम होती है, और सुख होने से प्रफुल्लित मालूम होती है। सो दुःख-सुख के जानने वाला ज्ञान होता है, इस रीति से ज्ञान सिद्ध हुआ। वह ज्ञान दो प्रकार का है, १ व्यक्त, २ अव्यक्त। इसमें अव्यक्त ज्ञान है। ऐसे ही दर्शन के दो भेद हैं १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन। दर्शन नाम देखने का है, तो इसमें अचक्षुदर्शन सिद्ध हो गया। तीसरा चारित्र नाम त्याग का है। इसके भी दो भेद हैं १ जान कर त्याग करना, २ अनमिले का त्याग। सो देखो वनस्पति को जलादि न मिलने से उसका भी अव्यक्त अर्थात्त् अनमिले का त्याग हुआ, तो किञ्चित् अकाम निर्जरा का हेतु चारित्र भी ठहरा। चौथा तप नाम शीत उष्ण सहता हुआ सन्तोष पावे उसका है। तो देखो शीतोष्ण का सहन करना वनस्पति में भी है, इसलिए तप भी सिद्ध हो गया। पांचवां वीर्य नाम पराक्रम का है, सो यदि इसमें पराक्रम न होता, तो उसका फूलना, बढ़ना नहीं बनता, इसलिए वीर्य भी निश्चित हो गया। उपयोग नाम उसका है कि जो अपनी इच्छा से अवकाश पाता हुआ जाय, जिस तरफ

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

अवकाश न मिले उधर से फिर कर दूसरी तरफ को चला जाय, इस रीति से उपयोग भी सिद्ध हो गया। इस प्रकार सामान्य-विशेष द्वारा जीव-स्वरूप का वर्णन किया।

७. नाम-जीव के दो भेद हैं, १ अकृत्रिम (अनादि) २ कृत्रिम। नाम-कर्म के उदय से जो नाम होता है सो अकृत्रिम, तथा अनादि जो जीव और आत्मा है, और कृत्रिम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, देवदत्त आदि। अथवा नाम-कर्म के उदय से जिस योनि को प्राप्त हो वैसा ही बोला जाय वह कृत्रिम कहलाता है।

८. जिस योनि में जीव जावे, उस योनि का जैसा आकार हो उस आकार को प्राप्त हो, अथवा जैसा जीवने औदारिक शरीर अथवा वैक्रिय शरीर कर्म के उदय से पाया था, वैसा किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र ही स्थापना-जीव है।

९. जिसको अपनी आत्मा का उपयोग नहीं, वह द्रव्य-जीव है, सो एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जान लेना।

१०. जिसको अपनी आत्मा का उपयोग है सो भाव स्वरूप है।

११. इस प्रत्यक्ष-प्रमाण द्वारा जीव चेतना-लक्षण है। जो प्रत्यक्ष से जीवों में देखने में आता है। परन्तु यहां नास्तिक अर्थात् चार्वाक के मत को दिखाते हैं। चार्वाक मतवाला जीव को नहीं मानता है और यह कहता है कि जीव कुछ नहीं है, चार भूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु; इनके मिलने से एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जैसे पानी आकाश मे वरसता है, और उसमें बुद्‌बुद पैदा हो जाते हैं, ऐसे ही चार भूतों के मिलने से एक विलक्षण शक्ति पैदा हो जाती है, उसको मूढ़ लोग जीव मानते हैं और भी देखो कि बबूल और गुड़ में नशा नहीं मालूम होता। परन्तु इन दोनों के मिलने से और यन्त्रों द्वारा खींचने से मदरूप एक विलक्षण शक्ति पैदा हो जाती है। वैसे ही चार भूतों के मिलने से विलक्षण शक्ति पैदा हो जाती है, परन्तु जीव कुछ पदार्थ नहीं है, इत्यादि अनेक कोटि उसकी चलती है। सो उसका खंडन-मंडल श्रीनन्दीजी, अथवा श्री सुगडांगजी, आगमों में या स्याद्वादरत्नाकर आदि अनेक ग्रन्थों में लिखा है। सो यहां ग्रन्थ के विस्तृत हो जाने के भय से अधिक नहीं लिखते। परन्तु किञ्चित्

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

खंडन इस जगह दिखाते हैं—

इस विषय में युक्ति यह है कि इसको यह पूछना चाहिए, कि तू जीव का निषेध करता है, सो देखे हुए का अथवा बिना देखे हुए का निषेध करता है? जो तू कहे कि बिना देखे हुए का निषेध करता हूं, तो यह कथन तेरा ही बाधक है, क्योंकि न देखी हुई वस्तु का निषेध नहीं बन सकता। जो तू कहे कि देखे हुए का निषेध करता हूं, तो यह कहना भी उसका उन्मत्त के समान है; जैसे कोई पुरुष कहे, कि "मम मुखे जिह्वा नास्ति" मेरे मुख में जीभ नहीं है। यदि तेरे मुख में जीभ नहीं है तो बोलता किससे है? तेरे बोलने से ही जिह्वा प्रतीत होती है। इस रीति से देखे हुए भी जीव का निषेध नहीं बन सकता। इस वास्ते तेरे कथन से जीव सिद्ध हो चुका, तू देखी हुई वस्तु का निषेध करता है, इसीलिए तुझको नास्तिक कहते हैं। यह प्रत्यक्ष प्रमाण से जीव का स्वरूप बतला दिया।

इस जगह हमने ५७ बोलों में से प्रत्यक्ष प्रमाण तक ही लिख दिया। इन ५७ बोलों का विशेष विस्तार हमारे रचे हुए 'स्याद्वाद-अनुभव-रत्नाकर' में हैं। इसलिये यहां पर न लिखा। क्यों कि जो बात एक ग्रन्थ में लिखी जा चुकी है, उसी बात को दूसरे ग्रन्थ में लिखना उचित नहीं। इस रीति से पदार्थों को जान कर अपने कल्याण को करे। परन्तु ध्येय रूप धारण से दो प्रकार का ध्यान होता है। सो एक धारणा तो संसार रूप कर्म-बन्धन अर्थात् जन्म-मरण का हेतु है, और दूसरी मोक्ष का कारण है।

इस स्थान पर प्रथम संसार-हेतु ध्यान को दिखाते हैं। इसके दो भेद हैं, १ दुर्गति को ले जाने वाला, २ शुभ गति को ले जाने वाला। धारणा में जो ध्येय रूप है, उसका स्वरूप कहते हैं—१ आर्तरूप ध्येय, २ रौद्ररूप ध्येय। इस एक एक ध्येय के चार चार भेद हैं।

आर्तरूप ध्येय के चार भेद

१ इष्ट-वियोग, २ अनिष्ट-संयोग, ३ रोग-ग्रस्ति, ४ अग्र-सोच (भविष्य-चिन्तन)।

इष्ट वस्तु का वियोग अर्थात् दूर होना, जैसे वल्लभ (प्रिय) पुत्र, स्त्री,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

माता, पिता, भगिनी, आदि अथवा धनादि का वियोग अर्थात् नष्ट हो जाना, उससे जो चिन्ता, पश्चाताप, तथा अनेक तरह से व्याकुल होना, अर्थात् आर्त्त होना, यह इष्ट-वियोग है। जिस वस्तु का संयोग होने से आर्त अर्थात् चिन्ता उत्पन्न हो, उसको अनिष्ट-संयोग कहते हैं। जैसे कि कलह-कारिणी स्त्री अथवा पति, कुपात्र पुत्र, दुःख-दाई पड़ौस, घर में सर्पादि दुष्ट जीवों का रहना, इत्यादि अनेक संयोगों के नष्ट न होने का नाम अनिष्ट-संयोग है। रोगादि शरीर में उत्पन्न होने से, और रोग के न जाने से, उसका उपाय करने की अष्ट प्रहर चिन्ता, उसको रोग-ग्रसित ध्येय कहते हैं। आगामी काल का जो आर्त-अर्थात् चिन्ता उसको अग्र सोच ध्येय कहते है। जैसे कि अग्रिम वर्ष में ऐसा ऐसा होगा, क्योंकि इस वर्ष में ऐसा हुआ है, तथा पिछले वर्ष में ऐसा हुआ था इस कारण से इस वर्ष में भी ऐसा हीहुआ, ऐसा ही आगे को होगा, उसका नाम अग्रसोच येध्य है।

रौद्र ध्येय के चार भेद

१ हिंसानुबन्धी, २ मृषानुबन्धी, ३ चौरानुबन्धी, परिग्रहरक्षानुबन्धी। इन चारों ध्येयों का विस्तार से वर्णन करते हैं—

हिंसानुबन्धि रौद्र ध्येय का स्वरूप

आप हिंसा करनी अर्थात् जीव को मारना, अथवा कोई दूसरा मनुष्य जीवों को मारता हो उसको देखकर प्रसन्न होना, अथवा दूसरों से कहकर हिंसा करवाना। अथवा युद्धादि को सुनकर उसका अनुमोदन करना। इस प्रकार जीव-मारने में जिसका परिणाम है वह हिंसानुबन्धि रौद्र ध्येय है। इसमें जिसका चित्त मग्न है, वह मनुष्य बदला देता है, और दुर्गति में जाता है। सो इस विषय में दो दृष्टांत दिखाते हैं—

जैन शास्त्रों में खन्दकजी ने पिछले भव में काचरी (चीबड़) फल का एक छिलका समस्त (साबूत) उतारा। फिर वह काचरी का जीव मरकर राजा हुआ, और खन्दकजी की चोटी से लेकर पैर के अंगूठे तक की खाल उतरवाई।

ऐसे ही वैष्णव मत के भक्तमाल में सजन कसाई की कथा है, कि सजन कसाई के पास एक सरकारी सिपाही आया, और बोला कि, सेर भर मांस दे।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उस समय सजन कसाई ने विचारा, कि बकरे को मारूं तो सवेरे को सब मांस खराब हो जाएगा। इसलिए अभी इसके पोते (अण्डकोश) काट लूं, उसमें से सेर भर मांस निकल आवेगा। फिर सुबह को बकरा मार डालूंगा, यह विचार कर छुरी लेकर चला, तब बकरा हंसने लगा। जब कसाई ने कहा कि भाई! तू हंसता क्यों है? तब बकरा बोला कि तू अपना काम कर, तुझे इससे क्या मतलब है? उस समय वह सजन कसाई बहुत पीछे पड़ गया, तब बकरा कहने लगा कि भाई! आज तक मेरा तेरा सिर काटने का झगड़ा था। मेरा तू सिर काटता था और मैं तेरा सिर काटता था; आज तूने दूसरा झगड़ा उठाया है, इसलिए मुझको हंसी आई है।

यह सुन कर सजन कसाई ने छुरी रख दी और बकरे को न मारा, तथा अपने चित्त में प्रतिज्ञा कर ली, कि आज से किसी जीव को कभी न मारूंगा। उस सिपाही से उसने उसी समय निषेध कर दिया, कि मेरे यहां मांस नहीं है। इसलिए आत्मार्थी को किसी जीव को न मारना चाहिए।

मृषानुबन्धि रौद्र ध्येय का स्वरूप

झूठ बोलकर मन में खुशी हो और झूठ बोलकर मन में विचार करे कि देखो मैंने किस चालाकी से झूठ बोला है कि किसी को मालूम भी न हुआ। उसका नाम मृषानुबन्धी रौद्र ध्येय है।

चौरानुबन्धि रौद्र ध्येय का स्वरूप

बिना पूछे किसी की वस्तु ले, चोरी अथवा ठगाई करे और चित्त में विचारे कि हम कितने हुशियार हैं, कि किसी को विदित भी न हुआ और माल ठग लाये, तथा खूब आनन्द उठाया, किसी के हाथ न आया। ऐसे परिणाम को चौरानुबन्धी रौद्र ध्येय कहते हैं।

परिग्रहानुबन्धि रौद्र ध्येय का स्वरूप

धन-धान्यादि बहुत रखने में अथवा अष्ट प्रहर परिग्रह जमा करने के परिणाम को परिग्रानुबन्धि रौद्र ध्येय कहते हैं।

१—आर्तध्येय की धारणा करने वाला तिर्यंच-गति में जाता है। इस आर्त ध्येय का ध्यान पांचवें छठे गुणस्थान तक रहता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

२—रौद्रध्येय नरक गति को ले जाने वाला है और इस ध्येय का ध्यान पांचवे गुण-स्थान तक और हिंसानुबन्धि रौद्र ध्येय किसी एक जीव की अपेक्षा से छठे गुणस्थान तक है।

इन ऊपर लिखे ध्येयों का ध्यान करने वाला अशुभ गति का बन्ध बांधता है।

अब शुभगति ले जाने वाले ध्येयों को दिखाते है। १ धर्मध्यय, २ शुक्लध्यय। धर्मध्यय के चार भेद हैं—१ आज्ञा-विचय, २ अपाय-विचय, ३ विपाक-विचय, ४ संस्थान-विचय।

१ आज्ञा-विचन ध्येय का वर्णन

जो श्री वीतरागदेव ने आज्ञा की है, उसको श्रद्धा-पूर्वक सत्य समझें, क्योंकि जैसे वीतरागदेव ने छः द्रव्यों का स्वरूप, नय, निक्षेप, नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष, सिद्ध-स्वरूप, निगोद-स्वरूप, निश्चय-व्यवहार, स्याद्वाद रूप से कहा है, वैसे श्रद्धा-पूर्वक यथार्थ उपयोग में धारे और उसी के अनुसार दूसरे के सामने कहे। इस रीति से प्रथम ध्येय जानना।

२ अपाय-विचय

इस जीव में जो अशुद्धपन है, वह कर्म के संयोग से है, क्योंकि सांसारिक व्यवस्था में अनेक प्रकार के दूषण हैं। अज्ञान, राग, द्वेष, कषाय, आश्रव आदि परन्तु ये मुझमें नही, मैं इनसे पृथक् हूं। मेरी आत्मा में अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य है। शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी, अज, अनादि, अनन्त, अक्षर, अनक्षर, अचल, अमल, अगम, अनामी, अरूपी, अकर्मा, अबन्धक, अभोगी, अरोगी, अभेदी, अवेदी, अच्छेदी, अखेदी, अकषायी, अलेशी अशरीरी, अव्याबाध, अनवगाही, अगुरुलघु परिणामी, अतीन्द्रिय, अप्राणी, अयोनि, असंसारी, अमर, अपर, अपरस्पार, अव्यापी, अनाश्रव, अकम्प, अविरुद्ध, अनाश्रित, अलख, अशोकी, असंगी, अनारक, शुद्ध, चिदानन्द, लोकालोक-ज्ञापक, ऐसा मेरा स्वरूप अर्थात् मेरा आत्मा है। इस ध्येय का नाम है अपाय-विचय।

३ विपाक-विचय

यह मेरा जीव कर्मों के वश होकर सुख-दुःख पाता है, क्योंकि ज्ञानावरणीय

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कर्म ने ज्ञान-गुण को दबा रखा है और दर्शनावरणीय कर्म ने दर्शन गुण को। इस रीति से आठों कर्मों ने आठों गुणों को दबा रखा हैं। इसलिए मैं कर्मों के वश में होकर संसार में परिभ्रमण करता हूं, क्योंकि जो सुख-दुःख है, सो सब कर्मों के करने से ही हैं। इसलिए सुख हो तो खुश न होना चाहिए और दुख होने पर शोक भी न करना चाहिए। कर्मों की प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशों का बन्ध, अथवा उदय, उदीरणा, सत्ता आदि का जो विचार है, वह विपाक-विचय ध्येय कहलाता है।

४ संस्थान-विचय

संस्थान चौदह राजलोक हैं, जिनको वैष्णव सम्प्रदाय वाले चौदहभुवन कहते हैं और मुसलमान लोग चौदह तबक कहते हैं। इस चौदह राजलोक का विचार करे कि नरक उस जगह पर है, तथा मनुष्य लोक उस स्थान पर है, देवता अमुक स्थान पर हैं; अथवा, सात राज-लोक नीचे, सात राजलोक ऊपर और बीच में मनुष्यलोक है। अथवा कर्मों के वश सब जगह मैंने जन्म-मरण किये हैं। ऐसा जो विचार उसका नाम संस्थान-विचय ध्येय है।

इन चारों ध्येयों की धारणा करके जो ध्यान करे तो उसको शुभगति अर्थात् मनुष्य देवलोकादि गति मिले। यह चौथे गुणस्थान से लेकर सातवें गुण स्थान तक होता है।

मोक्ष के हेतुभूत ध्येय का कथन

इस ध्येय के भी चार भेद हैं, सो इन चारों में से पहला और दूसरा ध्येय तो युक्त-योगिपन को प्राप्त कराने वाला है और पिछले दो ध्येय रूप धारणा से ध्यान कर युक्त-योगी, शरीर छोड़ने के समय लीन अर्थात् आदि-अनन्त समाधि को प्राप्त हो जाता है। चारों भेदों के नाम ये हैं :—

१ पृथक्त्व-वितर्क सप्रविचार, २ एकत्व-वितर्क अप्रविचार, ३ सूक्ष्म-क्रिया अप्रतिपाती, ४ उच्छिन्न-क्रियानुवृत्ति। इन ध्येयों में निरावलम्ब अर्थात् किसी का सहारा नहीं, केवल अपनी आत्मा में जो गुण पर्याय हैं, उन्हीं का विचार और रमण है, न कि दूसरों का।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रथम भेद का वर्णन

पृथक्त्व जुदाई अर्थात् अजीव को छोड़कर केवल आत्मरूप में, अथवा विभाव को छोड़कर स्वभाव को अंगीकार करने के विषय में, विचार करे। 'सः' अर्थात् अपनी आत्मा के अन्य कोई नहीं है। दूसरा विचार, जिसमें ऐसा स्वरूप अर्थात् आत्म द्रव्य, पर्याय और गुण इन तीनों का समावेश अर्थात् संक्रमण करे, गुण में पर्याय का संक्रमण करे, पर्याय में गुण का संक्रमण करे या गुण का द्रव्य में करे, इस रीति से निज धर्म में वह रमण करे कि जिसमें धर्मान्तर के भेदों से पृथक्त्वभिन्न, वितर्क—श्रुतज्ञानका का उपयोग हो। सप्रविचार, विकल्प सहित उपयोग का नाम है। क्योंकि एक का चिन्तन करने के बाद, दूसरे का चिन्तन करना, उसी का नाम विचार है। इसलिए निर्मल विकल्प सहित अपनी आत्मा की सत्ता में जो गुण हैं उन्हीं का स्मरण, रमण, भाषण, मनन करे। इसका नाम पृथक्त्व-वितर्क सप्रविचार ध्येय है।

द्वितीय भेद का निदर्शन

अपनी आत्मा के जो गुण पर्याय हैं उनकी एकता करे। जैसा कि जीव के गुण पर्याय और जीव एक है, मेरी आत्मा और सिद्ध का स्वरूप एक है, मैं ज्ञान स्वरूप एक हूं, मेरा स्वरूप एक है, मेरी वीर्यरूपी शक्ति से ज्ञान दर्शन अलग नहीं, मैं एक स्वरूप हूं। ये सब मेरे गुण-पर्याय पृथक् नहीं, मेरा इनका समवाय-सम्बन्ध है, मैं पिण्डरूप एक हूं, अपने ध्येय को मैंने धारण किया है। श्रुतज्ञान को वितर्क कहते हैं। अप्रविचार—विकल्प करके रहित, दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्न-त्रयका एक समय में कारण-कार्यपन से चिंतन करना, उसी का नाम एकत्व-वितर्क अप्रविचार ध्येय है।

अब यहां इन दोनों विचारों में ज्ञेय, हेय, उपादेय, अपवाद और उत्सर्ग दिखाते हैं। युञ्जान-योगी के अपवाद और युक्त-योगी के उत्सर्ग का विचार इस तरह से है कि सविकल्प और निर्विकल्प यह दोनों ध्येय तो ज्ञेय हैं, सविकल्प हेय है और निर्विकल्प उपादेय है। सविकल्प-विचार अपवाद मार्ग है और निर्विकल्प उत्सर्ग मार्ग है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

सविकल्प-निर्विकल्प का दृष्टान्त

कोई पुरुष गौ का विचार करे कि गौ के चार पांव हैं और एक-एक पांव में दो-दो खुर हैं, सींग, पूंछ, गल-कम्बल, (गलेका लटकता हुआ चमड़ा) है, यह सविकल्प ध्येय है। इसी रीति से गौ के अवयवों को न विचार करके केवल गौ है ऐसा जो विचार है उसका नाम निर्विकल्प है। वैसे ही आत्मा के अवयवों का विचारना सविकल्प है और एकत्व का जो विचार है सो निर्विकल्प है। इसका विशेष विवरण तो, "शुद्धदेव अनुभव विचार" नामक ग्रन्थ में जहां ५७ बोलवाले देव के स्वरूपों में एक-एक बोल में ज्ञेय, हेय, उपादेय, उत्सर्ग, अपवाद, यह पांच-पांच बोल उतार कर दिखाये हैं, भिन्न-भिन्न रूप से समझाये हैं, अनुभव कर बताए हैं, स्याद्वाद शैली यथावत् लाये हैं, वहां से देखो। इस रीति से किंचित् ध्येय का स्वरूप दिखाया। इस ध्येय की धारणा करे और उस धारणा का ध्यान अर्थात् तन्मयता करे। सो पहले ध्येय का ध्यान तो आठवें गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है और दूसरे ध्येय की धारणा का ध्यान बारहवें गुणस्थान में होता है और उस ध्यान में लय होने से सादि-अनन्त समाधि को प्राप्त कर तेरहवें गुणस्थान में युक्त योगी होकर विचरता है। इस रीति से किंचित् ध्यान समाधि का वर्णन किया।

प्रश्न—आपने मोक्ष हेतु के चार भेद बताए। जिनमें दो का वर्णन किया और दो का न किया, इसका कारण क्या?

उत्तर—हे देवानुप्रिय! दो भेद न कहने का कारण यह है कि पहले दो ध्येयों की धारणा होने से ध्यान और समाधि का प्रयोजन न रहा, क्योंकि हमारा उद्देश्य ध्यान समाधि तक था, सो कह दिया।

प्रश्न—आपने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार फरमाया, सो तो ठीक है, परन्तु पाठकगण को दो भेदों की आकांक्षा बनी रहेगी। इसलिए प्रसंग से दोनों भेदों के स्वरूप का भी वर्णन करना चाहिए। आगे आप की इच्छा।

उत्तर—हे देवानुप्रिय! प्रसंगवश तुम्हारे कथनानुसार कहता हूं कि शास्त्रानुसार युक्तयोगी शरीर छोड़ने के समय इन दोनों भेदों की ध्येय रूप धारणा के ध्यान से सादि-अनन्त स्थिति से सिद्ध क्षेत्र में पहुंचता है और बीच में जो दो

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

भेदों को करता है, वे ये हैं:—

तीसरे सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती भेद का वर्णन

सूक्ष्म मन, वचन, काय रूप जो योगी की वृत्ति आत्मा में थी, उसको भी रोक कर "शैलेशीकरण" करके अयोगी होकर "अप्रतिपाती" जिसको पतन न हो ऐसा जो निर्मल वीर्य, अचलता रूप परिणाम, उसको सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती कहते हैं। इस जगह कर्मों की प्रकृतियां सत्ता में ८५ थीं उनमें से ७२ निकालने से तेरह बाकी रह जाती हैं।

चतुर्थ उच्छिन्न-क्रिया निवृत्ति भेद का वर्णन

जब योगी योग-निरोध करने के पीछे जो तेरह प्रकृतियां थीं, उनको भी दूर करके अकर्मा हो जाता है, तब सब क्रियाओं से रहित हुआ, इसलिए उसको उच्छिन्न-क्रिया निवृत्ति कहते हैं। उस समय योगी धारणा की ध्यान लय रूप समाधि से शेष दल विखरण रूप क्रिया उच्छेद और शरीर की अवगाहना में से तीसरा भाग घटाकर शरीर छोड़कर चौदह राजलोक के ऊपर लोक के अन्त में स्थित सिद्ध-क्षेत्र में विराजमान होता है।

अब इस जगह यह शंका होती हैं कि चौदहवें गुणस्थान में अक्रिय हो गया तो फिर सात राज ऊंचा कैसे जाता है? अक्रिय होकर क्रिया कैसे करता है?

समाधान:—सिद्ध तो अक्रिय है, परन्तु जल तुम्बिका न्याय अथवा दण्ड-चक्र-भ्रमण रूप न्याय से पूर्वक्रिया के बल से वह ऊंचा जाता है। सो दोनों दृष्टान्त दिखाते हैं:—जैसे तूंबी मट्टी, कपड़ा का लेप से अथवा कोई भारी चीज नीचे या ऊपर होने से पानी में डूब जाती है। परन्तु जब वह लेपादि दूर हो अथवा जो भारी चीज़ का ऊपर-नीचे संयोग था, सो दूर हो तो फिर तुम्बी पानी में नीचे नहीं रहती, ऊपर को चली आती है। वैसे ही जीव के कर्मरूपी लेप का वजन प्रदेशों के ऊपर होने से वह संसार रूपी जल में डूबा रहता है। जिस समय वह कर्मरूपी लेप अर्थात् भारीपन दूर होने से हलका होता है तब ऊपर को अपने आप चला जाता है। यहां जैसे तूम्बी जल के नीचे से ऊपर आती और क्रिया करती है, वैसे ही जीव भी कुछ क्रिया न कर सिद्ध क्षेत्र में विराज-

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

मान होता है।

अब दूसरा दृष्टांत सुनो कि जैसे कुम्भकार दण्ड से चक्र को घुमाता है और घुमाकर दण्ड को निकाल लेता है, परन्तु चक्र फिरता ही रहता है, वैसे ही जब कर्म रूपी दण्ड से जीव रूपी चाक फिरता था, अब कर्म-रूपी दण्ड अलग होने पर भी चक्र की तरह फिर कर सिद्धक्षेत्र में शांत हो जाता है।

अब इस जगह कोई यह प्रश्न करे कि जीव को हलका होने से या चक्र-न्याय से ऊपर जाने की गति है तो वह सिद्धक्षेत्र में ही क्यों ठहरता है, आगे क्यों नहीं जाता है ?

हे देवानुप्रिय ! हलका होने से जीव में ऊंचे जाने का गुण नहीं है, क्योंकि जैसे तूम्बी जल के ऊपर रहकर फिर ऊंची नहीं जा सकती और चक्र भी थोड़ी सी देर चलकर ठहर जाता है, वैसे ही जीव को जानों, विवेक बिना बुद्धि का विकल्प मत करो, दृष्टांत का एक अंश मानो, सब अंश लेकर झगड़ा मत करो, वचन को सुनकर विवेकसहित बुद्धि से विचार कर अपने चित्त में विश्वास लाओ।

दूसरा समाधान है कि चौदह राज के बाहर अलोकाकाश में धर्मा-स्तिकाय नहीं है, जिससे जीव आगे को जा सके। इसलिए चौदह राजलोक के अन्त में रह जाता है, क्योंकि इन चौदह राज में धर्मास्तिकाय है, इस धर्मास्तिकाय के होने से ही चौदह राज में जीव व पुद्गल फिरते है। धर्मास्तिकाय के साहाय (मदद) के बिना कोई फिर नहीं सकता। जैसे जल में चलने वाली मछली जल में जिधर इच्छा करे उधर चली जाती है, उस मछली को जल की सहायता है, परन्तु जल उसको प्रेरणा नहीं करता, केवल चलने में साहाय देता है और वह मछली जल के बिना स्थल में इच्छापूर्वक कदापि भ्रमण नहीं कर सकती, यद्यपि स्थल उस मछली को पकड़े भी नहीं रखता है। वैसे ही जीव और पुद्गल को भी जानो।

प्रश्न—आपने योगाभ्यास का वर्णन तो किया, परन्तु एक बात का निर्णय न हुआ। हम सुनते हैं कि, योगी आठ बातों को अपने योग से एक समय में करता है, उसको अष्टावधान भी कहते हैं। वे योगी शतरंज का खेलना,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

कविता का करना, प्रश्न का उत्तर देना, पीठ पर लिखे का ख्याल करना, इत्यादि आठ काम कर सकता है।

उत्तर—हे देवानुप्रिय ! तुम्हारे प्रश्न को सुनकर मुझको आश्चर्य हो गया है, तुम्हारी लिखी आठ बातों का एक समय में करना बुद्धि में न समाया, मेरे मन में असम्भव आया, क्योंकि सर्वज्ञदेव ने समय को बहुत सूक्ष्म कहा है, एक पलक के लगाने में ही असंख्य समय हो जाते हैं, फिर आठ बातें करना एक समय में किस प्रकार सिद्ध होगा ? देखो पांच ह्रस्व अक्षर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ, इनके उच्चारण में ही अनेक समय लगते हैं, अर्थात् अ, इ, के आगे-पीछे होने में अन्तर पड़ जाता है, क्योंकि अकार का उच्चारण करने के पीछे 'इ' का उच्चारण होता है तो आठ बात एक समय में क्यों कर बनेंगी ? बल्कि 'क' इस अक्षर में ही सूक्ष्म बुद्धि से विचार करें तो आदि और अन्त तक उच्चारण करने में ही अनेक समय बीत जाते हैं, क्योंकि 'क' की आदि के पीछे अन्त भाग का उच्चारण होगा। बुद्धि-पूर्वक हमारे वचन को विवेक सहित विचार करो। जो ऐसा कहते हैं कि हम आठ बातें एक समय में करते हैं, क्योंकि हमने योगाभ्यास से अष्टावधान सिद्ध कर रखा है। वे लोग योगशास्त्र से अनभिज्ञ हैं। इस विषय में व्याकरणादि में ऐसा कहा है, सो सारस्वत चन्द्रकीर्ति टीका का लेख दिखाते हैं।

"मात्रा काल विशेष: स्यात्, अक्षिस्पन्दप्रमाण: कालो मात्रा।" और जैन मत में तो समय बहुत सूक्ष्म कहा है। उसका तो अध्यात्मी, योगाभ्यासी, युंजान अवस्था में युक्त योगी के वचन में अनुसार अनुभव करते हैं, अपने चित्त में यथावत् धरते हैं। उस समय का विचार तो एक ओर रहा, परन्तु व्याकरण की रीति से जो समय है, उस समय में भी आठ बातें एक साथ कदापि न बनेंगी। क्योंकि एक ह्रस्व अक्षर का उच्चारण करने में एक समय बीतता है और दीर्घ उच्चारण में दो समय लगते हैं, तो जहां दस पांच अक्षर उत्तर देने में लगे, वहां एक ही समय कैसे रहेगा, किन्तु अनेक समय हो जायेंगे, तो आठ बातों का एक समय में कहना यह क्यों कर सिद्ध होगा ?

इसलिए हे पाठकगण ! इन बातों के कहने वाले को योगी मत जानो,

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

विवेक-सहित अपनी बुद्धि में विचारो जिससे अनुभव की प्राप्ति हो। क्योंकि इन लोगों ने घर छोड़ा, सिर मुंडाया, योगी नाम धराया, अपने को पूजाया, फिर भी पूरा भेद न पाया, सुनी कुछ और करी न गौर (ध्यान), लोगों को कुछ और समझाया, गुरुगम से इन आठ बातों का पूरा पता न पाया, अपात्र जान कर गुरु ने न बतलाया। क्योंकि युंजान योगी तो योजना करने में आठ बातों को स्थूल समय में एक साथ करता है, उसका अनुभव अपने चित्त में धरता है, उनका अनुभव वचन द्वारा नहीं निकलता है, उन आठ बातों के अनुभव से आत्मा को भरता है, उसमें चिदानन्द रूप आनन्द झरता है, कुमति के संग को परिहरता है, शुद्ध चेतना को वरता है, सुमति के संग हो जगत् को विसरता है और युक्त योगी सदा आठ बातों में लीन रहता है, इसलिए आठ बातों के नाम पाठकगण को दिखाते हैं।

१ ध्येय, २ ध्यान, ३ ध्याता, ४ वायु, ५ मन, ६ श्रुत, ७ ध्वनि (शब्द) ८ आत्मवृत्ति।

उन आठ बातों का जो एक करना उसी का नाम अष्टावधान है। इस अष्टावधान को युंजान-योगी साध कर समाधि में लीन हो जावे, कुछ देर के बाद युक्त-योगी पद पावे, जैन मत में तेरहवां गुणस्थान कहावे, वैष्णव मत वाले योगियों में ब्रह्मवेत्ता कहलावे, कोई उसको विदेही भी बतलाये, ऐसा हो तो फिर जन्म-मरण न करावे, शरीर छोड़ने के बाद फिर संसार में न आवे, सर्वज्ञों के ज्ञान में इसीलिए १५ भेदे सिद्ध भावे, इस रीति से चिदानन्द समाधि का गुण गावे।

९१—पिछली टिप्पणी में हम ओम् की रचना का परिचय दे चुके हैं। वह पंचपरमेष्टि के प्रथम अक्षरों के मेल से बना है जिसका दूसरा नाम नवकार मंत्र भी है। पंचपरमेष्टि के नाम १ श्री अरिहंतदेव (सशरीरी ईश्वर) २ श्री सिद्ध भगवान (निराकार अशरीरी ईश्वर) ३ श्री आचार्य महाराज (चतुविध संघ का नेता मुनिराज), ४ श्री उपाध्याय जी महाराज (साधु सध्वियों को शास्त्राभ्यास कराने वाले मुनिराज) ५ साधु मुनिराज (पंचमहाव्रतधारी, रात्रि भोजन परिहारी निर्ग्रंथ यति)। इस प्रकार पंच परमेष्ठियों में पहले दो पदों में ईश्वर परमात्मा तथा अन्त के तीन पदों में सद्गुरु का समावेश होता है। दूसरे प्रकार से ओम् की रचना में तीनों लोकों का समावेश होने से विश्व के स्वरूप वर्णन का समावेश है। इस लिये ओम् में देव, गुरु और धर्म का समावेश होने से परम् पूज्य है, परम आराधना का मूल मंत्र है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

परिशिष्ट नं० २

ध्यान और समाधि

१—ध्यान करने का क्रम

ध्यान करने वाले मनुष्य की क्या योग्यता होनी चाहिये ? जिसका ध्यान करना हो वह ध्येय कैसा होना चाहिये ? तथा ध्यान करने से क्या फल होता है ये तीनों ध्याता, ध्येय और फल का स्वरूप अवश्य जानना चाहिये । क्योंकि सम्पूर्ण सामग्री जाने और पाये बिना कभी भी कार्य सिद्ध नहीं होता ।

२—ध्यान करने वाले का लक्षण

(१) प्राण संकट में आ पड़ें तो भी चरित्र को दोष न लगाने वाला, (२) दूसरे प्राणियों को अपने समान देखने वाला; (३) समिति-गुप्तिरूप अपने स्वरूप से पीछे न हटने वाला, (४) सर्दी-गरमी, धूप, वर्षा, वायु-आंधी आदि से खेद न पाने वाला, (५) अराधन करने वाले योग रूपी अमृत रसायन को पीने की चाह वाला, (६) राग-द्वेषादि से पीड़ित न होने वाला, (७) क्रोध, मान, माया, लोभादि से दूषित न होने वाला, (८) सर्व कार्यों में निर्लेप और आत्मभाव में रमण करने वाला, (९) काम-भोगों से विरक्त, (१०) अपने शरीर पर भो निस्पृह, (११) संवेग में मग्न, (१२) शत्रु-मित्र, स्वर्ण-पत्थर, निन्दा-स्तुति आदि सबमें समभाव रखने वाला, (१३) चाहे राजा हो चाहे रंक, चाहे अमीर हो अथवा गरीब सबके लिये तुल्य कल्याण का इच्छुक, (१४) सर्व जीवों पर अनुकंपा करने वाला, (१५) हृदय से निर्भीक, (१६) चन्द्र के समान शीतल आनन्ददायक, (१७) वायु के समान निसंग, (अप्रतिबद्ध) । ऐसी स्थिति वाला विचक्षण ध्याता ध्यान करने के योग्य है ।

३—मन की स्थिति के भेद

योग का सर्व आधार मन पर है । मन की अवस्थाओं को जाने बिना और इसे उच्च स्थिति में लाये बिना योग में प्रवेश नहीं हो सकता । इसलिये यहां मन की स्थिति के भेद बतलाते हैं । मन के भेद—१—विक्षिप्त, २—यातायात, ३—श्लिष्ट, ४—सुलीन ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

४—मन के लक्षण

१—विक्षिप्त मन को चपलता इष्ट है, २—यातायात मन थोड़ा आनंद वाला है, प्रथम अभ्यास में यह दोनों प्रकार का ही मन होता है और इनका विषय विकल्प को ग्रहण करने वाला होता है ।

प्रथम अभ्यासी जब अभ्यास करता है, तब मन में अनेक प्रकार के विक्षेप आते रहते हैं । मन स्थित होता नहीं, चपलता ग्रहण किया करता है । इस पर से अभ्यासी को हताश अथवा निराश नहीं होना चाहिये ।

एक मृग जब जाल के पाश में फंस जाता है तब वह उससे छूटने के लिये छटपटाता है, दौड़—धूप करने में भी किसी प्रकार की कमी नहीं रखता । यदि यह देखकर शिकारी उसे छोड़ दे तो वह अवश्य छूट जायेगा, फिर कभी हाथ में नहीं आयेगा । यदि शिकारी उसे दृढ़ता से बांधकर दौड़-धाम करने दे तो अन्त में वह थक कर हार जाएगा और दौड़-धाम छोड़ कर स्थिर हो जायगा । इसी प्रकार प्रथम अभ्यासी मन की ऐसी चपलता और विक्षेपता देखकर यदि निराश हो जाए और अपना अभ्यास छोड़ दे तो मन छूट जाएगा । फिर कभी काबू में न आवेगा । यदि हिम्मत रखकर योगाभ्यासी अपना अभ्यास आगे बढ़ाता चला जावेगा तो बहुत चपल और विक्षिप्त मन भी शांत होकर स्थिरता प्राप्त कर लेगा । पहली विक्षिप्त दशा लांघनेके बाद—

२—दूसरी यातायात दशा मन की है । यातायात का मतलब है जाना और आना । थोड़ी देर मन स्थिर रहे फिर भाग निकले अर्थात् विकल्प आ जाय । समझा बुझाकर मन स्थिर किया पर दूसरे क्षण चला जाय । यह मन की यातायात अवस्था है । पहली विक्षिप्त दशा से दूसरी यातायात श्रेष्ठ है और इसमें कुछ आनन्द का लेश रहा हुआ है; क्योंकि जितनी बार मन स्थिर हो उतनी बार तो आनन्द का अनुभव होगा ही ।

३—तीसरी अवस्था श्लिष्ट मन की है । यह अवस्था स्थिरता और आनन्द वाली हैं । जितनी मन की स्थिरता उतना आनन्द । मन की इस तीसरी अवस्था में दूसरी अवस्था से विशेष स्थिरता होने से आनन्द भी विशेष होता है ।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

४—सुनिल मन की चौथी अवस्था है । यह निश्चल और परमानन्द वाली अवस्था है । जैसा नाम है वैसे ही इसके गुण भी हैं । तीसरी अवस्था के मन से भी इस चौथी अवस्था में मन को अधिक निश्चलता तथा स्थिरता होती है । इसलिये इसमें आनन्द भी अलौकिक होता है । इस मन का विषय आनन्द और परमानन्द है ।

इस प्रकार मन की उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिये क्रम से अभ्यास की प्रबलता से निरालम्बन ध्यान करे । इससे समरस भाव (परमात्मा के साथ अभिन्नता से लय पाकर) प्राप्त करके परमानन्द का अनुभव करे ।

४—परमानन्द प्राप्ति का क्रम

आत्म सुख का अभिलाषी योगी अन्तरात्मा द्वारा बाह्यात्म-भाव को दूर कर तन्मय होने के लिये निरन्तर परमात्म-भाव का चिन्तन करे ।

५—बहिरात्म-भावादि का स्वरूप

शरीर आदि को आत्मबुद्धि से ग्रहण करने वाले को यहां बहिरात्मा कहा है । शरीर मैं हूँ' ऐसा मानने वाला, धन, स्वजन, कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र आदि को अपना मानने वाला, यह बहिरात्म-भाव कहलाता है ।

६—अन्तरात्मा

शरीर आदि का अधिष्ठाता वह अन्तरात्मा कहलाता है । अर्थात् शरीर का मैं अधिष्ठाता हूं, शरीर में मैं रहने वाला हूं, शरीर मेरे रहने का घर है अथवा शरीर का मैं द्रष्टा हूं । इसी प्रकार धन, स्वजन, कुटुम्ब, स्त्री, पुत्रादि संयोगिक है तथा पर हैं । शुभाशुभ कर्म विपाक जन्य ये संयोग वियोग में हर्ष-शोक न करके द्रष्टा मात्र रहे यह अन्तरात्मा कहलाती है ।

७—परमात्मस्वरूप

ज्ञान स्वरूप, आनन्दमय, समग्र उपाधि रहित, शुद्ध, इन्द्रिय अगोचर, तथा अनन्त गुणवान । यह परमात्मा का स्वरूप है ।

८—योगी स्खलना नहीं पाता

आत्मा से शरीर को जुदा जानना तथा शरीर से आत्मा को जुदा जानना;

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

इस प्रकार आत्मा और देह के भेद को जानने वाला योगी आत्म निश्चय करने में—आत्मस्वरूप प्रगट करने में कभी स्खलना नहीं पाता।

जिनकी आत्मज्योति कर्मों से दब गई है—तिरोहित हो गई है; ऐसे मूढ़ जीव जब आत्मा के भान को भुलाकर पुद्गल में संतोष पाते हैं। तब बहिर्भाव में सुख की भ्रांति की निवृति पाये हुए योगी आत्मा के स्वरूप के चिन्तन में ही संतोष पाते हैं।

जो साधक आत्मज्ञान को ही चाहता हो। दूसरे किसी भी भावना-पदार्थ के सम्बन्ध में प्रवृत्ति अथवा विचार न करता हो तो आचार्य निश्चय करके कहते हैं कि ज्ञानी पुरुषों को बाह्य प्रयत्न के बिना मोक्ष पद प्राप्त हो सकता है।

जैसे सिद्धरस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है वैसे ही आत्मध्यान से आत्मा परमात्मपद को पा लेता है।

जैसे निद्रा में से जाग्रत मनुष्य को सोने से पहले के जाने हुए कार्य किसी के कहे अथवा बतलाये बिना ही याद आ जाते हैं वैसे ही जन्मान्तर के संस्कारों वाले योगी को किसी के उपदेश के बिना ही निश्चय तत्त्वज्ञान प्रकाशित होता है।

पूर्व जन्म में भी प्रथम ज्ञानदाता तो गुरु ही होता है और दूसरे भवों में भी तत्त्वज्ञान बतलाने वाला गुरु है। इस लिये तत्त्वज्ञान के लिये गुरु की ही निरन्तर सेवा करनी चाहिये। जैसे निविड़ अंधकार में पड़े हुए पदार्थों का प्रकाशक सूर्य है वैसे ही अज्ञान रूप अन्धकार में पड़े हुए जीवों को इस भव में तत्त्वोपदेश द्वारा ज्ञानमार्ग दिखलाने वाला गुरु है। अतः सब प्रपंचों को छोड़ कर योगी को गुरु की सेवा करनी चाहिये।

योगी मन-वचन-काया की चंचलता के बहुत प्रयत्न पूर्वक रोके और रस के भरे हुए बरतन के समान आत्मा को शांत, निश्चल, स्थिर तथा निर्मल अधिक समय तक रखे।

६—आत्मा को स्थिर रखने का क्रम

रस के पात्र में रहे हुए रस के समान आत्मा को स्थिर रखे। रस को स्थिर रखने के लिये उस रस के आधारभूत पात्र को भी निश्चल रखना ह

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

चाहिये। क्योंकि पात्र रस का आधार है उस में जितनी अस्थिरता रहेगी उस अस्थिरता का प्रभाव आधेय (रस) पर अवश्य पड़ेगा। इसलिये मन-वचन-काया आत्मा के आधार रूप हैं और आत्मा आधेय रूप है। आधार की विकलता अथवा अस्थिरता का प्रभाव आधेय पर अवश्य होता है। यह अस्थिरता एकाग्रता करने के सिवाय बन्द नहीं हो सकती। एकाग्रता करने के लिये भी क्रमवार अभ्यास करने वी आवश्यकता है। एकाग्रता होने पर ही लय और तत्त्वज्ञान की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। अतः आत्मा को निश्चल रखने के लिये मन-वचन-काया को क्षोभ न हो इसकी पूरी-पूरी सावधानी रखनी चाहिये। इसके लिये पूरी सावधानी से एकाग्रता रखनी चाहिये।

१०—एकाग्रता

मन की बार-बार परावर्त प्राप्त करने वाली स्थिति को शांत करना और मन को किसी एक ही आकृति अथवा विचार अथवा गुण पर दृढ़ता से लगा रखना, इसे एकाग्रता कहते हैं।

अभ्यासियों को प्रारम्भ में एकाग्रता करने के लिये जितनी मेहनत करनी पड़ती है उतनी मेहनत किसी भी प्रकार की क्रिया में नहीं करनी पड़ती। एकाग्रता रखने की क्रिया बहुत परिश्रमप्रद तथा कष्टसाध्य लगती है। परन्तु आत्म-विशुद्धि के लिये एकाग्रता प्राप्त किये बिना दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। इसके बिना आगे बढ़ना असम्भव है। इसलिये प्रबल प्रयत्न करके भी एकाग्रता सिद्ध करनी चाहिये।

११—एकाग्रता करने की रीति और उपयोगी सूचना

मन में उत्पन्न होने वाले विकल्पों का कोई उत्तर न देने से अभ्यास दृढ़ होता है। ऐसा करने से विचारों की प्रत्युत्तर देने की वृत्तियां शांत हो जाती हैं। एकाग्रता में पूर्ण शाम्य अवस्था की जरूरत हैं अर्थात् विकल्प उत्पन्न न होने देना इसके लिये स्थिर शान्ति रखनी चाहिये। यह शान्ति इतनी प्रबल होनी चाहिये कि बाह्य किसी भी निमित्त से चालू विषय के सिवाय मन का परिणामांतर कदापि न हो। तथा अमुक विकल्प को रोकना है ऐसा भी मन में परिणमन नहीं होना चाहिये। प्रायः देखा जाता है कि एकाग्रता में मन की

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रवृत्ति शांत नहीं होती। पर अपनी समग्र शक्ति इसकी प्राप्ति में लगा देनी चाहिये। एकाग्रता में ध्येय की एक आकृति पर ही अथवा एक विचार पर ही दृढ़ रहने से मन स्थिर होता है।

१२—एकाग्रता प्राप्त मन की शक्ति

जैसे नदी की अनेक धाराएं जुदा-जुदा हो जाने पर नदी के पूर्ण प्रवाह के मूलबल को विभाजित कर देती हैं और बल के विभाजित हो जाने पर जल के प्रवाह में भी मंदता आ जाती है। जैसे नदी के एक प्रवाह रूप बहने से जितनी प्रबलता और वेग से कार्य हो सकता था वह जुदा-जुदा प्रवाह में बहने से नहीं हो सकता। वैसे ही एकाग्रता के एक ही प्रवाह में वहन करने वाला और उसके द्वारा मज़बूत हुआ प्रबल मन'जो अल्प समय में कार्य कर सकता है वह अस्त-व्यस्त अवस्था में कभी भी नहीं कर सकता। अतः एकाग्रता की महान उपयोगिता के लिये महापुरुषों ने विशेष आग्रह किया है।

१३—आत्मा लय की अवस्था

इस प्रकार किसी एक पदार्थ पर एकाग्रता प्राप्त करने से मन पूर्ण विजय प्राप्त करता है। अर्थात् महूर्त (४८ मिनट) तक पूर्ण एकाग्रता में मन रह जाने पर पश्चात् उस पदार्थ के विचार को छोड़ देना चाहिये और कोई भी पदार्थ के चिंतन की तरफ मन को प्रेरित किये बिना स्थिर करना चाहिये। इस अवस्था में मन किसी की आकार में परिणत नहीं होता। मन तरंग बिना सरोवर के समान शांत अवस्था में रहता है। यह अवस्था स्वल्प काल से अधिक समय नहीं रहती। जब इस अवस्था में मन शान्त होता है तब मन रूप में परिणत आत्मा मन से जुदा होकर स्वस्वरूप में रमण करता है।

इस स्वल्प समय की उत्तम अवस्था को **लय** अवस्था कहते हैं। यह लय अवस्था अधिक समय तक रहने से आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

इस प्रकार एकाग्रता का अन्तिम फल बतला कर एकाग्रता कैसे करनी चाहिये इस विषय पर कुछ विवेचन करते हैं। इसके लिये पहले आत्मश्रद्धा होनी चाहिये।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

१४—आत्मश्रद्धा—अपने पर विश्वास

आत्मा अमर है। उसके ज्ञान और शान्ति की सीमा नहीं है। सारे विश्व को जानने का ज्ञान आत्मा में है। विश्व पर सत्ता चला सके इतना बल आत्मा में है। वह आत्मा मैं स्वयमेव हूं। मुझे अपने आत्मबल पर पूर्ण विश्वास है। उसमें कोई विघ्न नहीं डाल सकता है। विघ्नों को हटाने का बल मुझमें है। महान् विपदाओं के समय भी मेरी आत्मश्रद्धा अटल रहेगी। प्रबल भय के समय भी मैं अपने आत्म-विकास कार्य किये ही जाऊंगा। मेरा ज्ञान बातों में ही नहीं रहेगा, परन्तु मैं सत्याचरण को अभी से करना प्रारम्भ करता हूं। मैंने अज्ञान दशा में स्वयं ही अपने को बन्धन डाले हैं दूसरा कोई मुझे बन्धन नहीं डाल सकता। इस लिए इन बन्धनों को दूर करने के लिए स्वयं ही पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है। इन बन्धनों को तोड़ने में दूसरा मुझे कोई सहायता देगा, इस भावना को मैं अभी से छोड़ता हूं। अब मैं पर-मुखापेक्षी न रहूंगा, सुख-दुःख विरासत में मिली हुई चीजें नहीं हैं। ये तो मेरे उन्मार्ग सेवन से किये हुए कृत्यों का ही परिणाम है। अब सीधे रास्ते चेष्टा करके उन्हें दूर करूंगा। ये बादल बखेरे जा सकते हैं। मैं विघ्नों को विघ्न-रूप नहीं मानता। परन्तु इनके अस्तित्व से ही मुझे पुरुषार्थ करने में विशेष प्रोत्साहन मिलता है। दुःख अथवा विघ्नों की मौजूदगी से मेरा सामर्थ्य विशेष प्रकट होता है, मैं इस समय दुगने वेग से पुरुषार्थ कर सकता हूं। मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाऊंगा त्यों-त्यों मेरे संयोग भी अवश्यमेव बदलते ही जाएंगे। परिस्थितियों के अधीन होने में नहीं परन्तु उन्हें अधीन करने में ही सच्ची वीरता है। अनुकूल परिस्थिति में रहने की इच्छा करना तो मेरी एक निर्बलता है उससे मेरी शक्ति दबी रहती है। मुझे पुरुषार्थ करने का अवकाश नहीं मिलता, इसलिए मैं प्रतिकूल संयोगों को मित्र समान मानकर उनका स्वागत करता हूं। मेरे प्रतिकूल मित्रो! आओ! तुम्हारे आने से मुझे विशेष जागृति रखने और परिश्रम करने का अवसर प्राप्त होता है। मैं स्वार्थ—लालच का दास कदापि न बनूंगा, क्योंकि इनमें मेरी प्रवृत्ति रुक जाती है। मैं अपने भाग्य की कठपुतली न बनूंगा, परन्तु मैं उसे बदल

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

डालूंगा। मुझमें अनन्त शक्ति है, इस भावना से मुझे कार्य करने का जो उत्साह मिलता है वह और किसी भी तरह से नहीं मिलता। इस आत्म-श्रद्धा के प्रमाण अनुसार ही मैं कार्य कर सकता हूं। मैं अपनी शक्ति के विषय में किंचित मात्र भी संदेह नहीं करूंगा, मुझे तो इस विषय में थोड़ा-सा भी संदेह नहीं है। यदि मैं आत्मशक्ति में ही शंका करूंगा तो कोई भी महत्व का कार्य मुझ से न हो सकेगा। मेरी आत्मश्रद्धा को—मैंने जो कुछ निश्चय किया है उस कार्य को पूरा कर डालने का मुझ में सामर्थ्य है मेरे इस विश्वास को जो डिगाने का प्रयत्न करता है उसे मैं अपना शत्रु समझता हूं, मुझे सबसे बड़ी हानि पहुंचाने वाला वही है। इस विश्व में वही लोग चमत्कार रूप माने जानेवाले महान् कार्यों को कर सकते हैं जो कि महान् आत्म-श्रद्धावाले और स्वयं हाथ में लिए हुए कार्यों को पूरा करने में दृढ़-श्रद्धा संकल्प युक्त होते हैं। महान् कार्यसिद्ध करने में मेरी महान् आशा, महान् आत्मश्रद्धा, तथा आग्रह पूर्वक उद्यम मेरे सहायक एवं वास्तविक मित्र हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि, मनुष्य में महान् शक्ति, विशाल बुद्धि और ऊंची विद्या होते हुए भी यह उतना ही कार्य कर सकता है जितनी उसमें आत्म-श्रद्धा होती है। किसी के कहने से अथवा विघ्न बाधाओं के आ जाने से मैं आत्म-श्रद्धा में न्यूनता नहीं आने दूंगा। कदाच मेरी सम्पत्ति नष्ट हो जाए, स्वास्थ्य बिगड़ जाए, कीर्ति कलंकित हो जाए तथा लोगों की श्रद्धा भी चाहे उठ जाए तो भी जब तक मुझे अपने पर दृढ़ विश्वास है वहां तक अपने उदय की मुझे आशा है। यदि मेरी आत्म-श्रद्धा अचल होगी तथा उस के बल से आगे बढ़ता ही जाऊंगा तो कभी न कभी इस जगत को मेरे लिए मार्ग करना ही पड़ेगा।

मैं अपने आपको क्षुद्र समझकर कभी भी निर्बल नहीं बनाऊंगा। यह मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि मैं अपने आप को दूसरों के समान श्रेष्ठ और सबल न मान कर क्षुद्र और निर्बल प्राणी मानूंगा तो मेरा जीवन निर्बल और शक्तियां मन्द पड़े बिना न रहेंगी। मनुष्य स्वयं अपनी कीमत जितनी करता

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है, उससे अधिक दूसरे लोग कभी भी नहीं कर सकते। यदि हम स्वयं ही दीन, कंगाल मनुष्य अथवा क्षुद्र जीवजन्तु के समान जीवन व्यतीत करेंगे तो हमें महावीर के समान प्रचण्ड पराक्रमी अथवा महान् होने की आशा कदापि न रखनी चाहिए। कारीगर वैसी ही मूर्ति तैयार कर सकता है जैसा कि उसके सामने नमूना होता है।

यदि मैं स्वयं ही अपनी शक्ति को उपयोग करना नहीं जानता तो मुझ में प्रबल शक्ति होते हुए भी मुझे अपना जीवन साधारण कार्य करने में ही व्यतीत करना पड़ेगा। जिन लोगों को अपनी शक्ति की बहुत थोड़ी खबर होती है। वे अनन्त बलवान होते हुए भी निर्माल्य जीवन व्यतीत करते हैं। यदि मैं अपने आपको इनके समान क्षुद्र प्राणी समझूंगा तो अवश्य ही वीरों के पैर मेरे सीने पर होंगे और मैं उनके पैरों तले कुचला जाऊंगा। यदि मैं आत्म-श्रद्धा, दृढ़ निश्चय, और सफलता की आशा भरी भावना से कार्य प्रारम्भ करूंगा तो मेरी आत्म-शक्ति विकसित होगी और लोग अपने आप ही मेरी तरफ खिचे चले आयेंगे।

काम चाहे छोटे ही क्यों न हों यदि मैं उन्हें अच्छी तरह से करूंगा तो उनसे मुझमें ऊंचे दर्जे के काम करने की योग्यता आयेगी। श्रद्धा श्रद्धा को पैदा करती है। काम को काम सिखाता है। उत्साह से उत्साह बढ़ता है। ऐसी छोटी-छोटी सफलताओं से मेरी आत्म-श्रद्धा और शक्ति बढ़ती है यह मेरी दृढ़ मान्यता है कि इस आत्म श्रद्धा में से उत्पन्न हुई मेरी हिम्मत सत्ता में रहे हुए अनन्तबल तक को बाहर खींच लायेगी।

भय, शंका और अश्रद्धा मैं अपने हृदय में से निकाल देता हूं और उनके स्थान पर निर्भयता, निश्चलता तथा वीरता को बिठाता हूं। इन्हीं से मैं महान् कार्य कर सकूंगा। मन्द विचारों का फल भी मन्द होता है। विचार के अनुसार ही कार्य में भी सिद्धि होती है। श्रद्धा के अनुसार ही लाभ होता है जैसे अत्यन्त गरमी लोहे को भी गला देती है बिजली की प्रबल शक्ति कठिनतम हीरे को भी पिघला देती है। उसी प्रकार दृढ़ निश्चय और अजेय आशा से मैं अपने काम में सफलता लाभ करूंगा। यदि मेरा निश्चय ढीला

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

होगा तो मेरे प्रयत्न भी ढीले ही होंगे। मैं अपने भाग्य की अपेक्षा महान् हूं भाग्य को मैंने ही बनाया है। बाहर की किसी भी शक्ति की अपेक्षा मेरी आत्मा में अनेक गुणी अधिक शक्ति है। इस बात को यदि मैं न समझूंगा तो मेरे द्वारा कोई भी महत्त्व का कार्य न होगा।

यद्यपि यह आत्म-श्रद्धा कोई मेरा अहंकार नहीं है, परन्तु ज्ञान है, तथापि, वह अहंकार के रूप में परिवर्तन न हो जाए, इसकी सावधानी रखते हुए मैं निर्मल श्रद्धा बढ़ाता जाता हूं। प्रतीति में से श्रद्धा का जन्म होता है। मेरी सब प्रकार की उन्नति का आधार मेरी आत्म-श्रद्धा पर ही अवलम्बित है। एक कहता है कि—"संम्भवतः मैं यह कार्य कर सकूंगा अथवा करने का प्रयत्न करूंगा।" दूसरा कहता है कि—"यह कार्य मैं अवश्य ही करूंगा और करूंगा ही। इन दोनों की आत्मश्रद्धा में महान् अन्तर है पहिले के विचार निर्बल और श्रद्धाहीन हैं तथा दूसरे के विचारों में प्रबलता और शक्ति की दृढ़ता है। इन दूसरे विचारों वाला वीर पुरुष ही प्रारम्भ किए हुए कार्यों को पूरा कर सकता हे।

मैं कार्य को सिद्ध करने के लिए प्रचण्ड बल के साथ कार्य आरम्भ करूंगा और बीच में जो विघ्न बाधाएं आवेंगी उन्हें नष्ट करने की शक्ति प्राप्त करता जाऊंगा। कोई भी विघ्न पूरा बल लगाये और सतत प्रयत्न किये बिना नहीं हट सकता। डगू-पचू, शंकाशील, और अस्थिर मन से प्रबल कार्य हो ही नहीं सकते। चाहे सारा जगत भी एक वक्त मेरे कार्य से विरुद्ध क्यों न हो जाए तो भी मैं अपने प्रारम्भ किये हुए कार्य को अपनी आत्म-श्रद्धा से जरूर पूरा कर डालूंगा। क्योंकि मायावी जगत और आत्मबल इन दोनों में महान् अन्तर है। यदि मैं यह मान लूं कि अमुक कार्य करना मेरी शक्ति से बाहर है तो जगत में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है जो इस कार्य को सिद्ध करने में मुझे सहायक हो सके। आत्म-विश्वास और महान् पुरुषार्थ किये बिना एक भी कार्य पूरा नहीं होता। आत्मा में एक ऐसी शक्ति है कि जो तीव्र-इच्छा और प्रबल-पुरुषार्थ करने से सर्व कार्य सिद्ध कर सकती है। यह शक्ति सब वस्तुओं को अपनी तरफ आकर्षित कर लेती है। वास्तव

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

में तो मेरी वस्तु ही मुझे मिलती है मेरा भाग्य मुझसे जुदा नहीं है। अपने को पामर समझने वाले हतभाग्य जीव यह नहीं समझ सकते कि, वे स्वयं क्या हैं और उनमें कितना सामर्थ्य है तथा आत्मा के अन्दर छुपी हुई शक्ति को जागृत करने और प्रमाणिक प्रयत्न करने से असाध्य को भी साध्य कैसे बनाया जाता है।

इस प्रकार अपने पर विश्वास रखने वाला कोई भी मनुष्य चाहे वह कितने भी निर्बल मन वाला क्यों न हो उपरोक्त विचारों का बार-बार मनन करने से अपनी निर्बलता को दूर कर सकता है। आत्मा में अनन्त शक्तियां भरी पड़ी हैं परन्तु उनको प्रबल विचारों के द्वारा जागृत करने की आवश्यकता है। जब बुझती हुई आग भी पंखे की पवन से जाज्वल्यमान हो सकती है तब अनन्त शक्तियों से भरपूर आत्मा प्रबल विचार बल के प्रोत्साहन द्वारा प्रदीप्त हो जाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? विचार बल मुर्दा दिलों को भी जिन्दा कर देता है। जैसे ज़मीन पर पड़ी हुई गुल्ली की अणी पर डंडे से आघात कर उसे ऊंचे उछाला जाता है और एक बार उछालने के पश्चात् उसे ज़ोर से धक्का मारना इतना सुगम हो जाता है कि दूसरे टल्ले से वह बहुत दूर चली जाती है वैसे ही मनुष्यों को एक बार विचार बल की सहायता देकर ऊंचे उठाना चाहिए। थोड़ा-सा ऊंचे उठने पर वे अपने आप ही आगे बढ़ जाएंगे अथवा थोड़े से सहारे से ही वे उन्नत हो जाएंगे।

जो विचार बल द्वारा अपनी निर्बलता कम करना चाहते हैं वे अवश्यमेव इसका मनन करें।

रूपस्थ ध्यान-मानसी पूजा

नीचे लिखे स्वरूप वाले शरीर धारी तीर्थंकर प्रभु का ध्यान-रूपस्थध्यान है। मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त करने की तैयारी है, जिन्होंने समग्र कर्मों का नाश किया है, देशना (धर्मोपदेश) देते समय देवताओं द्वारा निर्मित तीन बिम्बों से चार मुख सहित है, तीन भुवन के सर्व प्राणियों को अभयदान दे रहे हैं, अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा न करने का उपदेश देने वाले, चन्द्र मंडल सदृश्य उज्ज्वल

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

वैसे ही मुझे भी मिथ्यात्व रूप दुर्गन्ध को दूर कर अपने सत्य स्वरूप की सुन्दरता और उत्तम आचरण की सुगन्ध के कारण परमात्म-स्वरूप में रहने का बल प्राप्त हो।

४—चौथी-धूप पूजा में सुगन्धित धूप परमात्मा के सामने खेते हुए यह भावना करनी चाहिए कि धूप जैसे जलते हुए भी वातावरण को शुद्ध बना कर सुगन्ध ही सुगन्ध फैला देता है वैसे हो—हे प्रभो! मुझे भी ऐसा बल मिले कि मैं पूर्व कर्मों के योग से विविध ताप में जलते हूए भी आत्म-जागृति की शक्ति द्वारा आस-पास के लोगों में तथा विरोधी जीवों के हृदयों में शांति का वातावरण फैला सकूं एवं शील की सुगन्धि से सबके चित्त प्रसन्न कर सकूं।

५—पांचवीं-दीप पूजा में दीपक प्रगटा (जला) कर मन में भावना करनी चाहिए कि, हे प्रभो! आप सदा केवलज्ञान से प्रकाशित हैं। मेरे हृदय में भी आप के प्रताप से—अज्ञानान्धकार दूर हो, मलिन वासनाएं नष्ट हों तथा सदा के लिए मेरे अन्तःकरण में ज्ञान की ज्योति जगमगाती रहे।

६—छठी अक्षत पूजा में मन से चावल का साथिया (स्वस्तिक) बनाना चाहिए। उस समय ऐसी भावना करनी चाहिए कि इन चार टेढ़ी पंखड़ियों की तरह चार गतियां भी टेढ़ी हैं, उन्हें हे प्रभो! तू दूर कर। मैंने उनमें बहुत परिभ्रमण किया है। अब मैं इनसे घबराता हूं! इस शरीर रूपी छिलके को दूर कर चावल की तरह अखंड और उज्ज्वल आत्म-स्वरूप प्रकट करने का मुझे बल दे।

७—सातवीं-नैवेद्य पूजा में विविध प्रकार का नैवेद्य (मिठाई) प्रभु के सामने रखकर ऐसी भावना करना कि—हे प्रभो! इन पदार्थों को मैंने अनेक बार खाया है, तो भी तृप्ति नहीं हुई। मैं निरन्तर आत्मा के आनन्द में ही तृप्त रहूं इसलिए मुझे अनाहारी पद प्राप्त करने का बल दे।

८—आठवीं-फल पूजा में विविध प्रकार के फल प्रभु के सामने रखकर इस प्रकार भावना करनी चाहिये कि हे प्रभो! मैं इन फलों को प्राप्त करके अपनी आत्मा को भूल गया हूं। अब मुझे ऐसा फल प्राप्त हो कि जिसके

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

द्वारा मुझे परमात्मा के स्वरूप का अखंड भान सर्वथा बना रहे। दूसरे फल की इच्छा ही न हो !

इस तरह मानसिक पूजा (मन के द्वारा प्रत्येक वस्तु की कल्पना-करते हुए पूजा) करके पहले प्रभु के दाहिने पैर के अंगूठे को देखने की कल्पना करनी चाहिए, बार-बार उस कल्पना को खड़ी करना चाहिए। जब वह अंगूठा दिखाई दे, उस पर धारणा पक्की हो जाए कि कल्पना करते ही वह अंगूठा झट से प्रत्यक्ष की तरह मालूम होने लगे, तब दूसरी अंगुलियां देखना। तत्पश्चात् इसी प्रकार दूसरा पग देखना। इसी तरह पालथी, कमर, हृदय और मुख आदि क्रमशः देखना। तत्पश्चात् संपूर्ण शरीर पर धारणा करनी चाहिए। जब तक एक भाग बराबर न दिखाई देने लगे तब तक दूसरे भाग पर नज़र नहीं डालनी चाहिए। दूसरा भाग दिखाई देने लगे तब पहला और दूसरा दोनों भाग एक साथ देखने लगना। इस प्रकार आगे के भागों के साथ भी पहले के दिखाई दिए हुए भागों को मिला-मिलाकर देखते जाना चाहिए। सम्पूर्ण शरीर जब भली-भांति दिखलाई देने लगे तब इस मूर्ति को सजीव प्रभु के रूप में बदल देना चाहिए अर्थात ऐसी कल्पना करके ध्यान करना चाहिए कि प्रभु का शरीर हलन-चलन कर रहा है, बोल रहा है आदि। फिर इच्छानुसार प्रभु को बैठे, खड़े, अथवा सोने की कल्पना कर उसकी धारणा को दृढ़ करना। इस एकाग्रता के साथ परमात्मा के नाम का मन्त्र "ॐ अर्हं नमः" का जाप करते रहना चाहिए। उनके हृदय में दृष्टि स्थापित कर वही जाप करते रहना चाहिए। यदि गिनती न रहे तो कोई हानि नहीं है। भृकुटी और तालुपुर भी जाप करना चाहिए। जितना समय मिले भगवान् के जीवित शरीर को सन्मुख हृदय में खड़ा करके जाप करते ही रहना चाहिए। यदि हो सके तो घण्टों के घण्टों इस ध्यान में व्यतीत करते रहना चाहिए। ऐसा करने से मन एकाग्र होने के साथ-साथ पवित्र होता है। कर्म मल जल जाता है। मन जितना निर्मल होता जाएगा उतना ही स्थिर भी होता जायेगा। मन को स्थिर करने की धारणा हृदय में और मस्तक पर करनी चाहिए। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाएगा वैसे ही वैसे आगे का मार्ग

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हाथ में आता जाएगा। इस प्रकार प्रारम्भ में ध्यान का अभ्यास करने से आगे बढ़ सकेंगे, अर्थात् महान् ध्यानी बना जा सकेगा।

रूपस्थ ध्यान का फल

रूपस्थ ध्यान का अभ्यास करने से तन्मयता प्राप्त होती है और अन्त में सर्वज्ञता प्राप्त होती है। जो सर्वज्ञ प्रभु है वह मैं स्वयं ही निश्चय दृष्टि से हूं। इस प्रकार साधक उस सर्वज्ञ के साथ तन्मयता को प्राप्त करता है। इस प्रकार योगी सर्वज्ञ बन सकता है।

राग रहित का ध्यान करने से स्वयं राग रहित होकर कर्मों से मुक्त होता है। तथा रागियों का आलम्बन लेने वाला काम, क्रोध, हर्ष, शोक, राग, द्वेषादि विक्षेप को करने वाली सरागता को प्राप्त करता है।

जिस-जिस भावना से जिस जिस जगह आत्मा को योजित किया जायेगा, उन-उन निमित्तों को पाकर वह उस उस स्थान पर तन्मयता प्राप्त करता है। जैसे स्फटिकमणि के पास लाल, पीला, नीला, काला आदि जिस रंग की वस्तु रखी जावेगी, उस वस्तु की निकटता से स्फटिकमणि भी वैसे वैसे रंग की दिखाई देगी। उसी प्रकार आत्मा को भी जैसी भावना द्वारा प्रेरित किया जाएगा वैसा ही वह बनेगा।

इसलिये बिना चाह (इच्छा) के भी केवल कौतुक समझकर भी असद्ध्यानों का आलम्बन नहीं लेना चाहिये। क्योंकि इस असद्ध्यान का सेवन करना अपने विनाश और पतन के लिये ही होता है।

व्यवहार में वृत्ति स्वरूप का अवलोकन

हमारे मन के अन्दर जो भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं उनका जब कुछ अधिक स्थुल रूप हो जाता है तब उसे वृत्ति कहा जाता है। वृत्तियां मन में उत्पन्न होती हैं। ये बीज स्वरूप हैं। जैसे एक बीज में से अनेक बीज पैदा किये जा सकते हैं। वैसे ही वृत्ति के साथ जब अपनी राग अथवा द्वेष वाली भावना मिलती है तब उससे अनेक वृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। हमारा रात-दिन का व्यवहार इन वृत्तियों को पोषण करने वाला

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

है। नवीन कर्मों के बन्धन और उनके कारण भावी में प्राप्त होने वाले जन्म का आधार, मन में उत्पन्न होने वाली ये वृत्तियां ही हैं। यदि मन के अन्दर सात्विक भाव वाली वृत्तियां उत्पन्न की जाएं, अथवा निरन्तर आत्म जागृति रख, प्रबल पुरुषार्थ द्वारा परमार्थी आचरण बना, सात्विक भाव वाली वृत्तियों को ही उत्साहित करें तथा व्यवहार के हरेक प्रसंग पर उन्हीं को टिका रखें तो हम अपना भावी जन्म तथा वर्तमान जीवन बहुत ऊंचा बना सकेंगे।

यदि हमारा आचरण मात्र व्यवहार के लिए, तथा परमार्थ भी व्यवहार की अनुकूलता के लिए ही होंगे तो इससे हमारी राजस प्रकृति पोषण पायेगी जिससे हमारा जीवन मध्यम दर्जे का बन जायेगा। यदि हमारा आचरण केवल स्वार्थमय, वासनाओं को ही पोषण करने वाला, इन्हें (स्वार्थ और वासनाओं को) प्राप्त करने के लिये विविध प्रकार की रौद्र प्रवृत्तियों बाला एवं अनेक जीवों को संहार करने वाला होगा तो हमारी वृत्तियां तामस भाव द्वारा पोषण पाकर हमारे भावी जन्म को बिगाड़ देंगी, अर्थात् इसके परिणाम स्वरूप हमें भावी जन्म बहुत ही खराब प्राप्त होगा।

संक्षेप में कहें तो हमारी मनोवृत्तियों का सात्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन प्रकार की वृत्तियों में समावेश हो जाता है। यह प्रत्येक वृत्ति विवेक और विचार बल से बदली जा सकती है। चाहे कैसे भी विषम प्रसंग क्यों न हों उन्हें भी हम विचार वल और विवेक की सहायता से बदल सकते हैं तामसिक और राजसिक प्रकृति को सात्विक रूप से बदल कर आत्मा को पतन की ओर जाते रोक उन्नत बना सकने का सामर्थ्य हमारे हाथ में है। जब कभी ऐसा प्रसंग अपने हाथ में आवे तब उसे जाने नहीं देना चाहिए, अन्यथा चिरकाल से परिपुष्ट बनी हुई नीच प्रवृत्तियां अपना दुःखमय प्रभाव दिखलाये बिना नहीं रहेंगी।

दुनिया में बड़े कहे जाने वाले मनुष्यों की वृत्तियों का पोषण भी बड़ा ही होता है, परन्तु यदि वे आत्म भाव की तरफ जागृत होंगे तथा वृत्तियों के पोषण से उत्पन्न होने वाले सुख-दुःखका उन्हें ज्ञान होगा तो वे अधम

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

प्रवृत्तियों का पोषण नहीं करेंगे। यदि जीवन हल्का-नीच होगा तो उससे नीच वृत्तियों का ही पोषण होगा। यदि जीवन उच्च होगा तो उसकी वृत्तियां भी उच्च प्रकार का पोषण पायेंगी। अच्छे या बुरे निमित्त से वृत्तियों में परिवर्तन हुए बिना नहीं रहता।

राजा यदि सात्विक वृत्ति का होगा तो उसमें अहिंसा, सत्य, प्रमाणिकता, क्षमा, नम्रता, उदारता, परोपकार, प्रेम, सत्कार, न्याय, शील, वीरता, धर्म, वात्सल्यता, ज्ञान, भक्ति, परमार्थ, सेवा, रक्षण, दान, गुरुभक्ति, अतिथि सत्कार, विनय आदि उच्च वृत्तियां ही पोषण प्राप्त करेंगी; यदि राजसी प्रकृति वाला वैभवशाली जीवनवाला, विलासी स्वभाव वाला होगा तो उस में विषयेच्छा, स्वार्थपरता, महत्वता, स्वार्थ साधक परोपकार, दया-दान, कीर्ति और कर्त्तव्य पालन आदि मध्यम वृत्तियां ही पोषण पायेंगी, तथा स्वार्थमय भावनाएं अथवा इच्छाएं पुष्ट होते हुए प्रसंगोपात अनेक प्रकार की हल्की-नीच वृत्तियां अन्तःकरण में बढ़ती जायेंगी।

और यदि राजा तामसी प्रकृति वाला होगा तो अपने भोजन के लिये, मौज-शौक के लिये, और अधिकार के लिये उसके मन में क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ, राग-द्वेष, तिरस्कार, अन्याय, असत्य, अप्रमाणिकता, व्यभिचार, कुव्यसन, कायरता, अधर्म, अनीति, निर्दयता, दंभ, महत्ता, ईर्ष्या, द्वेष और मोह इत्यादि वृत्तियों का पोषण होगा। तथा उन पोषण पाई हुई वृत्तियों को भोगने के लिये जहां अनुकूलता होगी वही उसे फिर जन्म लेना पड़ेगा।

धर्म-गुरु यदि सात्विक प्रकृति वाला होगा तो उसके हृदय में सात्विक वृत्तियां होंगी; परन्तु यदि वह हठीला, [जिद्दी] धर्मान्ध, अथवा अज्ञानी होगा तो तामसी प्रकृति वाले राजा के समान ही वृत्तियां प्रायः उसके हृदय में भी होंगी। क्योंकि वह धर्मगुरु भी एक बड़ा आदमी है, तथा अधिकार की गरमी भी कुछ भिन्न प्रकार से प्रायः वैसी ही उसमें भी होती है।

मनुष्य यदि उद्यमी होगा तो पुरुषार्थ, स्वाधीनता, उत्साह, स्वतन्त्रता, वीरता आदि की वृत्तियां उसमें होंगी। इन वृत्तियों से उसके जीवन के

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

संयोगों तथा निमित्तों के प्रमाण में दूसरी वृत्तियां भी परिपुष्ट होंगी।

मनुष्य यदि आलसी, कर्जदार या भिखारी होगा तो दुःख, कायरता, निराधारता, निरुत्साह, मंदता, अज्ञान, असंतोष, लोभ, क्लेश, केवल दुःखमय विचार, ईर्ष्या, द्वेष, आदि की वृत्तियां मुख्यता उसमें होंगी तथा उसके उस समय के संयोगों के प्रमाण में दूसरी भी क्रोधादि की वृत्तियां पुष्ट होती रहेंगी।

फौजदार अथवा जेलर के हृदय में निर्दयता, निष्ठुरता, चंचलता, सत्ताबल आदि वृत्तियां स्वाभाविक ही हो जाती हैं।

नौकरों के चित्त में उनके स्वभावानुसार प्रमाणिकता अथवा अप्रमाणिकता की वृत्तियां हुआ करती हैं।

शिकारियों और कसाइयों के—जो खुराक के लिये पशुओं को पालते हैं—हृदयों में हिंसा, क्रूरता, लोभ आदि की वृत्तियां होती हैं।

अनाज आदि के व्यापारियों के हृदय में अनाज आदि लेते समय शांति की तथा बेचते समय अशांति की वृत्ति होती है।

सामान्यतया सभी तरह के व्यापारी शान्ति अथवा अशान्ति के समय—उनका माल बिके या न बिके तो भी उसी प्रकार के प्रसंग तथा काल के ऊपर अपनी उच्च या नीच वृत्तियों को पोषण दिये बिना नहीं रहते।

किसानों की भावनायें भी बोते समय और बेचते समय प्रायः जुदा-जुदा हुआ करती हैं। उन भावनाओं के अनुसार ही उनके हृदयों में शान्ति या अशान्ति, सुख या दुःख, मोह-लोभ आदि की वृत्तियां पुष्ट हुआ करती हैं।

इष्ट वस्तु या प्रियजन के वियोग में प्रायः मोह, शोक अज्ञान, दुःख आदि की वृत्तियां मुख्यतया हुआ करती है। अनिष्ट वस्तु अप्रिय या शत्रु मनुष्य अथवा रोगादि के समय हिंसा, तिरस्कार, अभाव, दुःख की वृत्तियां होती हैं।

इतनी बातें तो केवल ऐसी ही वृत्तियों के विषय में कही गई हैं, कि जिनका प्रत्यक्ष में अनुभव होता है, परन्तु एक वृत्ति के साथ अन्य भी अनेक वृत्तियां प्रसंगानुसार हो जाती हैं। इस सारे विवेचन का सार यह है कि

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

जैसा बीज होगा वैसा ही फल भी उत्पन्न होगा। इस दृष्टांत के अनुसार हमारी वृत्तियां जैसी होंगी वैसे ही हमें फल भी भोगने पड़ेंगे। इसलिए प्रत्येक व्यवहार या परमार्थ के समय मनुष्य को अपनी वृत्तियों की जांच करते रहना चाहिये। वृत्ति के मूल कारण तथा इसके भावी फल या संस्कारों के पड़ने की ओर भी लक्ष्य रखना चाहिए। तथा एक वृत्ति में से अनेक वृत्तियां किस प्रकार विस्तार पाती हैं इन्हें भी ध्यान में रखना चाहिये। इस प्रकार निरीक्षण करते रहने से मन की कौन सी वृत्तियों को उत्पन्न होने देना चाहिये और कौन सी को नहीं, इस बात को समझने और समझ कर वृत्तियों को स्व-इच्छानुसार बदलने की कुञ्जी हमारे हाथों में आ-जाएगी। साथ ही इनके भावी ज़िन्दगी जैसी बनाना चाहेंगे वैसी बनाने का बल भी हमें प्राप्त हो जाएगा।

अपनी वृत्तियों की तरह दूसरे की वृत्तियों का भी निरीक्षण करते रहना चाहिये और निरीक्षण करते हुए अपने मन में ऐसा विचार करना चाहिये कि यदि मैं ऐसी परिस्थिति में आऊं तो उस समय मुझे किस प्रकार की वृत्ति रखनी होगी अथवा कैसा व्यवहार करना होगा। ऐसा करने से भविष्य में ऐसे प्रसंग उपस्थित होने पर विशेष जागृति रखने का तथा नवीन बीज-वाली वृत्तियों को रोक सकने का बल प्राप्त हो सकेगा।

योग के मार्ग में आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाले हर एक मनुष्य को व्यवहार के प्रत्येक अवसर पर अपनी वृत्तियों का निरीक्षण करते रहना चाहिये। वृत्तियों का निरीक्षण करने की दिशा सूचन करने के लिये ही यह संक्षिप्त विवरण दिया है। यह विवेचन शांति के मार्ग का बीज है। जो बीज बोता है वही फल प्राप्त करता है।

धर्म का वास्तविक स्वरूप इस प्रकार वृत्तियों का निरीक्षण कर उन वृत्तियों को उच्च बनाने में ही है अर्थात् तमोगुण में से रजोगुण तथा रजो-गुण में से सत्वगुण में आने का अभ्यास करना चाहिए। जब तक ऐसा अभ्यास नहीं किया जाता तब तक हृदय निर्मल नही होता तथा अनेक जन्म तक धर्म करते हुए भी उसका उत्तम फल प्राप्त नहीं होता।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

आत्मा का विकास लक्ष्य तथा जागृति

ध्यान के विना पूर्ण रूप से आत्मा का विकास नहीं होता। भूतकाल में जितने भी महान् पुरुष हुए हैं वे सब ध्यान ही के बल आगे बढ़े हैं। तथा अब भी इस ध्यान बल द्वारा ही आगे बढ़ सकते हैं। ध्यान मार्ग में प्रवेश करने वाले मनुष्य को पहले अपना ध्येय निश्चित करना चाहिये। उसको निश्चित करने के बाद यह निश्चय करना चाहिए कि, इस मार्ग में चलने के लिये मुझमें कितनी योग्यता है। फिर ध्यान की विधि जानकर उसका अभ्यास करना चाहिये।

हमें जो स्थिति प्राप्त करना है उसका दृश्य मानसिक स्थिति के सामने बारबार विचार बल से खड़ा करना चाहिए तथा उस एक ही विचार को ध्यान के किसी भी समय में भूलना नहीं चाहिये।

अपना ध्येय आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना ही है। आत्मा के ऊपर आवरण रूप जो आठ कर्म हैं, उनके नाश होने से आत्मा के आठ महान् गुण प्रकट होते हैं। आत्मा ही अनन्त है क्योंकि इसका अन्त अर्थात् नाश नहीं होता है उस अनन्त का ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शक्ति, सुख, जीवन स्वरूप और अनुभव, यही प्राप्त करने योग्य ध्येय है। इससे यह निश्चय हुआ कि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्द आनन्द, अनन्त वीर्य, अव्याबाध सुख, सादि-अनन्त जीवन, अरूपी दशा और अगुरुलघु [व्यापक स्थिति]—यह आत्मा का पूर्ण विकास है उसी के लिये ही मैं प्रयत्न करता हूं। मेरी सर्व प्रवृत्तियां मेरे इस आत्म-विकास के लिए ही है।

भूगर्भ

लक्ष्य जागृत करने के बाद भूगर्भ उत्पन्न करना चाहिये। एक ही विचार को बार-बार मनन करने से मन के ऊपर उसका मज़बूत असर होता है। मन धीरे-धीरे उसी विचार के अनुरूप हो जाता है अन्त में अपने आस-पास भी वैसा ही वातावरण उत्पन्न करता है। उस वातावरण में आनेवाले अणु भी उससे अच्छी तरह सुवासित होते हैं। सजातीय परमाणु भी उसकी तरफ खिचकर आते हैं। विरोधी परमाणुओं को दूर करता है। इस बंधे

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

हुए मानसिक आकार को तथा वातावरण को भूगर्भ कहते हैं। अपने साध्य रूप लक्ष्यबिन्दु जब कि भूगर्भ बंध जाता है तब वह निश्चित बीजपन के रूप को धारण करता है। अपनी, अपने ध्येय से सम्बन्ध रखने वाली, प्रत्येक क्रिया या प्रवृत्ति इस भूगर्भ की तरह प्रवाह रूप से आकर बीज को पोषण कर उसमें से आत्मा का पूर्ण विकास रूप फल पैदा करती है। अपने विचार बीज रूप होकर उग निकलते हैं इसलिये विचार और इच्छाएं बहुत सावधानी से करनी चाहिये। अब से अधम वृत्ति वाले नये बीज बोना छोड़ देना चाहिये।

यदि अपना लक्ष्य आत्म विकास का ही हो तो अपनी सब प्रवृत्तियों का फल भी वही पैदा होगा। परन्तु यदि अपना लक्ष्य इन व्यवहार की या योग की चमत्कारी शक्तियां पैदा करने के लिये होगा तो अपनी उत्तम क्रियाएं भी उसी का पोषण रूप परिणमन होकर उसी प्रकार का फल उत्पन्न करेंगी। तथा इनमें से नवीन कर्म प्रगट करेंगी। इसलिये अपना लक्षबिन्दु आत्मा की पूर्णता प्रगट करने के सिवाय दूसरा नहीं होना चाहिये। इस बात की बहुत संभाल रखनी चाहिये।

ध्यान मार्ग के विरुद्ध विचार रूपी कांटों को न उगने देना चाहिये। यदि उग जाये तो विचार बल एवं वृत्ति निरीक्षण द्वारा उन्हें उखाड़ डालना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो ये कांटे भी उग निकलेंगे और मूल लक्ष्य को पुष्ट करने के लिये जो खुराक मिलती है उसे खुद खाकर हमारे साध्य को निःसत्व बना देंगे।

ध्यान करने का स्थान

हृदय के बांयें भाग की तरफ उपयोग रखकर वहां "शान्ति, शान्ति, शान्ति" का जाप करना चाहिए। जाप के समय हृदय में यदि कोई क्षुद्र वृत्ति उठ आवे तो जाप बन्द कर, उस वृत्ति की विरोधी उन्नतिवाली वृत्ति उत्पन्न कर, विवेक ज्ञान द्वारा क्षुद्र वृत्ति की असारता समझ उस वृत्ति को तोड़ डालना चाहिए। तथा फिर जाप प्रारम्भ कर देना चाहिये। इसी प्रकार जाप करते समय कोई भी विकल्प उठे उसी समय उस वृत्ति को पकड़ जाप

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

बन्द कर, वृत्ति को सद्विचार द्वारा बिखेर डालना चाहिये। तत्पश्चात् फिर जाप शुरू कर देना चाहिए।

यदि वृत्तियां उठती ही जायेंगी और उन्हें तोड़े बिना जाप चालू ही रखा जायेगा अथवा उन विकल्पों की उपेक्षा कर जाप को चालू रखा जायेगा तो वे क्षुद्र वृत्तियां अन्दर ही दब कर पड़ी रहेंगी और थोड़ा सा कारण मिलते ही प्रबल होकर जाप को अव्यवस्थित कर डालेंगी। इसलिये विचार बल से उन्हें तत्काल ही नष्ट कर देना चाहिये। जाप चाहे कम हो इसकी चिन्ता नहीं है। जाप की गिनती की कोई खास आवश्यकता नहीं है। जाप की गिनती का कोई खास मूल्य भी नहीं है। मूल्य तो है क्षुद्र वृत्तियों को कम करने और शुभ वृत्तियों को उन्नत बनाने का।

वृत्तियों का निरीक्षण

कुछ समय के बाद जाप को बन्द करके हृदय के मध्य से दो अंगुल बांई तरफ एकाग्रता पूर्वक देखना चाहिए। आंखों को तो बन्द ही रखना चाहिये। मन में उठती हुई स्वाभाविक वृत्तियों को रोकना नहीं चाहिए। वृत्तियां उठें ऐसी प्रेरणा भी नहीं करनी चाहिए। स्वयं तो द्रष्टा बन कर देखते रहना चाहिये। स्वाभाविक सहज उपयोग में रहते हुए बीच-बीच में उपयोग का विस्मरण हो जाना सम्भव है। उस समय कोई न कोई वृत्ति अवश्यमेव प्रगट हो जाती है। उस वृत्ति को विचारों द्वारा तोड़ कर फिर शान्त होकर अवलोकन करते रहना चाहिए।

इस अभ्यास से सत्ता में रही हुई अनेक प्रकार की वृत्तियां बाहर आती हैं तथा फिर से वे वृत्तियां उत्पन्न हो इस प्रकार विवेक ज्ञान के विचार द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं। उसके साथ ही नई इच्छाएं न करने के कारण सत्ता में नवीन बीजों का प्रवेश भी रुक जाता है। इस अभ्यास से संवर और निर्जरा एक साथ होते हैं। संचय होने के लिये आने वाले कर्मों को रोकना संवर है तथा संचित कर्मों को नष्ट करना निर्जरा है। इस अभ्यास से ये दोनों होते हैं।

द्रष्टा=[प्रेक्षक] की तरह देखते रहने से, यदि वृत्तियां न उठें तो

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

स्थिरता अथवा एकाग्रता बढ़ती जाती है, तथा वृत्तियां उठती हैं तो विवेक ज्ञान द्वारा तोड़ने का काम चालू होता है। वृत्तियों को उठने न देकर दबाये रखने से वे सत्ता में दबी हुई पड़ी रहती हैं तथा बलवान निमित्त मिलने पर वे विशेष जोर के साथ बाहर आती हैं। हृदय में शान्ति की छाया नीचे अवलोकन करते रहने से सत्ता में रहे हुए कर्म धीमे-धीमे बाहर आते हैं। यह कर्म तोड़ने का पुरुषार्थ है।

वृत्ति के अवलोकन रूप ध्यान द्वारा जब कर्म बाहर आते हैं तभी हमें ज्ञात होता है कि अभी इस प्रकार के कर्म मेरे अन्दर विशेष या कम प्रमाण में रहे हुए हैं तथा अमुक प्रकार की वृत्तियां न उठने के कारण से उस प्रकार के कर्म कम हुए हैं। जो कर्म अपने अन्दर विशेष प्रबल होंगे उनसे विचार बार-बार आयेंगे तो भी हमें जाप और अवलोकन शुरू ही रखना चाहिए। जाप "ॐ" कार का, "सोहं" का और "शान्ति" का तीनों तरह का प्रसंगानुसार करना चाहिए।

जाप रूप हल द्वारा ज़मीन की तरह कर्म खुदते हैं। तथा शान्ति जाप की छाया नीचे वृत्ति अवलोकन रूप फावड़ा द्वारा खुरच कर वे कर्म बाहर निकाल दिये जाते हैं।

ध्यान के सिवाय दूसरे समय में वृत्तियों को तोड़ने का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, आत्मा के शुद्ध स्वभाव को बतलाने वाले, कर्मों के अचल नियमों को समझाने वाले तथा मन की वृत्तियों के स्वरूप को बताने वाले ग्रन्थों को पढ़ना बहुत उपयोगी है।

दिन में हर समय वृत्तियों का अवलोकन करते रहना चाहिये मन में उठते हुए विकल्पों को वृत्तियां कहते हैं। एक में से अनेक वृत्तियां उठती हैं। यदि हमारी जागृति न हो तो उनका इतना विस्तार बढ़ जाता है कि घण्टों तक उनका अन्त नहीं हो आता।

यह विकल्पों वाला मन आत्मा के आगे आवरण रूप खड़ा रहकर उसके आवरणों में वृद्धि करता रहता है। विविध इच्छाओं या वासनाओं वाले विकल्प सत्ता में रहे हुए कर्मों में से बाहर आते हैं तथा बाहर के पदार्थों के निमित्त भी वह विविध प्रकार की इच्छाएं करते हैं। इन इच्छाओं के निमित्त से राग-द्वेष, हर्ष-शोक पैदा कर नये कर्म बीजों का संचय कराते हैं। अपनी निर्बल इच्छाओं में से ही इनका जन्म होता है।

जाप का फल वृत्तियों को मन से जुदा कर, इन्हें नाश करने का है। मन से वृत्तियां जुदा हुईं तब समझना चाहिये कि जब इनका असर मन पर होना सर्वथा मिट जाए। खोजने से भी वृत्ति न मिले और आकृति बने बिना ही

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उपयोग की जागृति से बिखर जाये यदि वृत्ति जुदा न हुई हो तो उसका असर मन पर होता है, किसी विषम प्रसंग का हृदय पर आघात लगता है। मन वैसी बातों का बार-बार पुनरावर्तन करता है। चित्त स्थिर नहीं होता, विक्षेप हुआ करते हैं, विह्वलता आ जाती है। ये सब वृत्ति के मन से नष्ट न होने के लक्षण हैं। जब तक वृत्ति नष्ट न हो जाय तब तक समझना चाहिये कि जाप परिपक्व नहीं हुआ है, तथा जाप का फल नहीं मिला है अतः जाप जारी रखना चाहिये। वृत्ति छूट जाए तो उसे निर्लेप वृत्ति कहते हैं। वृत्ति निर्लेपता वाला जाप हो तो शान्ति बढ़ती है, सारे शरीर में शान्ति फैली रहती है। वृत्तियों का सर्वथा नाश होना यह तो बहुत ऊंची हद है। फिर से उत्पन्न ही न हों। ऐसी वृत्ति नाश तो चौदहवें गुणस्थान में होती है। तो भी निर्लेप जाप करने से पवन के समान वृत्ति ऊपर ही रहती है परन्तु हृदय में उसका प्रवेश नहीं होता। यह जाप भी बन्द होकर शान्त स्थिरता रहती है।

जाप करते समय यदि वृत्तियों का बल विशेष मालूम हो, विकल्प बहुत उठें तो "शान्ति" शब्द का जाप करना चाहिए। इसके साथ ही वृत्ति को देखते रहना और भावना करना चाहिए कि इन वृत्तियों का नाश हो। इससे वृत्तियां कम होंगी। यदि बहुत वृत्तियां उठें तो अर्थ के साथ "सोहं, सोहं" शब्द का जाप करना चाहिये।

व्यवहार की क्रियाओं को निर्लेप बनाने के लिए व्यवहार के समय भी जाप चालू रखना चाहिये और वृत्तियों का बल जांचते रहना चाहिए। उनके कारणों और परिणामों का भी विचार करते रहना चाहिए। इच्छा करते ही वृत्तियों को बदल देने का बल प्राप्त करना चाहिए। ऐसा समझना चाहिए कि पुनर्भव उत्पन्न करने वाले बीजों वाली वृत्तियां नाश होने से ही आत्मा को सच्चा सुख प्राप्त अथवा उन्नत भाव प्रगट होगा। चाहे मनुष्यों को चमत्कृत करने वाली शक्ति पैदा न हो परन्तु जो मन को मलिन और मोह को पोषण करने वाली वृत्तियां बीज रूप से सत्ता में नई प्रवेश कर अनेक बीज उत्पन्न करने वाली होती हैं उन्हें नाश करने का बल प्राप्त करना कोई साधारण लाभ नहीं है। आत्मा का पूर्ण विकास इन वृत्तियों के नाश से ही होता है। उपशम पड़ी हुई वृत्तियां फिर निमित्त पाते ही पूर्ण वेग से बाहर आती हैं। उस समय की कराई मेहनत धूल में मिल जाती है। चमत्कारिक शक्तियां चली जाती हैं और फिर धोई हुई मूली के समान वैसे के वैसे ही हो जाते हैं। इसलिए वृत्तियों को रोकने या दबाने की अपेक्षा विचार बल से इनका नाश करना ही आत्मोन्नति का सरल राजमार्ग है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

रूपातीत-ध्यान

आकृति रहित, ज्ञानानन्द स्वरूप, निरंजन-सर्वथा कर्म रहित सिद्ध परमात्मा का ध्यान यह रूपातीत ध्यान कहलाता है।

इस निरंजन सिद्ध स्वरूप का अवलम्बन लेकर निरंतर इसका ध्यान करने वाला साधक ग्राह्य-ग्राहक, लेने और लेनेवाले आदि भाव रहित तन्मयता प्राप्त करता है।

योगी—साधक जब ग्राह्य-ग्राहक भाव बिना की तन्मयता प्राप्त करता है तब उसके लिये कोई आलम्बन रहा हुआ न होने से वह साधक उस सिद्धात्मा में इस प्रकार लय पाता है कि ध्यान करने वाला और ध्यान इन दोनों के अभाव से ध्येय जो सिद्ध उसके साथ एक रूप हो जाता है।

योगी के मन की परमात्मा के साथ जो एकाकारता है वह समरसी भाव है। और उसी का ही एकीकरण होकर आत्मा अभिन्न रूप से परमात्मा में लीन हो जाता है—लय पा जाता है।

निरालम्बन ध्यान का क्रम

पहले पिंडस्थ-रूपस्थ आदि लक्ष्य वाले ध्यान के क्रम से, अलक्ष जो निरालम्बन ध्यान हैं उसमें आना। पहले स्थूल ध्येय लेकर अनुक्रम से अनाहद कला आदि सूक्ष्म ध्येयों का चिंतन करें, तथा रूपस्थ आदि सालम्बन ध्येयों से निरालम्बन सिद्ध अरूपि ध्येय में आना। इस क्रम से यदि अभ्यास किया जावे तो तत्त्वों का जानकार योगी अथवा साधक थोड़े समय में ही तत्त्व को पा सकता है।

इस प्रकार पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत इस चार प्रकार के ध्यान में मग्न होने वाले मुनि-योगी अथवा साधक का मन जगत के तत्त्वों का साक्षात कर आत्मा की विशुद्धि करता है।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

उपयोग की जागृति से विखर... असर मन पर होता है, किसी...

...चिदानंद जी

...ठारवीं शताब्दी ... खरतरगच्छ के उपाध्याय श्री चरित्र... ...परमगीतार्थ थे। जिनके गुरु निधि उपाध्याय के दो शिष्य चिदानन्दजी (कपूरचन्द जी) और ज्ञानानन्द जी बड़े उच्चकोटि के कवि और आध्यात्मिक पुरुष हुए हैं। श्री चिदानन्दजी महाराज का स्वरोदय ग्रंथ उनकी योगसाधना और तद्‌विषयक ज्ञान का अच्छा परिचायक है, आप ने स्वरोदय ज्ञान नामक ग्रंथ में जगह-जगह पर जोर दिया है कि योगाभ्यास सम्यग्दृष्टि योगी गुरु की सेवा में रहकर करना परमावश्यक है। आपने यह भी लिखा है कि जिस सम्य दृष्टि योगी गुरु से आप ने योगाभ्यास किया था वे उच्चकोटि के विद्वान योगी थे परन्तु आश्चर्य होता है कि आपने उन गुरु का नाम अथवा परिचय तक भी नहीं दिया आपकी पुदगल-गीता, बावनी, बहुत्तरी-पद और स्तवनादि भी उच्च कोटि की काव्य कला और अनुभव ज्ञान से ओतप्रोत हैं। कविताओं का सर्जन, सौष्टव, फवते उदाहरण और हृदयग्राही भाव अत्यन्त श्लाघनीय हैं। आप गुजरात भावनगर आदि में काफी विचरे थे। मध्य-प्रदेश में भी घूमे थे। भावनगर की जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा' चिदानन्दजी सर्व-संग्रह दो भागों में आपकी समस्त कृतियां प्रकाशित हैं। गद्य में भी अनेक जैन दार्शनिक, सैद्धान्तिक तथा योग सम्बन्धी ग्रन्थों का निर्मान भी आपने किया है।

श्री चिदानन्द जी के गुरु भ्राता श्री ज्ञानानन्द जी भी उच्चकोटि के अध्यात्म योगी थे। आपके शताधिक पदों का संग्रह ज्ञानविलास और संयम रंग रूप में साठ वर्ष पूर्व वीरचन्द पानाचन्द ने प्रकाशित किया था। श्री चिदानन्दजी महाराज पहले पावापुरी में गांव मन्दिर के पृष्ठ भाग की कोठारी में ध्यान किया करते थे और पीछे गिरनारजी, पालीताना व राज-गृहि सम्मेतशिखरजी में भी रहे। सम्मेतशिखरजी में, गिरनार जी में तथा अन्यत्र भी आपकी ध्यान-गुफाएं प्रसिद्ध हैं। भावनगर के पास आपने छीपा जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। तीस वर्ष पूर्व जब भद्रमुनि जी महाराज भावनगर पधारे। तब उस जातिवालों ने कहा—आप खतर-गच्छ के श्री चिदानन्द जी महाराज द्वारा प्रतिबोधित हैं।

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

Shri Ranbir Kendriya Sanskrit Vidiya Peeth, JAMMU.
LIBRARY
Book No ....
Dated ....
Price ....

JF
236

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri

Pcr 77

18

अष्टांग निमित्त विभाग २, ३, ४

स्वप्न विज्ञान रु. ५.५०

प्रश्न पृच्छा विज्ञान रु. ५.५०

स्वरोदय विज्ञान रु. ८.००

Shri Ranbir Kendriya Sanskrit Vidya Peeth
LIBRARY
Book No. ---

प्राप्ति स्थान

जैन प्राचीन साहित्य प्रकाशन मंदिर

५७ (६४१/बी/३) अहाता बलबीर

मोतीराम मार्ग

शाहदरा-दिल्ली ११००३२

प्रकाशन के लिये तैयार ग्रन्थ

(१) शरीर लक्षण विज्ञान

पुरुष स्त्री के शारीरिक लक्षण तथा हस्तरेखा)

(२) यंत्र-मंत्र-तंत्र-कल्पादि बृहत्संग्रह

(३) भद्रबाहु संहिता

CC-0. Late Pt. Manmohan Shastri Collection Jammu. Digitized by eGangotri